नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग

01

आगम - ०१

'आचार' मूलं एवं वृत्तिः (१)

मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

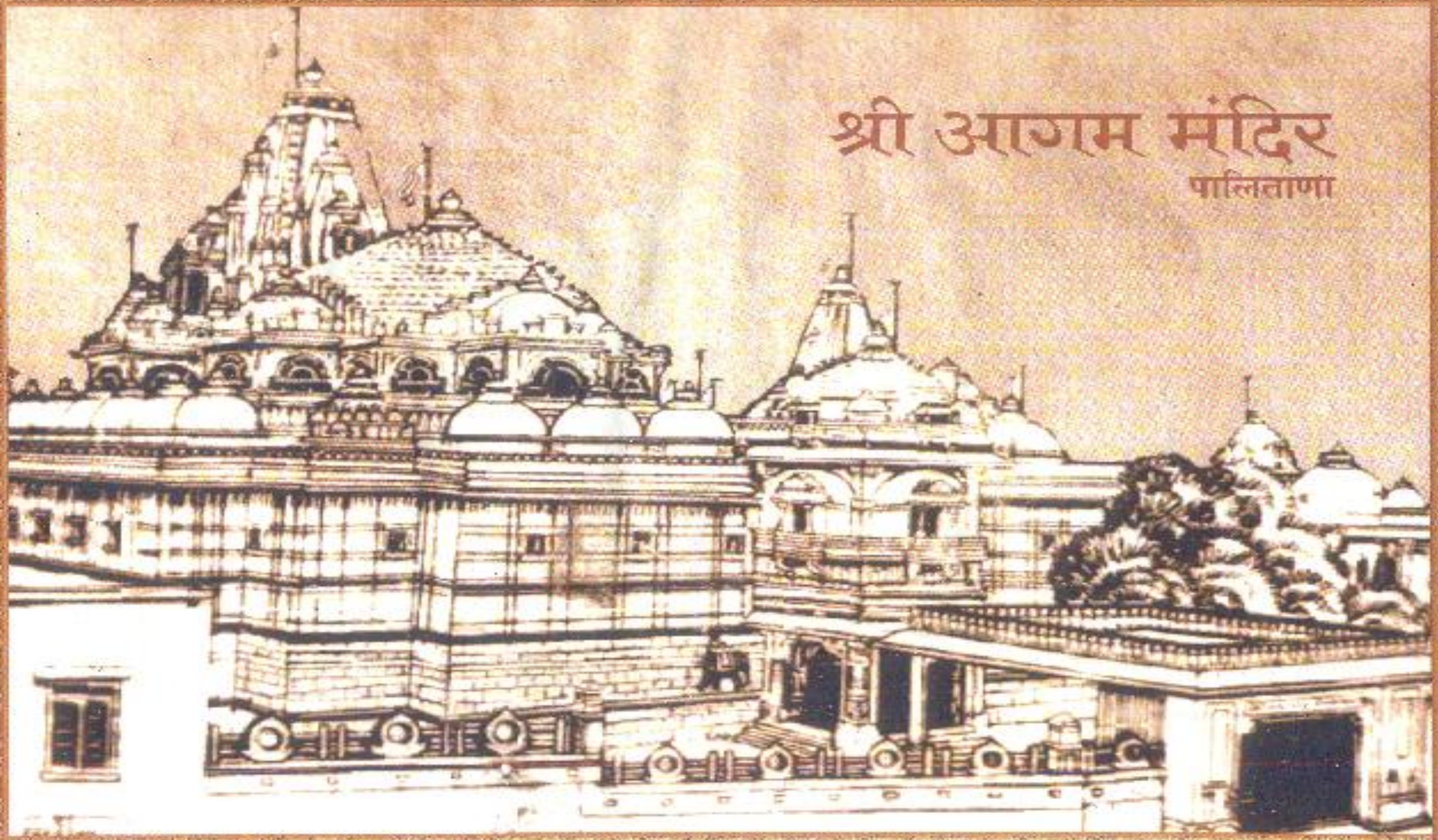

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

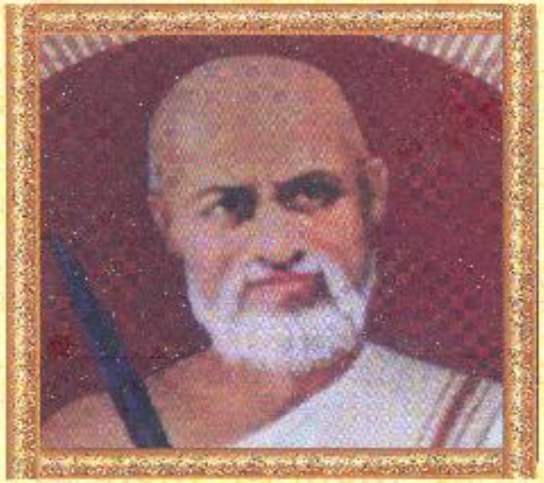

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

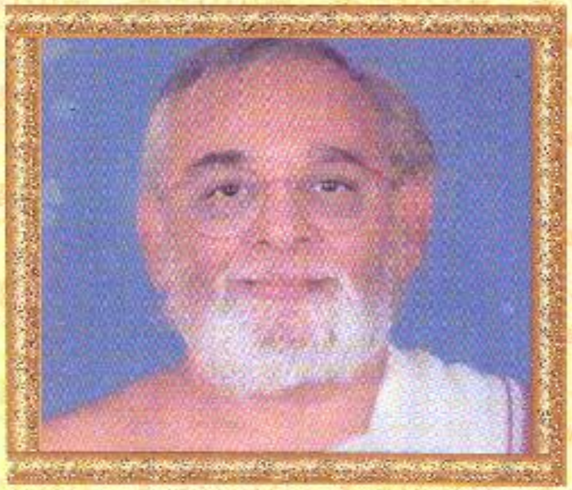

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"आचार" मूलं एवं वृत्ति:

[मूलं + भद्रबाहुस्वामी कृत् निर्युक्ति; + शिलांकाचार्य रचित वृत्ति:]

श्रृतस्कन्ध- १, अध्ययन- १ एवं २

[आद्य संपादक: - पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म० सा०]

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D.)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५

'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-१

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त 'आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट'

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही “जैन-आगम-शास्त्रो” को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और “आगम मंजूषा” नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ७०० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव “सागरजी”... ***......मुनि दीपरत्नसागर...***

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण*" इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना |

*** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ| *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य, शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

****** मुनि दीपरत्नसागर...***

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व. गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे | समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रेज]पूना, शंखेश्वर, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

मूलाङ्का: ५५२ **आचाराङ्ग सूत्रस्य विषयानुक्रम भाग-१ एवं २** निर्युक्ति गाथा: ३५६

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
—	श्रुतस्कंध- १	०१२	१४३	--उद्देशक: २ धर्मप्रवादीपरीक्षणं		२२०	--उद्देशक: ३ अंगचेष्टाभाषित:	
❋-❋	अध्ययनं १ शस्त्रपरिज्ञा	०३०	१४७	--उद्देशक: ३ निरवद्यतप:		२२४	--उद्देशक: ४ वेहासनादिमरणं	
००१	--उद्देशक: १ जीवअस्तित्वं	०३२	१५०	--उद्देशक: ४ संयमप्रतिपादनं		२२९	--उद्देशक: ५ ग्लानभक्तपरिज्ञा	
०१४	--उद्देशक: २ पृथ्विकाय	०६६		-वचनं		२३१	--उद्देशक: ६ इंगितमरणं	
०१९	--उद्देशक: ३ अप्काय:	०९२	❋-❋	अध्ययनं ५ लोकसार:		२३६	--उद्देशक:७ पादपोपगमनमरणं	
०३२	--उद्देशक: ४ अग्निकाय:	१०८	१५४	--उद्देशक: १ एकचर्या		२४०	--उद्देशक: ८ उत्तममरणविधि:	
०४०	--उद्देशक: ५ वनस्पतिकाय:	१२३	१५९	--उद्देशक: २ विरतमुनि		❋-❋	अध्ययनं ९ उपधानश्रुतं	
०४९	--उद्देशक: ६ त्रसकाय:	१४३	१६४	--उद्देशक: ३ अपरिग्रह		२६५	--उद्देशक: १ चर्या:	
०५६	--उद्देशक: ७ वायुकाय:	१५७	१६९	--उद्देशक: ४ अव्यक्त:		२८८	--उद्देशक: २ शय्या:	
❋-❋	अध्ययनं २ लोकविजय:	१७४	१७३	--उद्देशक: ५ ह्रदोपम:		३०४	--उद्देशक: ३ परिषह:	
०६३	--उद्देशक: १ स्वजन:	२०७	१७९	--उद्देशक: ६ कुमार्गत्याग:		३१८	--उद्देशक: ४ रोगातंक:	
०७३	--उद्देशक: २ अदृढत्वम्	२३३	❋-❋	अध्ययनं ६ द्युतं		—	श्रुतस्कंध- २	
०७८	--उद्देशक: ३ मदनिषेध:	२४३	१८६	--उद्देशक: १ स्वजनविधुननं			► चूडा-१ ◄	
०८४	--उद्देशक: ४ भोगासक्ति:	२६१	१९४	--उद्देशक: २ कर्मविधुननं		❋-❋	अध्ययनं १ पिण्डैषणा	
०८८	--उद्देशक: ५ लोकनिश्रा	२६७	१९८	--उद्देशक: ३ उपकरण एवं		३३५	-- (उद्देशका: १...११)	
०९८	--उद्देशक: ६ अममत्वं	२९१		. शरीर-विधुननं			आहारग्रहण विधि: एवं निषेध:	
❋-❋	अध्ययनं ३ शीतोष्णीयं		२०१	--उद्देशक: ४ गौरवत्रिकविधुननं			आहारार्थे गमनविधि:,सङ्खडी-	
१०९	--उद्देशक: १ भावसुप्त:		२०७	--उद्देशक: ५ उपसर्ग-सन्मान .			दोष:,पानकग्रहण विधि:,भोजन	
११५	--उद्देशक: २ दु:खानुभव:			विधुननं			ग्रहण विधि:, इत्यादि:|	
१२५	--उद्देशक: ३ अक्रिया		❋-❋	**“अध्ययनं ७ व्युच्छिन्नम्”**	-------	❋-❋	अध्ययनं २ शय्यैषणा	
१३४	--उद्देशक: ४ कषायवमनं		❋-❋	अध्ययनं ८ विमोक्षं		३९८	-- (उद्देशका: १...३)	
❋-❋	अध्ययनं १ सम्यक्त्वं		२१०	--उद्देशक: १ कुशीलपरित्याग:			शय्या-वसति ग्रहणे निषेध: व	-----
१३९	--उद्देशक: १ सम्यकवाद:		२१५	--उद्देशक: २अकल्प्यपरित्याग:			विधि:, संस्तारक प्रतिमा	

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

मूलाङ्का: ५५२ **आचाराङ्ग सूत्रस्य विषयानुक्रम भाग-१ एवं २** निर्युक्ति गाथा: ३५६

मूलां	विषय:	पृष्ठांक
	श्रुतस्कंध- २ चूडा-१	
※-※	अध्ययनं ३ इर्य्या	
४४५	-- (उद्देशका: १...३)	
	विहार निषेध: व विधि: वर्षा-वास:, गमनागमन विधि: व निषेध:,पथिना सह वार्ताविधि	
※-※	अध्ययनं ४ भाषाजातं	
४६६	--उद्देशक: १ वचनविभक्ति:	
४७०	--उद्देशक: २ क्रोधोत्पतिवर्जनं	
※-※	अध्ययनं ५ वस्त्रैषणा	
४७५	--उद्देशक: १ वस्त्रग्रहणविधि:	
४८३	--उद्देशक: २ वस्त्रधारणविधि:	

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक
※-※	अध्ययनं ६ पात्रैषणा	
४८६	-- (उद्देशका: १, २)	
	पात्रस्वरूपं, पात्रग्रहण विधि:-निषेधश्च, पात्र पडिमा, पात्र प्रमार्जना, पात्र परिग्रहणम्	-----
※-※	अध्ययनं ७ अवग्रह प्रतिमा	
४९५	-- (उद्देशका: १, २)	
	अवग्रह आदि याचनाविधि: एवं अवग्रह पडिमा(७)	-----
	▶ चूडा-२ ◀	
४९७	सप्तैकक १ स्थानं	
४९८	सप्तैकक २ निषिधिका:	

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
४९९	सप्तैकक ३ उच्चार-प्रश्रवणं	
५०२	सप्तैकक ४ शब्द:	
५०५	सप्तैकक ५ रूप:	
५०६	सप्तैकक ६ परक्रिया	
५०७	सप्तैकक ७ अन्योन्यक्रिया	
	▶ चूडा-३ ◀	
५०९	भगवन् महावीरस्य च्यवन,जन्म, दीक्षादि वर्णनम्, पंच महाव्रतस्य प्ररूपणा, तस्य पंच-पंच भावना	
	▶ चूडा-४ ◀	
५४१--५५२	अनित्यभावना, मुने:हस्ति आदि उपमा,अन्त्कृत्+मोक्षगामी मुनि०	

आचाराङ्ग सूत्रस्य संक्षिप्त विषयानुक्रम: परिसमाप्त:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

[आचार- मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले “आचाराङ्गसूत्र” के नामसे सन १९१६ (विक्रम संवत १९७२) में आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

इसी प्रत को फिर अपने नामसे ‘जिनशासन आराधना ट्रस्ट’ की तरफ से आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजीने छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, ऊपर अपना नाम एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. यह स्पष्ट रूपसे एक प्रकारसे अदत्तादान ही है, ऐसी अनेक प्रतो के अगले दो पेज पलटकर या नए डालकर उन्होंने अपने नामसे छपवाइ है, इस तरह वो अपने आपको बड़ा आगम संरक्षक साबित करनेकी अनुचित चेष्टा कर चुके है |

इसी आचारांग सूत्र की प्रत को ऑफसेट की मदद से आचार्य श्री नयचंद्रसागरसूरिजीने भी छपवाया है, समुदाय की वफादारी निभाते हुए इस पूज्यश्रीने पूज्य सागरानंदसूरीश्वरजी महाराजश्री का नाम बड़ी इज्जत के साथ अपनी जगह पे ही रखा है, और खुदका नाम पुन: संपादक रूप से पेश किया है | अपनी प्रस्तावनामें नयचंद्रसागरसूरिजी ने भी मेरी तरह उक्त बात का उल्लेख किया है|

इसी आचारांगसूत्र की प्रत को ऑफसेट की मदद से पूज्य जम्बूविजयजी महाराजजीने श्री मोतीलाल बनारसीदास की तरफसे प्रकाशित करवाई है, जो की पुस्तक रूपसे बाईंडेड है, और परिशिष्टमें पूज्य श्री पुन्यविजयजी संकलित शुद्धि-वृद्धि पत्रक दिया है|

✜ - हमारा ये प्रयास क्यों? -✜ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर श्रुतस्कंध-अध्ययन-उद्देशक-मूलसूत्र-निर्युक्ति आदि के नंबर लिख दिए, ताकिँ पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा अध्ययन, उद्देशक आदि चल रहे है उसका सरलतासे ज्ञान हो शके, बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ ‘दीप अनुक्रम’ भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके| हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची है| हर पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट लिखी है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये ‘सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि’ भाग-१ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है | ......मुनि दीपरत्नसागर.

आगम (०१)	[भाग-1] "आचार" – अंगसूत्र-१ (मूलं+निर्युक्ति:+वृत्ति:) श्रुतस्कंध [१.], अध्ययन [–], उद्देशक [–], मूलं [–], निर्युक्ति: [–]
प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	**पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:** ॥ अर्हम् ॥ श्रीसुधर्मस्वामिविरचितं । श्रीश्रुतकेवलिभद्रबाहुस्वामिदृब्धनिर्युक्तियुतं । श्रीशीलाङ्काचार्यविहितविवरणसमन्वितं । **श्रीआचाराङ्गसूत्रम् ।** ॐ नमः सर्वज्ञाय ॥ जयति समस्तवस्तुपर्यायविचारापास्ततीर्थिकं, विहितैकैकतीर्थनयवादसमूहवशात्प्रतिष्ठितम् । बहुविधभङ्गिसिद्धसिद्धान्तविधूनितमलमलीमसं, तीर्थमनादिनिधनगतमनुपममादिनतं जिनेश्वरैः ॥१॥ (स्कन्दकच्छन्दः) आ- चारशास्त्रं सुविनिश्चितं यथा, जगाद वीरो जगते हिताय यः । तथैव किञ्चिद्गदतः स एव मे, पुनातु धीमान् विनयार्पिता १ गिरः ॥ २ ॥ शस्त्रपरिज्ञाविवरणमतिबहुगहनं च गन्धहस्तिकृतम् । तस्मात् सुखबोधार्थं गृह्णाम्यहमञ्जसा सारम् ॥ ३ ॥ Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org
	वृत्तिकार रचित आरम्भिक गाथा:

आगम (०१)	[भाग-1] "आचार" – अंगसूत्र-१ (मूलं+निर्युक्ति:+वृत्ति:) श्रुतस्कंध [१.], अध्ययन [–], उद्देशक [–], मूलं [–], निर्युक्ति: [–]
प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	**पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:**

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः१

इह हि रागद्वेषमोहाद्यभिभूतेन सर्वेणापि संसारिजन्तुना शारीरमानसानेकातिकटुकदुःखोपनिपातपीडितेन तदपनयनाय हेयोपादेयपदार्थपरिज्ञाने यत्नो विधेयः, स च न विशिष्टविवेकमृते, विशिष्टविवेकश्च न प्राप्ताशेषातिशयकलापाप्तोपदेशमन्तरेण, आप्तश्च रागद्वेषमोहादीनां दोषाणामात्यन्तिकप्रक्षयात्, स चार्हत एव, अतः प्रारभ्यतेऽर्हद्वचनानुयोगः, स च चतुर्धा, तद्यथा—धर्मकथानुयोगो गणितानुयोगो द्रव्यानुयोगश्चरणकरणानुयोगश्चेति, तत्र धर्मकथानुयोग उत्तराध्ययनादिकः, गणितानुयोगः सूर्यप्रज्ञप्त्यादिकः, द्रव्यानुयोगः पूर्वाणि सम्मत्यादिकश्च, चरणकरणानुयोगश्चाचारादिकः, स च प्रधानतमः, शेषाणां तदर्थत्वात्, तदुक्तम्—[1]"चरणपडिवत्तिहेउं जेणियरे तिण्णि अणुओग"त्ति, तथा "चरणपडिवत्तिहेउं धम्मकहाकालदिक्खमादीया । दविए दंसणसोही दंसणसुद्धस्स चरणं तु ॥ १ ॥" गणधरैरप्यत एव तस्यैवादौ प्रणयनमकारि, अतस्तत्प्रतिपादकस्याचाराङ्गस्यानुयोगः समारभ्यते, स च परमपदप्राप्तिहेतुत्वात्सविघ्नः, तदुक्तम्—"श्रेयांसि बहुविघ्नानि, भवन्ति महतामपि । अश्रेयसि प्रवृत्तानां, क्वापि यान्ति विनायकाः ॥ १ ॥" तस्मादशेषप्रत्यूहोपशमनाय मङ्गलमभिधेयं, तच्चादिमध्यावसानभेदात्त्रिधा, तत्रादिमङ्गलं 'सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खाय'मित्यादि, अत्र च भगवद्वचनानुवादो मङ्गलम्, अथवा श्रुतमिति श्रुतज्ञानं, तच्च नन्द्यन्तःपातित्वान्मङ्गलमिति, एतच्चाविघ्नेनाभिलषितशास्त्रार्थपारगमनकारणं, मध्यमङ्गलं लोकसाराध्ययनपञ्चमोद्देशकसूत्रं 'से जहा केवि हरए पडिपुण्णे चिट्ठइ समंसि भोम्मे उवसन्तरए सारक्खमाणे'इत्यादि, अत्र च ह्रदगुणैराचार्य्यगुणोत्कीर्त्तनम्, आचार्याश्च पञ्चनमस्का- ॥ १ ॥

[1] चरणप्रतिपत्तिहेतवो येनेतरे त्रयोऽनुयोगाः । चरणप्रतिपत्तिहेतवो धर्मकथाकालदीक्षादिकाः । द्रव्ये दर्शनशुद्धिर्दर्शनशुद्धस्य चरणं तु ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घात:, चतुर् अनुयोग:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

रान्तःपातित्वान्मङ्गलमिति, एतच्चाभिलषितशास्त्रार्थस्थिरीकरणार्थम्, अवसानमङ्गलं नवमाध्ययनेऽवसानसूत्रम् 'अभिनिव्वुडे अमाई आवकहाए भगवं समियासी' अत्राभिनिर्वृतग्रहणं संसारमहातरुकन्दोच्छेद्यऽविप्रतिपत्त्या ध्यानकारित्वान्मङ्गलमिति, एतच्च शिष्यप्रशिष्यसन्तानाव्यवच्छेदार्थमिति, अध्ययनगतसूत्रमङ्गलत्वप्रतिपादनेनैवाध्ययनानामपि मङ्गलत्वमुक्तमेवेति न प्रतन्यते, सर्वमेव वा शास्त्रं मङ्गलं, ज्ञानरूपत्वात्, ज्ञानस्य च निर्जरार्थत्वात्, निर्जरार्थत्वेन च तस्याविप्रतिपत्तिः, यदुक्तम्—"जं अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहिं । तं नाणी तिहिँ गुत्तो खवेइ उस्सासमित्तेणं ॥ १ ॥" मङ्गलशब्दनिरुक्तं च मां गालयत्यपनयति भवादिति मङ्गलं, मा भूद्गलो विघ्नो गालो वा नाशः शास्त्रस्येति मङ्गलमित्यादि, शेषं त्वाक्षेपपरिहारादिकमन्यतोऽवसेयमिति ।

साम्प्रतमाचारानुयोगः प्रारभ्यते—आचारस्यानुयोगः-अर्थकथनमाचारानुयोगः, सूत्रादनु-पश्चादर्थस्य योगोऽनुयोगः, सूत्राध्ययनात्पश्चादर्थकथनमिति भावना, अणोर्वा लघीयसः सूत्रस्य महताऽर्थेन योगोऽनुयोगः, स चामीभिर्द्वारैरनुगन्तव्यः, तद्यथा-निक्खेवेगट्ठनिरुत्तिविहिपवित्ती य केण वा कस्स । तद्दारभेयलक्खण तदरिहपरिसा य सुत्तत्थो ॥ १ ॥ तत्र निक्षेपो–नामादिः सप्तधा, नामस्थापने क्षुण्णे, द्रव्यानुयोगो द्वेधा-आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो ज्ञाता तत्र चानुपयुक्तो, नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरतद्व्यतिरिक्तोऽनेकधा, द्रव्येण-सेटिकादिना द्रव्यस्य-आत्मपरमाण्वादेर्द्रव्ये-निषद्यादौ वा अनुयोगो द्रव्यानुयोगः, क्षेत्रानुयोगः क्षेत्रेण क्षेत्रस्य क्षेत्रे वाऽनुयोगः क्षेत्रानुयोगः, एवं कालेन कालस्य

* प्रतिशिष्येति प्र. १ यदज्ञानी कर्म क्षपयति बहुकाभिर्वर्षकोटीभिः । तज्ज्ञानी त्रिभिर्गुप्तः क्षपयत्युच्छ्वासमात्रेण ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घात:, आचारस्य अनुयोग:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ २ ॥ | अध्ययनं १ उद्देशकः १

काले वाऽनुयोगः कालानुयोगः, वचनानुयोग एकवचनादिना, भावानुयोगो द्वेधा–आगमतो नोआगमतश्च, तत्राग-
मतो ज्ञातोपयुक्तो, नोआगमतस्तु औपशमिकादिभावैः, तेषां चानुयोगोऽर्थकथनं भावानुयोगः, शेषमावश्यकानुसारेण
ज्ञेयं, केवलमिहानुयोगस्य प्रस्तुतत्वात्तस्य चाचार्याधीनत्वात् केनेति द्वारं विव्रियते, तथोपक्रमादीनि च द्वाराणि प्रचुर-
तरोपयोगित्वात्प्रदर्श्यन्ते, तत्र केनेति कथम्भूतेन ?, यथाभूतेन च सूरिणा व्याख्या कर्त्तव्या तथा प्रदर्श्यते–“देसकुल-
जाइरूवी संघयणी धिइजुओ अणासंसी। अविकत्थणो अमाई थिरपरिवाडी गहियवक्को ॥ १ ॥ जियपरिसो जियनिद्दो
मज्झत्थो देसकालभावन्नू। आसन्नलद्धपइभो णाणाविहदेसभासण्णू ॥ २ ॥ पंचविहे आयारे जुत्तो सुत्तत्थतदुभयवि-
हिन्नू। आहरणहेउकारणणयणिउणो गाहणाकुसलो ॥ ३ ॥ ससमयपरसमयविऊ गंभीरो दित्तिमं सिवो सोमो। गुण-
सयकलिओ जुत्तो पवयणसारं परिकहेउं ॥ ४ ॥ आर्यदेशोद्भूतः सुखावबोधवचनो भवतीत्यतो देशग्रहणं, पैतृकं कुल-
मिक्ष्वाक्वादि ज्ञातकुलश्च यथोत्क्षिप्तभारवहने न श्राम्यतीति, मातृकी जातिस्तत्संपन्नो विनयादिगुणवान् भवति, ‘यत्रा-
कृतिस्तत्र गुणा वसन्ती’ति रूपग्रहणं, संहननधृतियुतो व्याख्यानादिषु न खेदमेति, अनाशंसी श्रोतृभ्यो न वस्त्राद्याका-
ङ्क्षति, अविकत्थनो हितमितभाषी, अमायी सर्वत्र विश्वास्यः, स्थिरपरिपाटिः परिचितग्रन्थस्य सूत्रार्थगलनासंभवात्,
ग्राह्यवाक्यः सर्वत्रास्खलिताज्ञः, जितपर्षद् राजादिसदसि न क्षोभमुपयाति, जितनिद्रोऽप्रमत्तत्वान्निद्राप्रमादिनः शिष्यान्
सुखेनैव प्रबोधयति, मध्यस्थः शिष्येषु समचित्तो भवति, देशकालभावज्ञः सुखेनैव गुणवद्देशादौ विहरिष्यति, आसन्न- ॥ २ ॥
लब्धप्रतिभो द्राक् परवाद्युत्तरदानसमर्थो भवति, नानाविधदेशभाषाविधिज्ञस्य नानाविधदेशजाः शिष्याः व्याख्यानं सु-

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घात:, आचारस्य अनुयोग:

<table>
<tr><td>आगम
(०१)</td><td>[भाग-1] “आचार” – अंगसूत्र-१ (मूलं+निर्युक्ति:+वृत्ति:)
श्रुतस्कंध [१.], अध्ययन [–], उद्देशक [–], मूलं [–], निर्युक्ति: [–]</td></tr>
</table>

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

खमवभोत्स्यन्ते, ज्ञानाद्याचारपञ्चकयुक्तः श्रद्धेयवचनो भवति, सूत्रार्थतदुभयविधिज्ञ उत्सर्गापवादप्रपञ्चं यथावद् ज्ञापयिष्यति, हेतूदाहरणनिमित्तनयप्रपञ्चज्ञः अनाकुलो हेत्वादीनाचष्टे, ग्राहणाकुशलो बह्वीभिर्युक्तिभिः शिष्यान् बोधयति, स्वसमयपरसमयज्ञः सुखेनैव तत्स्थापनोच्छेदौ करिष्यति, गम्भीरः खेदसहः, दीप्तिमान् पराधृष्यः, शिवहेतुत्वात् शिवः, तदधिष्ठितदेशे मार्य्याद्युपशमनात्, सौम्यः सर्वजननयनमनोरमणीयः, गुणशतकलितः प्रश्रयादिगुणोपेतः, एवंविधः सूरिः प्रवचनानुयोगे योग्यो भवति ॥ तस्य चानुयोगस्य महापुरस्येव चत्वार्यनुयोगद्वाराणि–व्याख्याङ्गानि भवन्ति, तद्यथा –उपक्रमो निक्षेपोऽनुगमो नयः, तत्रोपक्रमणमुपक्रमः उपक्रम्यतेऽनेनास्मादस्मिन्निति वोपक्रमः–व्याचिख्यासितशास्त्रस्य समीपानयनमित्यर्थः, स च शास्त्रीयलौकिकभेदाद् द्विधा, तत्र शास्त्रीयः आनुपूर्वी नाम प्रमाणं वक्तव्यताऽर्थाधिकारः समवतारश्चेति षोढा, लौकिको नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् षोढैव । निक्षेपणमनेनास्मादस्मिन्निति वा निक्षेपः, उपक्रमानीतस्य व्याचिख्यासितशास्त्रस्य नामादिन्यसनमित्यर्थः, स च त्रिविधः, तद्यथा—ओघनिष्पन्नो नामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्च, तत्रौघनिष्पन्नोऽङ्गाध्ययनादिसामान्याभिधानन्यासः, नामनिष्पन्न आचारशस्त्रपरिज्ञादिविशेषाभिधाननामादिन्यासः, सूत्रालापकनिष्पन्नश्च सूत्रालापकानां नामादिन्यसनमिति । अनुगमनमनेनास्मादस्मिन्निति वाऽनुगमः, अर्थकथनमित्यर्थः, स च द्विधा–निर्युक्त्यनुगमः सूत्रानुगमश्चेति, तत्र निर्युक्त्यनुगमस्त्रिविधः, तद्यथा–निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमः उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमः सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमश्चेति, तत्र निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमो निक्षेप एव सामान्यविशेषाभिधानयोरोघनिष्पन्ननामनिष्पन्नाभ्यां निक्षेपाभ्यामनुगतः सूत्रापेक्षया वक्ष्यमाणलक्षणश्चेति, उपोद्घात-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घात:, चत्वारि अनुयोगद्वाराणि- उपक्रम आदि

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ ३ ॥

अध्ययनं १

उद्देशकः १

निर्युक्त्यनुगमश्चाभ्यां द्वारगाथाभ्यामनुगन्तव्यः, तद्यथा–“उद्देसे णिद्देसे य णिग्गमे खेत्तकालपुरिसे य । कारणपच्चयलक्खण णए समोयारणाऽणुमए ॥ १ ॥ किं कतिविहं कस्स कहिं केसु कहं केच्चिरं हवइ कालं । कइ संतरमविरहियं भवागरिस फासणणिरुत्ती ॥ २ ॥” सूत्रस्पार्शिकनिर्युक्त्यनुगमः सूत्रावयवानां नयैः साक्षेपपरिहारमर्थकथनं, स च सूत्रे सति भवति, सूत्रं च सूत्रानुगमे, स च सूत्रोच्चारणरूपः पदच्छेदरूपश्चेति । अनन्तधर्माध्यासितं वस्त्वेकेनैव धर्मेण नयन्ति -परिच्छिन्दन्तीति ज्ञानविशेषा नयाः, ते च नैगमादयः सप्तेति । साम्प्रतमाचाराङ्गस्योपक्रमादीनामनुयोगद्वाराणां यथायोगं किञ्चिद् बिभणिषुरशेषप्रत्यूहोपशमनाय मङ्गलार्थं प्रेक्षापूर्वकारिणां च प्रवृत्त्यर्थं सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनप्रतिपादिकां निर्युक्तिकारो गाथामाह––

वंदित्तु सव्वसिद्धे जिणे अ अणुओगदायए सव्वे । आयारस्स भगवओ निज्जुत्तिं कित्तइस्सामि ॥ १ ॥

तत्र वन्दित्वा सर्वसिद्धान् जिनांश्चेति मङ्गलवचनम्, अनुयोगदायकानित्येतच्च सम्बन्धवचनमपि, आचारस्येत्यभिधेयवचनं, निर्युक्तिं करिष्ये इति प्रयोजनकथनमिति तात्पर्यार्थः, अवयवार्थस्तु ‘वन्दित्वे’ति ‘वदि अभिवादनस्तुत्यो’रित्यर्थद्वयाभिधायी धातुः, तत्राभिवादनं कायेन स्तुतिर्वाचा, अनयोश्च मनःपूर्वकत्वात्करणत्रयेणापि नमस्कार आवेदितो भवति, सितं ध्मातमेषामिति सिद्धाः–प्रक्षीणाशेषकर्माणः, सर्वे च ते सिद्धाश्च सर्वसिद्धाः, सर्वग्र-

॥ ३ ॥

१ उद्देशो निर्देशश्च निर्गमः क्षेत्रं कालः पुरुषश्च । कारणं प्रत्ययः लक्षणं नयाः समवतारः अनुमतम् ॥ १ ॥ किं कतिविधं कस्य क्व केषु कथं कियच्चिरं भवति कालम् । कति सान्तरमविरहितं भवाकर्षाः स्पर्शना निरुक्तिः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घात:, निर्युक्ति गाथाएँ- वंदन एवं प्रतिज्ञा गाथा

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

हणं तीर्थातीर्थानन्तरपरम्परादिसिद्धप्रतिपादकं, तान्वन्दित्वेति सम्बन्धः सर्वत्र योज्यः, रागद्वेषजितो जिनाः—तीर्थकृतस्तानपि सर्वान् अतीतानागतवर्त्तमानसर्वक्षेत्रगतानिति, अनुयोगदायिनः–सुधर्मस्वामिप्रभृतयो यावदस्य भगवतो निर्युक्तिकारस्य भद्रबाहुस्वामिनश्चतुर्दशपूर्वधरस्याचार्योऽतस्तान् सर्वानिति, अनेन चाम्नायकथनेन स्वमनीषिकाव्युदासः कृतो भवति, 'वन्दित्वे'ति क्त्वाप्रत्ययस्योत्तरक्रियासव्यपेक्षत्वादुत्तरक्रियामाह–'आचारस्य' यथार्थनाम्नः 'भगवत' इति अर्थधर्मप्रयत्नगुणभाजस्तस्यैवंविधस्य, निश्चयेनार्थप्रतिपादिका युक्तिर्निर्युक्तिस्तां 'कीर्त्तयिष्ये' अभिधास्ये इति अन्तस्तत्त्वेन निष्पन्नां निर्युक्तिं बहिस्तत्त्वेन प्रकाशयिष्यामीत्यर्थः ॥१॥ यथाप्रतिज्ञातमेव बिभणिषुर्निक्षेपार्हाणि पदानि तावत् सुहृद्भूत्वाऽऽचार्यः संपिण्ड्य कथयति—

आयार अंग सुयखंध बंभ चरणे तहेव सत्थे य। परिण्णाए संणाए निक्खेवो तह दिसाणं च ॥ २ ॥

आचारअङ्गश्रुतस्कन्धब्रह्मचरणशस्त्रपरिज्ञासंज्ञादिशामित्येतेषां निक्षेपः कर्त्तव्य इति । तत्राचारब्रह्मचरणशस्त्रपरिज्ञाशब्दा नामनिष्पन्ने निक्षेपे द्रष्टव्याः, अङ्गश्रुतस्कन्धशब्दा ओघनिष्पन्ने, संज्ञादिक्शब्दौ सूत्रालापकनिष्पन्ने निक्षेपे द्रष्टव्याविति ॥ २ ॥ एतेषां मध्ये कस्य कतिविधो निक्षेप इत्यत आह—

चरणदिसावज्जाणं निक्खेवो चउक्कओ य नायव्वो। चरणंमि छव्विहो खलु सत्तविहो होइ उ दिसाणं ॥३॥

१ चान्द्रमतेन णिज उभयपदभावात्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्‌घात:, निर्युक्ति गाथाएँ- आयार, अंग, इत्यादि शब्दस्य निक्षेपा:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

चरणदिग्वर्जानां चतुर्विधो निक्षेपः, चरणस्य षड्विधः, दिक्शब्दस्य सप्तविधो निक्षेपः, अत्र च क्षेत्रकालादिकं यथासम्भवमायोज्यम् ॥ ३ ॥ नामादिचतुष्टयं सर्वव्यापीति दर्शयितुमाह—

॥ ४ ॥ जत्थ य जं जाणिज्जा निक्खेवं निक्खिवे निरवसेसं । जत्थविय न जाणिज्जा चउक्कयं निक्खिवे तत्थ ॥ ४ ॥

'यत्र' चरणदिक्शब्दादौ यं निक्षेपं-क्षेत्रकालादिकं जानीयात्तं तत्र निरवशेषं निक्षिपेद्, यत्र तु निरवशेषं न जानीयादाचाराङ्गादौ तत्रापि नामस्थापनाद्रव्यभावचतुष्कात्मकं निक्षेपं निक्षिपेदित्युपदेश इति गाथार्थः ॥ ४ ॥ प्रदेशान्तरप्रसिद्धस्यार्थस्य लाघवमिच्छता निर्युक्तिकारेण गाथाऽभ्यधायि—

आयारे अंगंमि य पुव्वुद्दिट्ठो चउक्कनिक्खेवो । नवरं पुण नाणत्तं भावायारंमि तं वोच्छं ॥ ५ ॥

क्षुल्लिकाचारकथायामाचारस्य पूर्वोद्दिष्टो निक्षेपः अङ्गस्य तु चतुरङ्गाध्ययन इति, यश्चात्र विशेषः सोऽभिधीयते-'भावाचारविषय' इति ॥ ५ ॥ यथाप्रतिज्ञातमाह—

तस्सेगट्ठ पवत्तण पढमंग गणी तहेव परिमाणे । समोयारे सारो य सत्तहिं दारेहिं नाणत्तं ॥ ६ ॥

'तस्य' भावाचारस्य एकार्थाभिधायिनो वाच्याः, तथा केन प्रकारेण प्रवृत्तिः–प्रवर्त्तनमाचारस्याभूत् तच्च वाच्यं, तथा प्रथमाङ्गता च वाच्या, तथा गणी–आचार्यस्तस्य कतिविधं स्थानमिदमिति च वाच्यं, तथा 'परिमाणम्' इयत्ता वाच्या, तथा किं क्व समवतरतीत्येतच्च वाच्यं, तथा सारश्च वाच्यः, इत्येभिर्द्वारैः पूर्वस्माद्भावाचारादस्य भेदो–नानात्वमिति पिण्डार्थः ॥ ६ ॥ अवयवार्थं तु निर्युक्तिकृदेवाभिधातुमाह— ॥ ४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घात:, निर्युक्ति गाथाएँ- भावाचार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आयारो आचालो आगालो आगरो य आसासो। आयरिसो अंगंति य आइण्णाऽऽजाइ आमोक्खा ॥७॥

आचर्य्यते आसेव्यत इत्याचारः, स च नामादिचतुर्द्धा, तत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरतद्व्यतिरिक्तो द्रव्याचारोऽनया गाथयाऽनुसर्त्तव्यः—'णामणधोयणवासणसिक्खावणसुकरणाविरोहीणि । दव्वाणि जाणि लोए दव्वायारं वियाणाहि ॥ १ ॥' भावाचारो द्विधा-लौकिको लोकोत्तरश्च, तत्र लौकिकः पाषण्डिकादयः पञ्चरात्रादिकं यत् कुर्व्वन्ति स विज्ञेयो, लोकोत्तरस्तु पञ्चधा ज्ञानादिकः, तत्र ज्ञानाचारोऽष्टधा, तद्यथा—'काले विणए बहुमाणे उवहाणे तहा अणिण्हवणे । वंजणअत्थतदुभए अट्ठविहो णाणमायारो ॥ १ ॥' दर्शनाचारोऽप्यष्टधैव, तद्यथा—'निस्संकियनिक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य । उववूहथिरीकरणे वच्छलपभावणे अट्ठ ॥ २ ॥' चारित्राचारोऽप्यष्टधैव,—'तिन्नेव य गुत्तीओ पंच समिइओ अट्ठ मिलियाओ । पवयणमाईउ इमा तासु ठिओ चरणसंपन्नो ॥ ३ ॥' तपआचारो द्वादशधा, तद्यथा—'अणसणमूणोयरिया वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ । कायकिलेसो संलीणया य

१ नामनधावनवासनशिक्षणसुकरणाविरोधीनि । द्रव्याणि यानि लोके द्रव्याचारं विजानीहि ॥ १ ॥

२ कालो विनयः बहुमानः उपधानं तथा अनिह्नवः । व्यञ्जनमर्थस्तदुभयस्मिन् अष्टविधो ज्ञानाचारः ॥ १ ॥ निश्शङ्कितो निष्काङ्क्षितो निर्विचिकित्सोऽमूढदृष्टिश्च । उपबृंहा स्थिरीकरणं वात्सल्यं प्रभावनाऽष्टौ ॥ २ ॥ तिस्र एव च गुप्तयः पञ्च समितयोऽष्ट मिलिताः । प्रवचनमातर इमास्तासु स्थितश्चरणसंपन्नः ॥ ३ ॥ अनशनमवमौदर्यं वृत्तिसंक्षेपणं रसत्यागः । कायक्लेशः संलीनता च बाह्यं तपो भवति ॥ ४ ॥ प्रायश्चित्तं विनयो वैयावृत्त्यं तथैव स्वाध्यायः । ध्यानमुत्सर्गोऽपि च अभ्यन्तरं तपो भवति ॥ ५ ॥ अनिगूहितबलवीर्यः पराक्रमते यो यथोक्तमायुक्तः । युनक्ति च यथास्थाम ज्ञातव्यः स वीर्याचारः ॥ ६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घातः, आचार शब्दस्य पर्यायाः, पंचाचार वर्णनम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ५ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः १

बज्झो तवो होइ ॥ ४ ॥ पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं तहेव सज्झाओ । झाणं उस्सग्गोविय अब्भितरओ तवो होइ ॥ ५ ॥' वीर्याचारस्त्वनेकधा—'अणिगूहियबलविरिओ परक्कमइ जो जहुत्तमाउत्तो । जुंजइ य जहाथामं नायव्वो वीरियायारो ॥ ६ ॥' एष पञ्चविध आचारः, एतत्प्रतिपादकश्चायमेव ग्रन्थविशेषो भावाचारः, एवं सर्वत्र योज्यम् । इदानीमाचालः, आचाल्यतेऽनेनातिनिविडं कर्मादीत्याचालः, सोऽपि चतुर्धा, व्यतिरिक्तो वायुः, भावाचालस्त्वयमेव ज्ञानादिः पञ्चधा । इदानीमागालः, आगालनमागालः-समप्रदेशावस्थानं, सोऽपि चतुर्धा, व्यतिरिक्त उदकादेर्निम्नप्रदेशावस्थानं, भावागालो ज्ञानादिक एव, तस्यात्मनि रागादिरहितेऽवस्थानमितिकृत्वा । इदानीमाकरः, आगत्य तस्मिन् कुर्वन्तीत्याकरः, नामादिः, तत्र व्यतिरिक्तो रजतादिः, भावाकरोऽयमेव ज्ञानादिः, तत्प्रतिपादकश्चायमेव ग्रन्थो, निर्जरादिरत्नानामत्र लाभात् । इदानीमाश्वासः, आश्वसन्त्यस्मिन्नित्याश्वासो नामादिः, तत्र व्यतिरिक्तो यानपात्रद्वीपादिः, भावाश्वासो ज्ञानादिरेव । इदानीमादर्शः, आदृश्यते अस्मिन्नित्यादर्शो नामादिः, व्यतिरिक्तो दर्पणः, भावादर्श उक्त एव, यतोऽस्मिन्नितिकर्त्तव्यता दृश्यते । इदानीमङ्गम्, अज्यते-व्यक्तीक्रियते अस्मिन्नित्यङ्गं, नामाद्येव, तत्र व्यतिरिक्तं शिरोबाह्वादि, भावाङ्गमयमेवाचारः । इदानीमाचीर्णम्-आसेवितं, तच्च नामादिषोढा, तत्र व्यतिरिक्तं द्रव्याचीर्णं सिंहादेस्तृणादिपरिहारेण पिशितभक्षणं, क्षेत्राचीर्णं वाल्हीकेषु सक्तवः कोङ्कणेषु पेया, कालाचीर्णं त्विदं-'सरसो चंदणपंको अग्घइ सरसा य गंधकासाई । पाडलिसिरीसमल्लिय पियाइँ काले निदाहंमि ॥ १ ॥' भावाचीर्णं तु ज्ञानादिपञ्चकं, तत्प्रतिपादकश्चाचा- ॥ ५ ॥

१ सरसश्चन्दनपङ्कोऽर्घति सरसा च गन्धकाषायिकी । पाटलशिरीषमल्लिकाः प्रियाः काले निदाघे ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घात:, आचार शब्दस्य पर्याया:,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

रग्रन्थः। इदानीमाजातिः, आजायन्ते तस्यामित्याजातिः, साऽपि चतुर्द्धा, व्यतिरिक्ता मनुष्यादिजातिः, भावाजातिस्तु ज्ञानाद्याचारप्रसूतिरयमेव ग्रन्थ इति। इदानीमामोक्षः, आमुच्यन्तेऽस्मिन्नित्यामोक्षणं वाऽऽमोक्षो, नामादिः, तत्र व्यतिरिक्तो निगडादेः, भावामोक्षः कर्माष्टकोद्वेष्टनमशेषमेतत्साधकश्चायमेवाचार इति। एते किञ्चिद्विशेषादेकमेवार्थं विशिंषन्तः प्रवर्त्तन्त इत्येकार्थिकाः, शक्रपुरन्दरादिवत्, एकार्थाभिधायिनां च छन्दश्चितिबन्धानुलोम्यादिप्रतिपत्त्यर्थमुद्घट्टनम्, उक्तं च—"बंधाणुलोमया खलु सत्थंमि य लाघवं असम्मोहो। संतगुणदीवणाविय एगट्ठगुणा हवंतेए ॥१॥" ॥७॥ इदानीं प्रवर्त्तनाद्वारं, कदा पुनर्भगवताऽऽचारः प्रणीत इत्यत आह—

सव्वेसिं आयारो तित्थस्स पवत्तणे पढमयाए। सेसाइं अंगाइं एक्कारस आणुपुव्वीए ॥ ८ ॥

सर्वेषां तीर्थङ्कराणां तीर्थप्रवर्त्तनादावाचारार्थः प्रथमतयाऽभवद्भवति भविष्यति च, ततः शेषाङ्गार्थ इति, गणधरा अप्यनयैवानुपूर्व्या सूत्रतया ग्रथ्नन्तीति ॥ ८ ॥ इदानीं प्रथमत्वे हेतुमाह—

आयारो अंगाणं पढमं अंगं दुवालसण्हंपि। इत्थ य मोक्खोवाओ एस य सारो पवयणस्स ॥ ९ ॥

अयमाचारो द्वादशानामप्यङ्गानां प्रथममङ्गमित्यनूद्य कारणमाह—यतोऽत्र मोक्षोपायः-चरणकरणं प्रतिपाद्यते, एष च प्रवचनस्य सारःप्रधानमोक्षहेतुप्रतिपादनाद्, अत्र च स्थितस्य शेषाङ्गाध्ययनयोग्यत्वाद् अस्य प्रथमतयोपन्यास इति॥९॥ इदानीं गणिद्वारं, साधुवर्गो गुणगणो वा गणः सोऽस्यास्तीति गणी, आचारायत्तं च गणित्वमिति प्रदर्शयन्नाह—

१ बन्धानुलोमता खलु शास्त्रे च लाघवमसंमोहः। सद्गुणदीपनमपि च एकार्थगुणा भवन्त्येते ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घात:, 'आचार' अंगसूत्रस्य प्रथमत्वम्

प्रत
सूत्रांक
[–]
दीप
अनुक्रम
[–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचा-राङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ६ ॥

अध्ययनं१ उद्देशकः१

आयारम्मि अहीए जं नाओ होइ समणधम्मो उ। तम्हा आयारधरो भण्णइ पढमं गणिट्ठाणं॥ १०॥

यस्मादाचाराध्ययनात् क्षान्त्यादिकश्चरणकरणात्मको वा श्रमणधर्म्मः परिज्ञातो भवति, तस्मात्सर्वेषां गणित्वकारणानामाचारधरत्वं प्रथमम् आद्यं प्रधानं वा गणिस्थानमिति ॥१०॥ इदानीं परिमाणं–किं पुनरस्याध्ययनतः पदतश्च परिमाणमित्यत आह—

णवबंभचेरमइओ अट्ठारसपयसहस्सिओ वेओ। हवइ य सपंचचूलो बहुबहुतरओ पयग्गेणं॥ ११॥

तत्राध्ययनतो नवब्रह्मचर्य्याभिधानाध्ययनात्मकोऽयं पदतोऽष्टादशपदसहस्रात्मको ‘वेद’ इति विदन्त्यस्माद्धेयोपादेयपदार्थानिति वेदः-क्षायोपशमिकभाववर्त्ययमाचार इति। सह पञ्चभिश्चूडाभिर्वर्त्तत इति सपञ्चचूडश्च भवति, उक्तशेषानुवादिनी चूडा, तत्र प्रथमा *‘पिंडेसण (१) सेज्जिरिया (२) भास (३) ज्जाया (४) य वत्थ (५) पाएसा (६) उग्गहपडिमत्ति (७)’ सप्ताध्ययनात्मिका, द्वितीया सत्तसत्तिकया, तृतीया भावना, चतुर्थी विमुक्तिः, पञ्चमी निशीथाध्ययनं, ‘बहुबहुरओ पदग्गेणं’ति तत्र चतुश्चूलिकात्मकद्वितीयश्रुतस्कन्धप्रक्षेपाद्बहुः, निशीथाख्यपञ्चमचूलिकाप्रक्षेपाद्बहुतरोऽनन्तगमपर्य्यायात्मकतया बहुतमश्च, पदाग्रेण-पदपरिमाणेन भवतीति ॥११॥ इदानीमुपक्रमान्तर्गतं समवतारद्वारं, तत्रैताश्चूडा नवसु ब्रह्मचर्याध्ययनेष्ववतरन्तीति दर्शयितुमाह—

॥ ६ ॥

* पिंडेसणसिज्जिरिया भासा वत्थेसणा य पाएसा इति प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घात:, आचार सूत्रस्य अध्ययनानि एवं पद प्रमाणम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आयारग्गाणत्थो बंभचेरेसु सो समोयरइ। सोऽवि य सत्थपरिण्णाएँ पिंडिअत्थो समोयरइ ॥ १२ ॥
सत्थपरिण्णाअत्थो छस्सुवि काएसु सो समोयरइ। छज्जीवणियाअत्थो पंचसुवि वएसु ओयरइ ॥ १३ ॥
पंच य महव्वयाइं समोयरंते य सव्वदव्वेसुं। सव्वेसिं पज्जवाणं अणंतभागम्मि ओयरइ ॥ १४ ॥

उत्तानार्थाः, नवरम् 'आचाराग्राणि'चूलिकाः द्रव्याणि-धर्मास्तिकायादीनि पर्याया-अगुरुलघ्वादयः तेषामनन्तभागे व्रतानामवतार इति ॥ १२-१३-१४ ॥ कथं पुनर्महाव्रतानां सर्वद्रव्येष्ववतार इति?, तदाह—

छज्जीवणिया[१] पढमे बीए चरिमे य सव्वदव्वाइं। सेसा महव्वया खलु तदेक्कदेसेण दव्वाणं ॥ १५ ॥

'छज्जीवणिया'इत्यादिस्पष्टा, कथं पुनर्महाव्रतानां सर्वद्रव्येष्ववतारो न सर्वपर्यायेष्विति उच्यते, येनाभिप्रायेण चोदितवांस्तमाविष्कर्तुमाह—“णणु सव्वणभपएसाणंतगुणं पढमसंजमट्ठाणं। छव्विहपरिवुड्ढीए छट्ठाणासंखया सेढी ॥ १ ॥ अन्ने के पज्जाया? जेणुवउत्ता चरित्तविसयम्मि। जे तत्तोऽणंतगुणा जेसिं तमणंतभागम्मि ॥ २ ॥ अन्ने केवलगम्मत्ति ते मई ते य के तदब्भहिया?। एवंपि होज्ज तुल्ला णाणंतगुणत्तणं जुत्तं ॥ ३ ॥ चो०। सेढीसु णाणदंसणपज्जाया तेण तप्पमाणेसा। इह पुण चरित्तमेत्तोवओगिणो तेण ते थोवा ॥ ४ ॥ अयमासामर्थो लेशतः—नन्वित्यसूयायां, संयमस्थानान्यसंख्यातानि तावद्भवन्ति, तेषां यज्जघन्यं तदविभागपलिच्छेदेन बुद्ध्या खण्ड्यमानं पर्यायैरनन्ताविभागपलिच्छेदात्मकं भवति, तच्च पर्यायसंख्यया निर्दिष्टं सर्वाकाशप्रदेशसंख्याया अनन्तगुणं, सर्वनभःप्रदेशवर्गीकृतप्रमाणमित्यर्थः, ततो द्विती-

१ षड्जीवनिकायः प्रथमे द्वितीये चरमे च सर्वद्रव्याणि। शेषाणि महाव्रतानि खलु तदेकदेशेन द्रव्याणाम्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घात:, महाव्रतानाम् सर्वद्रव्येषु अवतार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

यादिस्थानैरसंख्यातगच्छगतैरनन्तभागादिकया वृद्ध्या षट्स्थानकानामसंख्येयस्थानगता श्रेणिर्भवति, एवं चैकमपि स्थानं सर्वपर्यायान्वितं न शक्यते परिच्छेत्तुं, किं पुनः सर्वाण्यपीत्यतः केऽन्ये पर्यायाः? येषामनन्तभागे व्रतानि वर्तेरन्निति । स्यान्मतिः, अन्ये केवलगम्या इति, इदमुक्तं भवति–केवलगम्याप्रज्ञापनीयपर्य्यायाणामपि तत्र प्रक्षेपाद्बहुत्वम्, एवमपि ज्ञानज्ञेययोस्तुल्यत्वात्तुल्या एव नानन्तगुणा इति । अत्रा॑चार्य्य आह–याऽसौ संयमस्थानश्रेणिर्निरूपिता सा सर्वा चारित्रपर्य्यायैर्ज्ञानदर्शनपर्यायसहितैः परिपूर्णा तत्प्रमाणा–सर्वाकाशप्रदेशानन्तगुणा, इह पुनश्चारित्रमात्रोपयोगित्वात्पर्यायानन्तभागवृत्तित्वमित्यदोषः । इदानीं सारद्वारं, कः कस्य सार इत्याह–

अंगाणं किं सारो? आयारो. तस्स हवइ किं सारो?। अणुओगत्थो सारो तस्सवि य परूवणा सारो ॥१६॥

स्पष्टा, केवलमनुयोगार्थो–व्याख्यानभूतोऽर्थस्तस्य प्ररूपणा–यथास्वं विनियोग इति । अन्यच्च–

सारो परूवणाए चरणं तस्सवि य होइ निव्वाणं । निव्वाणस्स उ सारो अव्वाबाहं जिणा बिंति ॥ १७॥

स्पष्टैव । इदानीं श्रुतस्कन्धपदयोर्नामादिनिक्षेपादिकं पूर्ववद्विधेयं, भावेन चेहाधिकारः, भावश्रुतस्कन्धश्च ब्रह्मचर्यात्मक इत्यतो ब्रह्मचरणशब्दौ निक्षेप्तव्यावित्याह–

बंभम्मी य चउक्कं ठवणाए होइ बंभणुप्पत्ती । सत्तण्हं वण्णाणं नवण्ह वण्णंतराणं च ॥ १८ ॥

तत्र ब्रह्म नामादिचतुर्द्धा, तत्र नामब्रह्म ब्रह्मेत्यभिधानम्, असद्भावस्थापना अक्षादौ सद्भावस्थापना प्रतिविशिष्टय-

१ आचार्या आहुः प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घात:, सार द्वार

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

ज्ञोपवीताद्याकृतिमृल्लेप्यादौ द्रव्ये, अथवा स्थापनायां व्याख्यायमानायां ब्राह्मणोत्पत्तिर्वक्तव्या, तत्प्रसङ्गेन च सप्तानां वर्णानां नवानां च वर्णान्तराणामुत्पत्तिर्भणनीयेति । यथाप्रतिज्ञातमाह—

एक्का मणुस्सजाई रज्जुप्पत्तीइ दो कया उसभे । तिण्णेव सिप्पवणिए सावगधम्मम्मि चत्तारि ॥ १९ ॥

यावन्नाभेयो भगवान्नाद्यापि राजलक्ष्मीमध्यास्ते, तावदेकैव मनुष्यजातिः, तस्यैव राज्योत्पत्तौ भगवन्तमेवाश्रित्य ये स्थितास्ते क्षत्रियाः, शेषाश्च शोचनाद्रोदनाच्च शूद्राः, पुनरग्न्युत्पत्तावयस्कारादिशिल्पवाणिज्यवृत्त्या वेशनाद्वैश्याः, भगवतो ज्ञानोत्पत्तौ भरतकाकणीलाञ्छनाच्छ्रावका एव ब्राह्मणा जज्ञिरे, एते शुद्धास्त्रयश्चान्ये गाथान्तरितगाथया प्रदर्शयिष्यन्ते ॥ साम्प्रतं वर्णवर्णान्तरनिष्पन्नं संख्यानमाह—

संजोगे सोलसगं सत्त य वण्णा उ नव य अंतरिणो । एए दोवि विगप्पा ठवणा बंभस्स णायव्वा ॥२०॥

संयोगेन षोडश वर्णाः समुत्पन्नाः, तत्र सप्त वर्णा नव तु वर्णान्तराणि, एतच्च वर्णवर्णान्तरविकल्पद्वयं स्थापनाब्रह्मेति ज्ञातव्यम् ॥ साम्प्रतं पूर्वसूचितं वर्णत्रयमाह–यदि वा प्रागुद्दिष्टान् सप्त वर्णानाह—

पगई चउक्कगाणंतरे य ते हुंति सत्त वण्णा उ । आणंतरेसु चरमो वण्णो खलु होइ णायव्वो ॥ २१ ॥

१ जे राय अस्सिता ते खत्तिआ जाया, अणस्सिया गिहवइणो जाया, जया अग्गी उप्पण्णो तया पागभावस्सिता सिप्पिया वाणियगा जाया, तेहिं तेहिं सिप्पवाणिज्जेहिं विर्त्ति विसंतीति वइस्सा उप्पण्णा । भट्टारए पव्वइए भरहे अभिसित्ते सावगधम्मे उप्पण्णे बंभणा जाया, णिस्सिता बंभणा जाया, माहणत्ति उक्कस्सगभावा धम्मपिआ जं च किंचिवि हणंतं पिच्छंति तं निवारेंति मा हण भो मा हण, एवं ते जणेण सुकम्मनिव्वत्तितसण्णा बंभणा जाया । जे पुण अणस्सिता असिप्पिणो असावगा ते वयं खला इतिकाउं तेसु तेसु पओयणेसु हिंसाचोरियादियासु दुब्भमाणा सोगदोहणसीला सुद्दा संवुत्ता (इति चूर्णिः).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घात:, मनुष्यजाती/वर्ण एवं वर्णान्तरम्

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रकृतयश्चतस्रः–ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राख्या आसामेव चतसृणामनन्तरयोगेन प्रत्येकं वर्णत्रयोत्पत्तिः, तद्यथा–द्विजेन क्षत्रिययोषितो जातः प्रधानक्षत्रियः संकरक्षत्रियो वा, एवं क्षत्रियेण वैश्ययोषितो वैश्येन शूद्र्याः प्रधानसंकरभेदौ वक्तव्याविल्येवं सप्त वर्णा भवन्ति, अनन्तरेषु भवा आनन्तरास्तेषु योगेषु चरमवर्णव्यपदेशो भवति–ब्राह्मणेन क्षत्रियायाः क्षत्रियो भवतीत्यादि, स च स्वस्थाने प्रधानो भवतीतिभावः ॥ इदानीं वर्णान्तराणां नवानां नामान्याह—

अंबट्ठुग्गनिसाया य अजोगवं मागहा य सूया य । खत्ता(य) विदेहाविय चंडाला नवमगा हुंति ॥ २२ ॥

अम्बष्ठ उग्रः निषादः अयोगवं मागधः सूतः क्षत्ता विदेहः चाण्डालश्चेति ॥ कथमेते भवन्तीत्याह—

एगंतरिए इणमो अंबट्ठो चेव होइ उग्गो य । बिइयंतरिअ निसाओ परासरं तं च पुण वेगे ॥ २३ ॥

पडिलोमे सुद्दाई अजोगवं मागहो य सूओ अ । एगंतरिए खत्ता वेदेहा चेव नायव्वा ॥ २४ ॥

बितियंतरे नियमा चण्डालो सोऽवि होइ णायव्वो । अणुलोमे पडिलोमे एवं एए भवे भेया ॥ २५ ॥

आसामर्थो यन्त्रकादवसेयः, तच्चेदम्—

ब्रह्मपुरुषः	क्षत्रियः पुरुषः	ब्राह्मणः पुरुषः	शूद्रः पुरुषः	वैश्यपुरुषः	क्षत्रियः पुरुषः	शूद्रः पुरुषः	वैश्यपुरुषः	शूद्रपुरुषः
वैश्या स्त्री	शूद्री स्त्री	शूद्री स्त्री	वैश्या स्त्री	क्षत्रिया स्त्री	ब्रह्मस्त्री	क्षत्रिया स्त्री	ब्राह्मस्त्री	ब्राह्मस्त्री
अम्बष्ठः	उग्रः	निषादः पारासरो वा	अयोगवम्	मागधः	सूतः	क्षत्ता	वैदेहः	चाण्डालः

एतानि नव वर्णान्तराणि, इदानीं वर्णान्तराणां संयोगोत्पत्तिमाह—

॥ ८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घातः, मनुष्यजाती/वर्ण एवं वर्णान्तरम्

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

उग्गेणं खत्ताए सोवागो वेणवो विदेहेणं। अंबट्ठीए सुद्दीय बुक्कसो जो निसाएणं ॥ २६ ॥

सूएण निसाईए कुक्करओ सोवि होइ णायव्वो। एसो बीओ भेओ चउव्विहो होइ णायव्वो॥ २७ ॥

अनयोरप्यर्थो यन्त्रकादवसेयः, तच्चेदम्।

उग्रपुरुषः	विदेहः पुरुषः	निषादः पुरुषः	शूद्रः पुरुषः
क्षत्ता स्त्री	क्षत्ता स्त्री	अम्बष्ठी स्त्री शूद्री स्त्री वा	निषादस्त्री
श्वपाकः	वैणवः	बुक्कसः	कुक्कुरकः

गतं स्थापनाब्रह्म, इदानीं द्रव्यब्रह्मप्रतिपादनाय आह—

दव्वं सरीरभविओ अन्नाणी वत्थिसंजमो चेव। भावे उ वत्थिसंजम णायव्वो संजमो चेव ॥ २८ ॥

ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं शाक्यपरिव्राजकादीनामज्ञानानुगतचेतसां बस्तिनिरोधमात्रं विधवाप्रोषितभर्तृकादीनां च कुलव्यवस्थार्थं कारितानुमतियुक्तं द्रव्यब्रह्म, भावब्रह्म तु साधूनां बस्तिसंयमः, अष्टादशभेदरूपोऽप्ययं संयम एव, सप्तदशविधसंयमाभिन्नरूपत्वादस्येति, अष्टादश भेदास्त्वमी—'दिव्यात्कामरतिसुखात् त्रिविधं त्रिविधेन विरतिरिति नवकम्। औदारिकादपि तथा तद्ब्रह्माष्टादशविकल्पम् ॥ १ ॥' चरणनिक्षेपार्थमाह—

चरणंमि होइ छक्कं गइमाहारो गुणो व चरणं च। खित्तंमि जंमि खित्ते काले कालो जहिं जाओ(जो उ) ॥२९॥

१ तच्च प्रथमचतुष्कोष्ठकादवगन्तव्यम् प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घातः, मनुष्यजाती/वर्ण एवं वर्णान्तरम्, द्रव्यब्रह्म

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ९ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः १

चरणं नामादिषोढा, व्यतिरिक्तं द्रव्यचरणं त्रिधा भवति–गतिभक्षणगुणभेदात्, तत्र गतिचरणं गमनमेव, आहारचरणं मोदकादेः, गुणचरणं द्विधा–लौकिकं लोकोत्तरं च, लौकिकं यत् द्रव्यार्थं हस्तिशिक्षादिकं वैद्यकादिकं वा शिक्षन्ते, लोकोत्तरं साधूनामनुपयुक्तचरणमुदायिनृपमारकादेर्वा, क्षेत्रचरणं यस्मिन् क्षेत्रे गत्याहारादि चर्य्यते व्याख्यायते वा, शब्दसामान्यान्तर्भावाद्वा शालिक्षेत्रादिचरणमिति, कालेऽप्येवमेव ॥ भावचरणमाह—

भावे गइमाहारो गुणो गुणवओ पसत्थमपसत्था । गुणचरणे पसत्थेण बंभचेरा नव हवंति ॥ ३० ॥

भावचरणमपि गत्याहारगुणभेदात् त्रिधा, तत्र गतिचरणं साधोरुपयुक्तस्य युगमात्रदत्तदृष्टेर्गच्छतः, भक्षणचरणमपि शुद्धं पिण्डमुपभुञ्जानस्य, गुणचरणमप्रशस्तं मिथ्यादृष्टीनां सम्यग्दृष्टीनामपि सनिदानं, प्रशस्तं तेषामेव कर्मोद्वेष्टनार्थं मूलोत्तरगुणकलापविषयम्, इह चानेनैवाधिकारो, यतो नवाप्यध्ययनानि मूलोत्तरगुणस्थापकानि निर्जरार्थमनुशील्यन्ते ॥ एतेषां चान्वार्थाभिधानानि दर्शयितुमाह—

सत्थपरिण्णा १ लोगविजओ २ य सीओसणिज्ज ३ सम्मत्तं ४। तह लोगसारनामं ५ धुयं ६ तह महापरिण्णा ७ य ३१

अट्ठमए य विमोक्खो ८ उवहाणसुयं ९ च नवमगं भणियं । इच्चेसो आयारो आयारग्गाणि सेसाणि ॥ ३२ ॥

स्पष्टे, केवलमित्येष नवाध्ययनरूप आचारो, द्वितीयश्रुतस्कन्धाध्ययनानि तु शेषाणि–आचाराग्राणीति ॥ साम्प्रतमुपक्रमान्तर्गतोऽर्थाधिकारो द्वेधा–अध्ययनार्थाधिकार उद्देशार्थाधिकारश्च, तत्राद्यमाह—

॥ ९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रस्य उपोद्घातः, चरण-निक्षेपाः, अध्ययन-नामानि

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जिअसंजमो १ अ लोगो जह बज्झइ जह य तं पजहियव्वं २। सुहदुक्खतितिक्खाविय ३ सम्मत्तं ४ लोगसारो ५ य ३३
निस्संगया ६ य छट्ठे मोहसमुत्था परीसहुवसग्गा ७। निज्ञाणं ८ अट्ठमए नवमे य जिणेण एवं ति ९ ॥ ३४ ॥

तत्र शस्त्रपरिज्ञायामयमर्थाधिकारो—'जियसंजमो'त्ति जीवेषु संयमो जीवसंयमः—तेषु हिंसादिपरिहारः, स च जीवास्तित्वपरिज्ञाने सति भवत्यतो जीवास्तित्वविरतिप्रतिपादनमत्रार्थाधिकारः। लोकविजये तु 'लोगो जह बज्झइ जह य तं पजहियव्वं'ति, विजितभावलोकेन संयमस्थितेन लोको यथा बध्यते अष्टविधेन कर्मणा यथा च तत्प्रहातव्यं तथा ज्ञातव्यमित्ययमर्थाधिकारः। तृतीये त्वयम्—संयमस्थितेन जितकषायेणानुकूलप्रतिकूलोपसर्गनिपाते सुखदुःखतितिक्षा विधेयेति। चतुर्थे त्वयम्—प्राक्तनाध्ययनार्थसंपन्नेन तापसादिकष्टतपःसेविनामष्टगुणैश्वर्यमुद्वीक्ष्यापि दृढसम्यक्त्वेन भवितव्यमिति। पञ्चमे त्वयम्—चतुरध्ययनार्थस्थितेनासारपरित्यागेन लोकसाररत्नत्रयोद्युक्तेन भाव्यमिति। षष्ठे त्वयम्—प्राग्युक्तगुणयुक्तेन निसङ्गतायुक्तेनाप्रतिबद्धेन भवितव्यम्। सप्तमे त्वयम्—संयमादिगुणयुक्तस्य कदाचिन्मोहसमुत्थाः परीषहा उपसर्गा वा प्रादुर्भवेयुस्ते सम्यक् सोढव्याः। अष्टमे त्वयम्—निर्याणम्—अन्तक्रिया सा सर्वगुणयुक्तेन सम्यग्विधेयेति। नवमे त्वयम्—अष्टाध्ययनप्रतिपादितोऽर्थः सम्यगेवं वर्द्धमानस्वामिना विहित इति, तत्प्रदर्शनं च शेषसाधूनामुत्साहार्थं,

१ उदइओ भावो लोगा कसाया जाणियव्वा (इति चूर्णिः).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्ययन-१ 'शस्त्रपरिज्ञा' आरब्धं

अध्ययन-अर्थाधिकारः एवं उद्देशक-अर्थाधिकारः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १० ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः १

तदुक्तम्—“तित्थयरो चउणाणी सुरमहिओ सिज्झियव्वयधुवंमि । अणिगूहियबलविरिओ सव्वत्थामेसु उज्जमइ ॥ १ ॥ किं पुण अवसेसेहिं दुक्खक्खयकारणा सुविहिएहिं । होंति न उज्जमियव्वं सपच्चवायंमि माणुस्से ॥ २ ॥” ॥ साम्प्रतमुद्देशार्थाधिकारः शस्त्रपरिज्ञाया अयम्—

जीवो छक्कायपरूवणा य तेसिं वहे य बंधोत्ति । विरईए अहिगारो सत्थपरिण्णाएँ णायव्वो ॥ ३५ ॥

तत्र प्रथमोद्देशके सामान्येन जीवास्तित्वं प्रतिपाद्यं, शेषेषु तु षट्सु विशेषेण पृथिवीकायाद्यस्तित्वमिति, सर्वेषां चावसाने बन्धविरतिप्रतिपादनमिति, एतच्चान्ते उपात्तत्वात्प्रत्येकमुद्देशार्थेषु योजनीयं, प्रथमोद्देशके जीवस्तद्वधे बन्धो विरतिश्चेत्येवमिति ॥ तत्र शस्त्रपरिज्ञेति द्विपदं नाम, शस्त्रस्य निक्षेपमाह—

दव्वं सत्थग्गिविसन्नेहंबिलखारलोणमाईयं । भावो य दुप्पउत्तो वाया काओ अविरई या ॥ ३६ ॥

शस्त्रस्य निक्षेपो नामादिश्चतुर्द्धा, व्यतिरिक्तं द्रव्यशस्त्रं खड्गाद्यग्निविषस्नेहाम्लक्षारलवणादिकं, भावशस्त्रं दुष्प्रयुक्तो भावः—अन्तःकरणं तथा वाक्कायावविरतिश्चेति, जीवोपघातकारित्वादितिभावः ॥ परिज्ञापि चतुर्द्धेत्याह—

दव्वं जाणण पच्चक्खाणे दविए सरीर उवगरणे । भावपरिण्णा जाणण पच्चक्खाणं च भावेणं ॥ ३७ ॥

॥ १० ॥

१ तीर्थकरश्चतुर्ज्ञानी सुरमहितः ध्रुवं सेधितव्ये । अनिगूहितबलवीर्यः सर्वस्थाम्नोद्यच्छति ॥ १ ॥ किं पुनरवशेषैर्दुःखक्षयकारणात्सुविहितैः । भवति नोद्यन्तव्यं सप्रत्यपाये मानुष्ये ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्ययन-अर्थाधिकार: एवं उद्देशक-अर्थाधिकार:, शस्त्र-शब्दस्य निक्षेपा:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तत्र द्रव्यपरिज्ञा द्विधा–ज्ञपरिज्ञा प्रत्याख्यानपरिज्ञा च, ज्ञपरिज्ञा आगमनोआगमभेदाद्विधा, आगमतो ज्ञाताऽनुपयुक्तः, नोआगमतस्त्रिधा, तत्र व्यतिरिक्ता द्रव्यपरिज्ञा यो यत् द्रव्यं जानीते सचित्तादि सा परिच्छेद्यद्रव्यप्राधान्यात् द्रव्यपरिज्ञेति, प्रत्याख्यानपरिज्ञाऽप्येवमेव, तत्र व्यतिरिक्तद्रव्यप्रत्याख्यानपरिज्ञा देहोपकरणपरिज्ञानम्, उपकरणं च रजोहरणादि, साधकतमत्वात्, भावपरिज्ञापि द्विधैव–ज्ञपरिज्ञा प्रत्याख्यानपरिज्ञा च, तत्रागमतो ज्ञातोपयुक्तश्च, नोआगमतस्त्विदमेवाध्ययनं ज्ञानक्रियारूपं, नोशब्दस्य मिश्रवाचित्वात्, प्रत्याख्यानभावपरिज्ञापि तथैव, आगमतः पूर्ववत्, नोआगमतस्तु प्राणातिपातनिवृत्तिरूपा मनोवाक्कायकृतकारितानुमतिभेदात्मिका ज्ञेयेति । गतो नामनिष्पन्नो निक्षेपः, साम्प्रतमाचारादिप्रदानस्य सुखप्रतिपत्तये दृष्टान्तोपन्यासेन विधिराख्यायते–यथा कश्चिद्राजा अभिनवनगरनिवेशेच्छया भूखण्डानि विभज्य समतया प्रकृतिभ्यो दत्तवान्, तथा कचवरापनयने शल्योद्धारे भूस्थिरीकरणे पक्केष्टकापीठप्रासादरचने रत्नाद्युपादाने चोपदेशं दत्तवान्, ताश्च प्रकृतयस्तदुपदेशानुसारेण तथैव कृत्वा यथाऽभिप्रेतान् भोगान् बुभुजिरे, अयमत्रार्थोपनयः–राजसदृशेन सूरिणा प्रकृतिसदृशस्य शिष्यगणस्य भूखण्डसदृशः संयमो मिथ्यात्वकचवराद्यपनीय सर्वोपाधिशुद्धस्यारोपणीयः, तं च सामायिकसंयमं स्थिरीकृत्य पक्केष्टिकापीठतुल्यानि व्रतान्यारोपणीयानि, ततः प्रासादकल्पोऽयमाचारो विधेयः, तत्रस्थश्चाशेषशास्त्रादिरत्नान्यादत्ते, निर्वाणभाक् भवति । साम्प्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणलक्षणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं, लक्षणं त्विदम्—'[1]अप्पग्गंथमहत्थं बत्तीसादोसविरहियं जं च । लक्खणजुत्तं

१ अल्पग्रन्थं महार्थं द्वात्रिंशद्दोषविरहितं यच्च । लक्षणयुक्तं सूत्रमष्टभिश्च गुणैरुपपेतम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययने प्रथम उद्देशक 'जीव अस्तित्व' आरब्ध:

अध्ययन-अर्थाधिकार: एवं उद्देशक-अर्थाधिकार:, परिज्ञा-शब्दस्य भेदा:

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ ११ ॥

अध्ययनं १

उद्देशकः १

॥ सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं–इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ (सू० १)

सुत्तं अट्ठहि य गुणेहिं उववेयं ॥ १ ॥' इत्यादि, तच्चेदं सूत्रम्—'सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं–इहमेगेसिं णो सण्णा भवति' अस्य संहितादिक्रमेण व्याख्या–संहितोच्चारितैव, पदच्छेदस्त्वयम्–श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन भगवता एवमाख्यातम्–इह एकेषां नो संज्ञा भवति। एकं तिङन्तं शेषाणि सुबन्तानि, गतः सपदच्छेदः सूत्रानुगमः, साम्प्रतं सूत्रपदार्थः समुन्नीयते–भगवान् सुधर्म्मस्वामी जंबूनाम्न इदमाचष्टे यथा–'श्रुतम्' आकर्णितमवगतमवधारितमितियावद्, अनेन स्वमनीषिकाव्युदासो, 'मये'ति साक्षान्न पुनः पारम्पर्येण 'आयुष्मन्नि'ति जात्यादिगुणसंभवेऽपि दीर्घायुष्कत्वगुणोपादानं दीर्घायुरविच्छेदेन शिष्योपदेशप्रदायको यथा स्यात्, इहाचारस्य व्याचिख्यासितत्वात्तदर्थस्य च तीर्थकृत्प्रणीतत्वादिति सामर्थ्यप्रापितं तेनेति तीर्थकरमाह, यदि वा—आमृशता भगवत्पादारविन्दम्, अनेन विनय आवेदितो भवति, आवसता वा तदन्तिक इत्यनेन गुरुकुलवासः कर्त्तव्य इत्यावेदितं भवति, एतच्चार्थद्वयं 'आमुसंतेण आवसंतेणे'त्येतत्पाठान्तरमाश्रित्यावगन्तव्यमिति, 'भगवते'ति भगः–ऐश्वर्य्यादिषडर्थात्मकः सोऽस्यास्तीति भगवान् तेन, 'एव'मिति वक्ष्यमाणविधिना 'आख्यात'मित्यनेन कृतकत्वव्युदासेनार्थरूपतया आगमस्य नित्यत्वमाह, 'इहे'ति क्षेत्रे प्रवचने आचारे शस्त्रपरिज्ञायां वा आख्यातमितिसंबन्धो, यदि वा–'इहे'ति संसारे 'एकेषां' ज्ञानावरणीयावृतानां प्राणिनां 'नो संज्ञा

॥ ११ ॥

१ चूर्ण्यभिप्रायेण द्वितीयसूत्रावतरणमेतत्.

२ पत्तेयं पत्तेयं (गणहरा) सिस्सेहिं पज्जुवासिज्जमाणा एवं भणंति–'सुयं मे० (इति चूर्णिः).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्राधिकारे प्रथमं सूत्रम्

प्रत सूत्रांक [१]

दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

भवति' संज्ञानं संज्ञा स्मृतिरवबोध इत्यनर्थान्तरं, सा नो जायत इत्यर्थः, उक्तः पदार्थः, पदविग्रहस्य तु सामासिकपदाभावादप्रकटनम् । इदानीं चालना–ननु चाकारादिकप्रतिषेधकलघुशब्दसंभवे सति किमर्थं नोशब्देन प्रतिषेधः इति?, अत्र प्रत्यवस्था, सत्यमेवं, किंतु प्रेक्षापूर्वकारितया नोशब्दोपादानं, सा चेयम्–अन्येन प्रतिषेधेन सर्वनिषेधः स्याद्, यथा न घटोऽघट इति चोक्ते सर्वात्मना घटनिषेधः, स च नेष्यते, यतः प्रज्ञापनायां दश संज्ञाः सर्वप्राणिनामभिहितास्तासां सर्वासां प्रतिषेधः प्राप्नोतीतिकृत्वा, ताश्चेमाः—"कइ णं भंते ! सण्णाओ पणत्ताओ?, गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, तंजहा–आहारसण्णा भयसण्णा मेहुणसण्णा परिग्गहसण्णा कोहसण्णा माणसण्णा मायासण्णा लोभसण्णा ओहसण्णा लोगसण्ण"त्ति, आसां च प्रतिषेधे स्पष्टो दोषः, अतो नोशब्देन प्रतिषेधनमकारि, यतोऽयं सर्वनिषेधवाची देशनिषेधवाची च, तथाहि–नोघट इत्युक्ते यथा घटाभावमात्रं प्रतीयते, तथा प्रकरणादिप्रसक्तस्य विधानं, स पुनर्विधीयमानः प्रतिषेध्यावयवो ग्रीवादिः प्रतिषेध्यादन्यो वा पटादिः प्रतीयत इति, तथा चोक्तम्—"प्रतिषेधयति समस्तं प्रसक्तमर्थं च जगति नोशब्दः । स पुनस्तदवयवो वा तस्मादर्थान्तरं वा स्याद् ॥ १ ॥" इति, एवमिहापि न सर्वसंज्ञानिषेधः, अपितु विशिष्टसंज्ञानिषेधो, ययाऽऽत्मादिपदार्थस्वरूपं गत्यागत्यादिकं ज्ञायते तस्या निषेध इति ॥ साम्प्रतं निर्युक्तिकृत्सूत्रावयवनिक्षेपार्थमाह—

---

१ कति भदन्त ! संज्ञाः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! दश संज्ञाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–आहारसंज्ञा भयसंज्ञा मैथुनसंज्ञा परिग्रहसंज्ञा क्रोधसंज्ञा मानसंज्ञा मायासंज्ञा लोभसंज्ञा ओघसंज्ञा लोकसंज्ञा.

२ ०क्ते घटाभावमात्रं प्रतीयते अर्थप्रसक्तनिषेधेन चाप्रसक्तस्य प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्राधिकारे प्रथमं सूत्रम्, संज्ञा शब्दस्य विविध भेदा:

प्रत सूत्रांक [१] दीप अनुक्रम [१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १२ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः १

दव्वे सचित्ताई भावेऽणुभवणजाणणा सण्णा। मति होइ जाणणा पुण अणुभवणा कम्मसंजुत्ता ॥३८॥

संज्ञा नामादिभेदाच्चतुर्द्धा, नामस्थापने क्षुण्णे, ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता सचित्ताचित्तमिश्रभेदात्रिधा, सचित्तेन हस्तादिद्रव्येण पानभोजनादिसंज्ञा अचित्तेन ध्वजादिना मिश्रेण प्रदीपादिना संज्ञानं-संज्ञा अवगम इतिकृत्वा, भावसंज्ञा पुनर्द्विधा-अनुभवनसंज्ञा ज्ञानसंज्ञा च, तत्राल्पव्याख्येयत्वात्तावत् ज्ञानसंज्ञा दर्शयति-'मइ होइ जाणणा पुण'त्ति मननं मतिः-अवबोधः सा च मतिज्ञानादिः पञ्चधा, तत्र केवलसंज्ञा क्षायिकी शेषास्तु क्षायोपशमिक्यः, अनुभवनसंज्ञा तु स्वकृतकर्मोदयादिसमुत्था जन्तोर्जायते, सा च षोडशभेदेति दर्शयति—

आहार भय परिग्गह मेहुण सुख दुक्ख मोह वितिगिच्छा। कोह माण माय लोहे सोगे लोगे य धम्मोहे ॥३९॥

आहाराभिलाष आहारसंज्ञा, सा च तैजसशरीरनामकर्म्मोदयादसातोदयाच्च भवति, भयसंज्ञा त्रासरूपा, परिग्रहसंज्ञा मूर्छारूपा, मैथुनसंज्ञा स्त्र्यादिवेदोदयरूपा, एताश्च मोहनीयोदयात्, सुखदुःखसंज्ञे सातासातानुभवरूपे वेदनीयोदयजे, मोहसंज्ञा मिथ्यादर्शनरूपा मोहोदयात्, विचिकित्सासंज्ञा चित्तविप्लुतिरूपा मोहोदयात् ज्ञानावरणीयोदयाच्च, क्रोधसंज्ञा अप्रीतिरूपा, मानसंज्ञा गर्वरूपा, मायासंज्ञा वक्रतारूपा, लोभसंज्ञा गृद्धिरूपा, शोकसंज्ञा विप्रलापवैमनस्यरूपा, एता मोहोदयजाः, लोकसंज्ञा स्वच्छन्दघटितविकल्परूपा लौकिकाचरिता, यथा-न सन्त्यनपत्यस्य लोकाः, श्वानो यक्षाः, विप्रा देवाः, काकाः पितामहाः, बर्हिणां पक्षवातेन गर्भ इत्येवमादिका ज्ञानावरणक्षयोपशमान्मोहोदयाच्च भवति, धर्म्मसंज्ञा क्षमाद्यासेवनरूपा मोहनीयक्षयोपशमाज्जायते, एताश्चाविशेषोपादानात्पञ्चेन्द्रियाणां सम्यग्मिथ्यादृशां ॥ १२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्राधिकारे प्रथमं सूत्रम्, 'संज्ञा' शब्दस्य विविध भेदा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [२]

द्रष्टव्याः, ओघसंज्ञा तु अव्यक्तोपयोगरूपा वल्लिवितानारोहणादिलिङ्गा ज्ञानावरणीयाल्पक्षयोपशमसमुत्था द्रष्टव्येति । इह पुनर्ज्ञानसंज्ञयाऽधिकारो, यतः सूत्रे सैव निषिद्धा 'इह एकेषां नो संज्ञा ज्ञानम्-अवबोधो भवती'ति ॥ १ ॥

प्रतिषिद्धज्ञानविशेषावगमार्थमाह सूत्रम्—

तंजहा—पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि, अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि, एवमेगेसिं णो णायं भवति (सू० २)

"तंजहेत्यादि णो णायं भवतीति यावत्" तद्यथेति प्रतिज्ञातार्थोदाहरणं, 'पुरत्थिमाउ'त्ति प्राकृतशैल्या मागधदेशीभाषानुवृत्त्या पूर्वस्या दिशोऽभिधायकात् पुरत्थिमशब्दात्पञ्चम्यन्तात्तसा निर्देशः, वाशब्द उत्तरपक्षापेक्षया विकल्पार्थः, यथा लोके भोक्तव्यं वा शयितव्यं वेति, एवं पूर्वस्या वा दक्षिणस्या वेति। दिशतीति दिक्, अतिसृजति व्यपदिशति द्रव्यं द्रव्यभागं वेति भावः ॥ तां निर्युक्तिकृन्निक्षेप्तुमाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२] दीप अनुक्रम [२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १३ ॥ | अध्ययनं १ उद्देशकः १ ॥ १३ ॥

नामं ठवणा दविए खित्ते तावे य पण्णवग भावे। एस दिसानिक्खेवो सत्तविहो होइ णायव्वो ॥४०॥

नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रतापप्रज्ञापकभावरूपः सप्तधा दिग्निक्षेपो ज्ञातव्यः, तत्र सचित्तादेर्द्रव्यस्य दिगित्यभिधानं नामदिक्, चित्रलिखितजम्बूद्वीपादेर्दिग्विभागस्थापनं स्थापनादिक् । द्रव्यदिग्निक्षेपार्थमाह—

तेरसपएसियं खलु तावइएसुं भवे पएसेसुं । जं दव्वं ओगाढं जहण्णयं तं दसदिसागं ॥ ४१ ॥

द्रव्यदिग् द्वेधा–आगमतो नोआगमतश्च, आगमतो ज्ञाताऽनुपयुक्तो, नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता त्वियम्–त्रयोदशप्रदेशिकं द्रव्यमाश्रित्य या प्रवृत्ता, खलुरवधारणे, त्रयोदशप्रदेशिकमेव दिक्, न पुनर्दशप्रदेशिकं यत् कैश्चिदुक्तमिति, प्रदेशाः–परमाणवस्तैर्निष्पादितं कार्यद्रव्यं तावत्स्वेव क्षेत्रप्रदेशेष्ववगाढं जघन्यं द्रव्यमाश्रित्य दशदिग्विभागपरिकल्पनातो द्रव्यदिगियमिति । तत्स्थापना (२) । त्रिबाहुकं नवप्रदेशिकमभिलिख्य चतसृषु दिक्ष्वेकैकगृहवृद्धिः कार्या ॥ क्षेत्रदिशमाह—

अट्ठ पएसो रुयगो तिरियं लोयस्स मज्झयारंमि । एस पभवो दिसाणं एसेव भवे अणुदिसाणं ॥ ४२ ॥

तिर्यग्लोकमध्ये रत्नप्रभापृथिव्या उपरि बहुमध्यदेशे मेर्वन्तर्द्वौ सर्वक्षुल्लकप्रतरौ तयोरुपरितनस्य चत्वारः प्रदेशा गोस्तनाकारसंस्थाना अधस्तनस्यापि चत्वारस्तथाभूता एवेत्येषोऽष्टाकाशप्रदेशात्मकश्चतुरस्रो रुचको दिशामनुदिशां च प्रभव–उत्पत्तिस्थानमिति । स्थापना (३) । आसामभिधानान्याह—

इंदग्गेई जम्मा य नेरुती वारुणी य वायव्वा । सोमा ईसाणावि य विमला य तमा य बोद्धव्वा ॥ ४३ ॥

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

दिशा शब्दस्य सप्त निक्षेपा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [२]

आसामाद्यैन्द्री विजयद्वारानुसारेण शेषाः प्रदक्षिणतः सप्तावसेयाः, ऊर्ध्वं विमला तमा बोद्धव्या इति॥ आसामेव स्वरूप-निरूपणायाह—

दुपएसाइ दुरुत्तर एगपएसा अणुत्तरा चेव। चउरो चउरो य दिसा चउराइ अणुत्तरा दुण्णि ॥ ४४ ॥

चतस्रो महादिशो द्विप्रदेशाद्या द्विद्विप्रदेशोत्तरवृद्धाः, विदिशश्चतस्र एकप्रदेशरचनात्मिकाः 'अनुत्तरा'वृद्धिरहिताः, ऊर्ध्वाधोदिग्द्वयं त्वनुत्तरमेव चतुष्प्रदेशादिरचनात्मकम् ॥ किञ्च—

अंतो साईआओ बाहिरपासे अपज्जवसिआओ। सव्वाणंतपएसा सव्वा य भवंति कडजुम्मा ॥ ४५ ॥

सर्वाऽप्यन्तः–मध्ये सादिका रुचकाद्या इतिकृत्वा बहिश्च अलोकाकाशाश्रयणादपर्यवसिताः, 'सर्वाश्च' दशाप्यनन्तप्रदेशात्मिका भवन्ति, 'सव्वा य हवंति कडजुम्म'त्ति सर्वासां दिशां प्रत्येकं ये प्रदेशास्ते चतुष्ककेनापह्रियमाणाश्चतुष्कावशेषा भवन्तीतिकृत्वा, तत्प्रदेशात्मिकाश्च दिश आगमसंज्ञया कडजुम्मत्तिशब्देनाभिधीयन्ते, तथा चागमः—"कई णं भंते! जुम्मा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तंजहा–कडजुम्मे तेउए दावरजुम्मे कलिओए। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जे णं रासी चउक्कगावहारेणं अवहीरमाणे अवहीरमाणे चउपज्जवसिए सिया, से णं कडजुम्मे, एवं तिपज्जवसिए तेउए, दुपज्जवसिए दावरजुम्मे, एगपज्जवसिए कलिओए"त्ति ॥ पुनरप्यासां संस्थानमाह—

१ कति भदन्त! युग्माः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! चत्वारो युग्माः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–कृतयुग्मः त्र्योजः द्वापर युग्मः कल्योजः। अथ केनार्थेन भदन्तैवमुच्यते?, गौतम! योराशिश्चतुष्ककापहारेणापह्रियमाणोऽपह्रियमाणश्चतुष्पर्यवसितः स्यात् स कृतयुग्मः, एवं त्रिपर्यवसितस्त्र्योजः, द्विपर्यवसितो द्वापर युग्मः, एकपर्यवसितः कल्योजः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिशा शब्दस्य सप्त निक्षेपा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [२]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ १४ ॥

अध्ययनं १

उद्देशकः १

सगडुद्धीसंठिआओ महादिसाओ हवंति चत्तारि । मुत्तावली य चउरो दो चेव हवंति रुयगनिभा ॥ ४६ ॥

महादिशश्चतस्रोऽपि शकटोर्द्धिसंस्थानाः, विदिशश्च मुक्तावलिनिभाः, ऊर्द्धाधोदिग्द्वयं रुचकाकारमिति ॥ तापदिशमाह—

जस्स जओ आइच्चो उदेइ सा तस्स होइ पुव्वदिसा । जत्तो अ अत्थमेइ उ अवरदिसा सा उ णायव्वा ॥ ४७ ॥

दाहिणपासंमि य दाहिणा दिसा उत्तरा उ वामेणं । एया चत्तारि दिसा तावखित्ते उ अक्खाया ॥ ४८ ॥

तापयतीति तापः—आदित्यः, तदाश्रिता दिक् तापदिक् शेषं सुगमं, केवलं दक्षिणपार्श्वादिव्यपदेशः पूर्वाभिमुखस्येति द्रष्टव्यः ॥ तापदिगङ्गीकरणेनान्योऽपि व्यपदेशो भवतीति प्रसङ्गत आह—

जे मंदरस्स पुव्वेण मणुस्सा दाहिणेण अवरेण । जे आवि उत्तरेणं सव्वेसिं उत्तरो मेरू ॥ ४९ ॥

सव्वेसिं उत्तरेणं मेरू लवणो य होइ दाहिणओ । पुव्वेणं उट्ठेई अवरेणं अत्थमइ सूरो ॥ ५० ॥

ये 'मन्दरस्य' मेरोः पूर्वेण मनुष्याः क्षेत्रदिगङ्गीकरणेन, रुचकापेक्षं पूर्वादिदिक्त्वं वेदितव्यं, तेषामुत्तरो मेरुर्दक्षिणेन लवण इति तापदिगङ्गीकरणेन, शेषं स्पष्टम् ॥ प्रज्ञापकदिशमाह—

जत्थ य जो पण्णवओ कस्सवि साहइ दिसासु य णिमित्तं । जत्तोमुहो य ठाई सा पुव्वा पच्छओ अवरा ॥ ५१ ॥

प्रज्ञापको यत्र क्वचित् स्थितः दिशां बलात्कस्यचिन्निमित्तं कथयति स यदभिमुखस्तिष्ठति सा पूर्वा, पृष्ठतश्चापरेति, निमित्तकथनं चोपलक्षणमन्योऽपि व्याख्याता ग्राह्य इति ॥ शेषदिक्साधनार्थमाह— ॥ १४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिशा शब्दस्य सप्त निक्षेपा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[२]

दीप
अनुक्रम
[२]

दाहिणपासंमि उ दाहिणा दिसा उत्तरा उ वामेणं। एयासिमन्तरेणं अण्णा चत्तारि विदिसाओ ॥ ५२ ॥
एयासिं चेव अट्ठण्हमंतरा अट्ठ हुंति अण्णाओ। सोलस सरीरउस्सयबाहल्ला सव्वतिरियदिसा ॥ ५३ ॥
हेट्ठा पायतलाणं अहोदिसा सीसउवरिमा उड्ढा। एया अट्ठारसवी पण्णवगदिसा मुणेयव्वा ॥ ५४ ॥
एवं पकप्पिआणं दसण्ह अट्ठण्ह चेव य दिसाणं। नामाइं वुच्छामी जहक्कमं आणुपुव्वीए ॥ ५५ ॥
पुव्वा य पुव्वदक्खिण दक्खिण तह दक्खिणावरा चेव। अवरा य अवरउत्तर उत्तर पुव्वुत्तरा चेव ॥ ५६ ॥
सामुत्थाणी कविला खेलिज्जा खलु तहेव अहिधम्मा। परियाधम्मा य तहा सावित्ती पण्णवित्ती य ॥५७॥
हेट्ठा नेरइयाणं अहोदिसा उवरिमा उ देवाणं। एयाइं नामाइं पण्णवगस्सा दिसाणं तु ॥ ५८ ॥

एताः सप्त गाथाः कण्ठ्याः, नवरं द्वितीयगाथायां सर्व्वतिर्यग्दिशां बाहल्यं–पिण्डः शरीरोच्छ्रयप्रमाणमिति ॥ साम्प्रतमासां संस्थानमाह—

सोलस तिरियदिसाओ सगडुद्धीसंठिया मुणेयव्वा। दो मल्लगमूलाओ उड्ढं अ अहेवि य दिसाओ ॥ ५९ ॥

षोडशापि तिर्यग्दिशः शकटोर्द्धिसंस्थाना बोद्धव्याः, प्रज्ञापकप्रदेशे सङ्कटा बहिर्विशालाः, नारकदेवाख्ये द्वे एव उर्द्ध्वाधोगामिन्यौ शरावाकारे भवतः, यतः शिरोमूले पादमूले च स्वल्पत्वान्मल्लकबुध्नाकारे गच्छन्त्यौ च विशाले भवत इति ॥ आसां सर्वासां तात्पर्य्यं यन्त्रकादवसेयं, तच्चेदम् (४) ॥ भावदिग्निरूपणार्थमाह—

मणुया तिरिया काया तहऽग्गबीया चउक्कगा चउरो। देवा नेरइया वा अट्ठारस होंति भावदिसा ॥ ६० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिशा शब्दस्य सप्त निक्षेपा:

प्रत सूत्रांक [२]

दीप अनुक्रम [२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १५ ॥

अध्ययनं१ उद्देशकः१

मनुष्याश्चतुर्भेदास्तद्यथा–सम्मूर्च्छनजाः कर्मभूमिजा अकर्म्मभूमिजाः अन्तरद्वीपजाश्चेति, तथा तिर्यञ्चो द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाश्चेति चतुर्द्धा, कायाः (१) पृथिव्य(२)प्ते(३)जोवा(४)यवश्चत्वारः, तथाऽग्रमूलस्कन्धपर्वबीजाश्चत्वार एव, एते षोडश देवनारकप्रक्षेपादष्टादश, एभिर्भावैर्भवनाज्जीवो व्यपदिश्यत इति भावदिगष्टादशभेदेति ॥ अत्र च सामान्यदिग्ग्रहणेऽपि यस्यां दिशि जीवानामविगानेन गत्यागती स्पष्टे सर्वत्र सम्भवतस्तयैवेहाधिकार इति तामेव निर्युक्तिकृत्साक्षाद्दर्शयति, भावदिक्काविनाभाविनी सामर्थ्यादधिकृतैव, यतस्तदर्थमन्या दिशश्चिन्त्यन्त इत्यत आह—

पण्णवगदिसट्ठारस भावदिसाओऽवि तत्तिया चेव। इक्किक्कं विंधेज्जा हवंति अट्ठारसऽट्ठारा॥ ६१ ॥

पण्णवगदिसाए पुण अहिगारो एत्थ होइ णायव्वो। जीवाण पुग्गलाण य एयासु गयागई अत्थि ॥ ६२ ॥

प्रज्ञापकापेक्षया अष्टादशभेदा दिशः, अत्र च भावदिशोऽपि तावत्प्रमाणा एव प्रत्येकं सम्भवन्तीत्यतः एकैकां प्रज्ञापकदिशं भावदिगष्टादशकेन 'विन्ध्येत्' ताडयेद्, अतोऽष्टादशाष्टादशकाः, ते च संख्यया त्रीणि शतानि चतुर्विंशत्यधिकानि भवन्तीति, एतच्चोपलक्षणं तापदिगादावपि यथासम्भवमायोजनीयमिति । क्षेत्रदिशि तु चतसृष्वेव महादिक्षु सम्भवो न विदिगादिषु, तासामेकप्रदेशिकत्वाच्चतुष्प्रदेशिकत्वाच्चेति गाथाद्वयार्थः ॥ अयं च दिक्संयोगकलापः 'अण्णयरीओ दिसाओ आगओ अहमंसी'त्यनेन परिगृहीतः, सूत्रावयवार्थश्चायम्–इह दिग्ग्रहणात् प्रज्ञापकदिशश्चतस्रः पूर्वादिका ऊर्ध्वाधोदिशौ च परिगृह्यन्ते, भावदिशस्त्वष्टादशापि, अनुदिग्ग्रहणात्तु प्रज्ञापकविदिशो द्वादशेति, तत्रासंज्ञिनां नैषोऽत्रबो- ॥ १५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिशा शब्दस्य सप्त निक्षेपा:

प्रत सूत्रांक [३]

दीप अनुक्रम [३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

धोऽस्ति, संज्ञिनामपि केषाञ्चिद्भवति केषाञ्चिन्नेति, यथाऽहममुष्या दिशः समागत इहेति। 'एवमेगेसिं णो णायं भवइत्ति' 'एव' मित्यनेन प्रकारेण, प्रतिविशिष्टदिग्विदिगागमनं नैकेषां विदितं भवतीत्येतदुपसंहारवाक्यम्, एतदेव निर्युक्तिकृदाह–

केसिंचि नाणसण्णा अत्थि केसिंचि नत्थि जीवाणं। कोऽहं परंमि लोए आसी कयरा दिसाओ वा? ॥६३॥

केषाञ्चिज्जीवानां ज्ञानावरणीयक्षयोपशमवतां ज्ञानसंज्ञाऽस्ति, केषाञ्चित्तु तदावृतिमतां न भवतीति। यादृग्भूता संज्ञा न भवति तां दर्शयति–कोऽहं परस्मिन् 'लोके' जन्मनि मनुष्यादिरासम्, अनेन भावदिग् गृहीता, कतरस्या वा दिशः समायात इत्यनेन तु प्रज्ञापकदिगुपात्तेति, यथा कश्चिन्मदिरामदघूर्णितलोललोचनोऽव्यक्तमनोविज्ञानो रथ्यामार्गनिपतितस्तच्छर्द्याकृष्टश्वगणापलिह्यमानवदनो गृहमानीतो मदात्यये न जानाति कुतोऽहमागत इति, तथा प्रकृतो मनुष्यादिरपीति गाथार्थः॥ न केवलमेषैव संज्ञा नास्ति अपराऽपि नास्तीति सूत्रकृदाह—

अत्थि मे आया उववाइए, नत्थि मे आया उववाइए, के अहं आसी? के वा इओ चुए इह पेच्चा भविस्सामि? (सू० ३)

'अस्ति' विद्यते 'ममे'त्यनेन षष्ठ्यन्तेन शरीरं निर्दिशति, ममास्य शरीरकस्याधिष्ठाता, अतति–गच्छति सततगतिप्रवृत्त आत्मा–जीवोऽस्तीति, किंभूतः?–'औपपातिकः' उपपातः–प्रादुर्भावो जन्मान्तरसंक्रान्तिः, उपपाते भव औपपातिक इति,

१ औपपातिकवृत्त्यभिप्रायेणैष तृतीयसूत्रावतरणभागः, चूर्ण्यभिप्रायेण तु 'भविस्सामि' इति पर्यन्त उपसंहारः, 'भवति' इति 'तंजहा' इति चाधिकम्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा विषयक अज्ञानताया: निरूपणं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३]

दीप अनुक्रम [३]

अनेन संसारिणः स्वरूपं दर्शयति, स एवंभूत आत्मा ममास्ति नास्तीति च एवंभूता संज्ञा केषाञ्चिदज्ञानावष्टब्धचेतसां न जायत इति । तथा 'कोऽहं' नारकतिर्यग्मनुष्यादिः पूर्वजन्मन्यासं?, को वा देवादिः 'इतो' मनुष्यादेर्जन्मनः 'च्युतो' विनष्टः 'इह' संसारे 'प्रेत्य' जन्मान्तरे 'भविष्यामि' उत्पत्स्ये इति, एषा च संज्ञा न भवतीति ॥ इह च यद्यपि सर्वत्र भावदिशाऽधिकारः प्रज्ञापकदिशा च, तथापि पूर्वसूत्रे साक्षात्प्रज्ञापकदिगुपात्ताऽत्र तु भावदिगित्यवगन्तव्यम् । ननु चात्र संसारिणां दिग्विदिगागमनादिज्ञा विशिष्टा संज्ञा निषिध्यते न सामान्यसंज्ञेति, एतच्च संज्ञिनि धर्म्मिण्यात्मनि सिद्धे सति भवति, 'सति धर्म्मिणि धर्म्माश्चिन्त्यन्त' इति वचनात्, स च प्रत्यक्षादिप्रमाणगोचरातीतत्वाद्दुरुपपादः, तथाहि—नासावध्यक्षेणार्थसाक्षात्कारिणा विषयीक्रियते, तस्यातीन्द्रियत्वाद्, अतीन्द्रियत्वं च स्वभावविप्रकृष्टत्वाद्, अतीन्द्रियत्वादेव च तदव्यभिचारिकार्यादिलिङ्गसम्बन्धग्रहणासम्भवात् नाप्यनुमानेन, तस्याप्रत्यक्षत्वे तत्सामान्यग्रहणशक्त्यनुपपत्तेः नाप्युपमानेन, आगमस्यापि विवक्षायां प्रतिपाद्यमानायामनुमानान्तर्भावाद् अन्यत्र च बाह्येऽर्थे सम्बन्धाभावादप्रमाणत्वं, प्रमाणत्वे वा परस्परविरोधित्वान्नाप्यागमेन, तमन्तरेणापि सकलार्थोपपत्तेर्नाप्यर्थापत्त्या, तदेवं प्रमाणपञ्चकातीतत्वात्षष्ठप्रमाणविषयत्वादभाव एवात्मनः । प्रयोगश्चायम्—नास्त्यात्मा, प्रमाणपञ्चकविषयातीतत्वात्, खरविषाणवदिति, तदभावे च विशिष्टसंज्ञाप्रतिषेधाभावसम्भवेनानुत्थानमेव सूत्रस्येति, एतत्सर्वमनुपासितगुरोर्वचः, तथाहि—प्रत्यक्ष एवात्मा, तद्गुणस्य ज्ञानस्य स्वसंवित्तिसिद्धत्वात्, स्वसंविन्निष्ठाश्च विषयव्यवस्थितयो, घटपटादीनामपि रूपादिगुणप्रत्यक्षत्वादेवाध्यक्षत्वमिति, मरणाभावप्रसङ्गाच्च न भूतगुणश्चैतन्यमाशङ्कनीयं, तेषां सदा सन्निधानसम्भवादिति, ॥ १६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा विषयक अज्ञानताया: निरूपणं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३]

दीप अनुक्रम [३]

हेयोपादेयपरिहारोपादानप्रवृत्तेश्चानुमानेन परात्मनि सिद्धिर्भवतीति, एवमनयैव दिशोपमानादिकमपि स्वधिया स्वविषये यथासम्भवमायोज्यं, केवलं मौनीन्द्रेणानेनैवागमेन विशिष्टसंज्ञानिषेधद्वारेणाहमिति चात्मोल्लेखेनात्मसद्भावः प्रतिपादितः, शेषागमानां चानाप्तप्रणीतत्वादप्रामाण्यमेवेति । अत्र चास्त्यात्मेत्यनेन क्रियावादिनः सप्रभेदा नास्तीत्यनेन चाक्रियावादिन एतदन्तःपातित्वाच्चाज्ञानिकवैनयिकाश्च सप्रभेदा उपक्षिप्ताः, ते चामी–'असियसयं किरियाणं अकिरियवाईण होइ चुलसीई । अन्नाणिय सत्तट्ठी वेणइयाणं च बत्तीसा ॥ १ ॥' तत्र जीवाजीवाश्रवबन्धपुण्यपापसंवरनिर्जरामोक्षाख्या नव पदार्थाः स्वपरभेदाभ्यां नित्यानित्यविकल्पद्वयेन च कालनियतिस्वभावेश्वरात्माश्रयणादशीत्युत्तरं भेदशतं भवति क्रियावादिनाम्, एते चास्तित्ववादिनोऽभिधीयन्ते, इयमत्र भावना–अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालतः १ अस्ति जीवः स्वतोऽनित्यः कालतः २ अस्ति जीवः परतो नित्यः कालतः ३ अस्ति जीवः परतोऽनित्यः कालतः ४ इत्येवं कालेन चत्वारो भेदा लब्धाः, एवं नियतिस्वभावेश्वरात्मभिरप्येकैकेन चत्वारश्चत्वारो विकल्पा लभ्यन्ते, एते च पञ्च चतुष्कका विंशतिर्भवति, इयं च जीवपदार्थेन लब्धा, एवमजीवादयोऽप्यष्टौ प्रत्येकं विंशतिभेदा भवन्ति, ततश्च नव विंशतयः शतमशीत्युत्तरं भवति १८० । तत्र स्वत इति स्वेनैव रूपेण जीवोऽस्ति, न परोपाध्यपेक्षया ह्रस्वत्वदीर्घत्वे इव, नित्यः–शाश्वतो न क्षणिकः, पूर्वोत्तरकालयोरवस्थितत्वात्, कालत इति काल एव विश्वस्य स्थित्युत्पत्तिप्रलयकारणम्, उक्तं च–"कालः पचति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः । कालः सुप्तेषु जागर्त्ति, कालो हि दुरतिक्रमः ॥ १ ॥" स चातीन्द्रियो युगपच्चिरक्षिप्रक्रियाभिव्यङ्ग्यो हिमोष्णवर्षाव्यवस्थाहेतुः क्षणलवमुहूर्त्तयामाहोरात्रमासर्तुअयनसंवत्सरयुगकल्पपल्योपम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा विषयक अज्ञानताया: निरूपणं, क्रियावादि आदि विविध वादिनाया: मते आत्म स्वरूपं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[३]

दीप
अनुक्रम
[३]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)
॥ १७ ॥

अध्ययनं१
उद्देशकः१

सागरोपमोत्सर्प्पिण्यवसर्प्पिणीपुद्गलपरावर्त्तातीतानागतवर्त्तमानसर्वाद्धादिव्यवहाररूपः १। द्वितीयविकल्पे तु कालादेवात्मनोऽस्तित्वमभ्युपेयं, किं त्वनित्योऽसाविति विशेषोऽयं पूर्वविकल्पात् २। तृतीयविकल्पे तु परत एवास्तित्वमभ्युपगम्यते, कथं पुनः परतोऽस्तित्वमात्मनोऽभ्युपेयते?, नन्वेतत्प्रसिद्धमेव सर्वपदार्थानां परपदार्थस्वरूपापेक्षया स्वरूपपरिच्छेदो, यथा दीर्घत्वापेक्षया ह्रस्वत्वपरिच्छेदो ह्रस्वत्वापेक्षया च दीर्घत्वस्येति, एवमेव चानात्मनः स्तम्भकुम्भादीन् समीक्ष्य तद्व्यतिरिक्ते वस्तुन्यात्मबुद्धिः प्रवर्त्तत इति, अतो यदात्मनः स्वरूपं तत्परत एवावधार्य्यते न स्वत इति ३। चतुर्थविकल्पोऽपि प्राग्वदिति चत्वारो विकल्पाः ४। तथाऽन्ये नियतित एवात्मनः स्वरूपमवधारयन्ति, का पुनरियं नियतिरिति, उच्यते, पदार्थानामवश्यंतया यद्यथाभवने प्रयोजककर्त्री नियतिः, उक्तं च–"प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः, सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा। भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने, नाभाव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः ॥ १ ॥" इयं च मस्करिपरिव्राण्मतानुसारिणी प्राय इति। अपरे पुनः स्वभावादेव संसारव्यवस्थामभ्युपयन्ति, कः पुनरयं स्वभावः?, वस्तुनः स्वत एव तथापरिणतिभावः स्वभावः, उक्तं च–"कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं, विचित्रभावं मृगपक्षिणां च। स्वभावतः सर्व्वमिदं प्रवृत्तं, न कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः? ॥ १ ॥ स्वभावतः प्रवृत्तानां, निवृत्तानां स्वभावतः। नाहं कर्त्तेति भूतानां, यः पश्यति स पश्यति ॥ २ ॥ केनाञ्जितानि नयनानि मृगाङ्गनानां, कोऽलङ्करोति रुचिराङ्गरुहान्मयूरान्। कश्चोत्पलेषु दलसन्निचयं करोति, को वा दधाति विनयं कुलजेषु पुंस्सु? ॥ ३ ॥" तथाऽन्येऽभिदधते–समस्तमेतज्जीवादीश्वरात्प्रसूतं, तस्मादेव स्वरूपेऽवतिष्ठते, कः पुनरयमीश्वरः?, अणिमाद्यैश्वर्ययोगादीश्वरः, उक्तं

॥ १७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा विषयक अज्ञानताया: निरूपणं, क्रियावादि आदि विविध वादिनाया: मते आत्म स्वरूपं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३]

दीप अनुक्रम [३]

च-"अज्ञो जन्तुरनीशः स्यादात्मनः सुखदुःखयोः । ईश्वरप्रेरितो गच्छेच्छ्वभ्रं वा स्वर्गमेव वा ॥ १ ॥" तथाऽन्ये ब्रुवते —न जीवादयः पदार्थाः कालादिभ्यः स्वरूपं प्रतिपद्यन्ते, किं तर्हि?, आत्मनः, कः पुनरयमात्मा?, आत्माद्वैतवादिनां विश्वपरिणतिरूपः, उक्तञ्च—"एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥१॥" तथा-"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्य"मित्यादि। एवमस्त्यजीवः, स्वतः नित्यः कालत इत्येवं सर्वत्र योज्यम् ॥

तथा अक्रियावादिनो—नास्तित्ववादिनः, तेषामपि जीवाजीवाश्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षाख्याः सप्त पदार्थाः स्वपरभेदद्वयेन तथा कालयदृच्छानियतिस्वभावेश्वरात्मभिः षड्भिश्चिन्त्यमानाश्चतुरशीतिविकल्पा भवन्ति, तद्यथा—नास्ति जीवः स्वतः कालतः नास्ति जीवः परतः कालत इति कालेन द्वौ लब्धौ, एवं यदृच्छानियत्यादिष्वपि द्वौ द्वौ भेदौ प्रत्येकं भवतः, सर्वेऽपि जीवपदार्थे द्वादश भवन्ति, एवमजीवादिष्वपि प्रत्येकं द्वादशैते, सप्त द्वादशकाश्चतुरशीतिरिति ८४। अयमत्रार्थः—नास्ति जीवः स्वतः कालत इति, इह पदार्थानां लक्षणेन सत्ता निश्चीयते कार्यतो वा?, न चात्मनस्तादृगस्ति किञ्चिल्लक्षणं येन सत्तां प्रतिपद्येमहि, नापि कार्य्यमणूनामिव महीध्रादि सम्भवति, यच्च लक्षणकार्याभ्यां नाभिगम्यते वस्तु तन्नास्त्येव, वियदिन्दीवरवत्, तस्मान्नास्त्यात्मेति। द्वितीयविकल्पोऽपि यच्च स्वतो नात्मानं बिभर्त्ति गगनारविन्दादिकं तत्परतोऽपि नास्त्येव, अथवा सर्वपदार्थानामेव परभागादर्शनात्सर्वार्वाग्भागसूक्ष्मत्वाच्चोभयानुपलब्धेः सर्वानुपलब्धितो नास्तित्वमध्यवसीयते, उक्तं च—"यावद् दृश्यं परस्तावद्भागः स च न दृश्यते" इत्यादि, तथा यदृच्छातोऽपि नास्तित्वमात्मनः, का पुनर्यदृच्छा?, अनभिसन्धिपूर्विकाऽर्थप्राप्तिर्यदृच्छा, "अतर्कितोपस्थितमेव सर्वं, चित्रं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा विषयक अज्ञानतायाः निरूपणं, क्रियावादि आदि विविध वादिनायाः मते आत्म स्वरूपं

प्रत सूत्रांक [३] दीप अनुक्रम [३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १८ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः १

जनानां सुखदुःखजातम् । काकस्य तालेन यथाऽभिघातो, न बुद्धिपूर्वोऽत्र वृथाऽभिमानः ॥ १ ॥ सत्यं पिशाचाः स्म वने वसामो, भेरिं कराग्रैरपि न स्पृशामः । यदृच्छया सिद्ध्यति लोकयात्रा, भेरीं पिशाचाः परिताडयन्ति ॥ २ ॥" यथा काकतालीयमबुद्धिपूर्वकं, न काकस्य बुद्धिरस्ति–मयि तालं पतिष्यति, नापि तालस्याभिप्रायः–काकोपरि पतिष्यामि, अथ च तत्तथैव भवति, एवमन्यदप्यतर्कितोपनतमजाकृपाणीयमातुरभेषजीयमन्धकण्टकीयमित्यादि द्रष्टव्यम्, एवं सर्वं जातिजरामरणादिकं लोके यादृच्छिकं काकतालीयादिकल्पमवसेयमिति। एवं नियतिस्वभावेश्वरात्मभिरप्यात्मा निराकर्त्तव्यः ॥

तथाऽज्ञानिकानां सप्तषष्टिर्भेदाः, ते चामी–जीवादयो नव पदार्थाः उत्पत्तिश्च दशमी सत् असद् सदसत् अवक्तव्यः सदवक्तव्यः असदवक्तव्यः सदसदवक्तव्य इत्येतैः सप्तभिः प्रकारैर्विज्ञातुं न शक्यन्ते न च विज्ञातैः प्रयोजनमस्ति, भावना चेयम्–सन् जीव इति को वेत्ति? किं वा तेन ज्ञातेन?, असन् जीव इति को जानाति? किं वा तेन ज्ञातेनेत्यादि, एवमजीवादिष्वपि प्रत्येकं सप्त विकल्पाः, नव सप्तकास्त्रिषष्टिः, अमी चान्ये चत्वारस्त्रिषष्टिमध्ये प्रक्षिप्यन्ते, तद्यथा–सती भावोत्पत्तिरिति को जानाति? किं वाऽनया ज्ञातया? एवमसती सदसती अवक्तव्या भावोत्पत्तिरिति को वेत्ति? किं वाऽनया ज्ञातयेति, शेषविकल्पत्रयमुत्पत्त्युत्तरकालं पदार्थावयवापेक्षमतोऽत्र न सम्भवतीति नोक्तम्, एतच्चतुष्टयप्रक्षेपात्सप्तषष्टिर्भवन्ति। तत्र सन् जीव इति को वेत्ति? इत्यस्यायमर्थः–न कस्यचिद्विशिष्टं ज्ञानमस्ति योऽतीन्द्रियान् जीवादीनवभोत्स्यते, न च तैर्ज्ञातैः किञ्चित्फलमस्ति, तथाहि—यदि नित्यः सर्वगतोऽमूर्त्तो ज्ञानादिगुणोपेत एतद्गुणव्यतिरिक्तो वा? ततः कतमस्य पुरुषार्थस्य सिद्धिरिति, तस्मादज्ञानमेव श्रेयः । अपि च–तुल्येऽप्यपराधे अका- ॥ १८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा विषयक अज्ञानताया: निरूपणं, क्रियावादि आदि विविध वादिनाया: मते आत्म स्वरूपं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३]

दीप अनुक्रम [३]

मकरणे लोके स्वल्पो दोषो, लोकोत्तरेऽपि आकुट्टिकानाभोगसहसाकारादिषु क्षुल्लकभिक्षुस्थविरोपाध्यायसूरीणां यथाक्रममुत्तरोत्तरं प्रायश्चित्तमित्येवमन्येष्वपि विकल्पेष्वायोज्यम् ॥ तथा वैनयिकानां द्वात्रिंशद्भेदाः, ते चानेन विधिना भावनीयाः–सुरनृपयतिज्ञातिस्थविराधममातृपितृष्वष्टसु मनोवाक्कायप्रदानचतुर्विधविनयकरणात्, तद्यथा–देवानां विनयं करोति मनसा वाचा कायेन तथा देशकालोपपन्नेन दानेनेत्येवमादि । एते च विनयादेव स्वर्गापवर्गमार्गमभ्युपयन्ति, नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकलक्षणो विनयः, सर्वत्र चैवंविधेन विनयेन देवादिषूपतिष्ठमानः स्वर्गापवर्गभाग् भवति, उक्तं च–"विणया णाणं णाणाओ दंसणं दंसणाहि चरणं च । चरणाहिंतो मोक्खो मोक्खे सोक्खं अणाबाहं ॥ १ ॥" अत्र च क्रियावादिनामस्तित्वे सत्यपि केषाञ्चित्सर्वगतो नित्योऽनित्यः कर्त्ताऽकर्त्ता मूर्त्तोऽमूर्त्तः श्यामाकतण्डुलमात्रोऽङ्गुष्ठपर्वमात्रो दीपशिखोपमो हृदयाधिष्ठान इत्यादिकः, अस्ति चौपपातिकश्च, अक्रियावादिनां त्वात्मैव न विद्यते, कुतः पुनरौपपातिकत्वम्?, अज्ञानिकास्तु नात्मानं प्रति विप्रतिपद्यन्ते, किन्तु तज्ज्ञानमकिञ्चित्करमेषामिति, वैनयिकानामपि नात्माऽस्तित्वे विप्रतिपत्तिः, किन्त्वन्यन्मोक्षसाधनं विनयादृते न सम्भवतीति प्रतिपन्नाः । तत्रानेन सामान्यात्मास्तित्वप्रतिपादनेनाक्रियावादिनो निरस्ता द्रष्टव्याः, आत्मास्तित्वानभ्युपगमे च–"शास्ता शास्त्रं शिष्यः प्रयोजनं वचनहेतुदृष्टान्ताः । सन्ति न शून्यं ब्रुवतस्तदभावाच्चाप्रमाणं स्यात् ॥ १ ॥ प्रतिषेद्धृप्रतिषेधौ स्तश्चेच्छून्यं कथं भवेत्सर्वम्? । तदभावेन तु सिद्धा अप्रतिषिद्धा जगत्यर्थाः ॥ २ ॥" एवं शेषाणामप्यत्रैव यथासम्भवं निराकरणमुत्प्रेक्ष्यमिति ॥ ३ ॥ गतमानुषङ्गिकं,

सू. ४

१ विनयात् ज्ञानं ज्ञानाद्दर्शनं दर्शनात् (ज्ञानदर्शनाभ्यां) चरणं च । चरणात् (ज्ञानदर्शनचारित्रेभ्यः) मोक्षो मोक्षे सौख्यमनाबाधम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा विषयक अज्ञानताया: निरूपणं, क्रियावादि आदि विविध वादिनाया: मते आत्म स्वरूपं

प्रत सूत्रांक [४]

दीप अनुक्रम [४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १९ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः १

प्रकृतमनुस्रियते—तत्रेह 'एवमेगेसिं णो णायं भवइ' इत्यनेन केषाञ्चिदेव संज्ञानिषेधात्केषाञ्चित्तु भवतीत्युक्तं भवति, तत्र सामान्यसंज्ञायाः प्रतिप्राणि सिद्धत्वात्तत्कारणपरिज्ञानस्य चेहाकिञ्चित्करत्वाद्विशिष्टसंज्ञायास्तु केषाञ्चिदेव भावात् तस्याश्च भवान्तरगाम्यात्मस्पष्टप्रतिपादने सोपयोगित्वाद् सामान्यसंज्ञाकारणप्रतिपादनमनादृत्य विशिष्टसंज्ञायाः कारणं सूत्रकृद्दर्शयितुमाह—

से जं पुण जाणेज्जा सह संमइयाए परवागरणेणं अण्णेसिं अंतिए वा सोच्चा तं-जहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि जाव अण्णयरीओ दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि, एवमेगेसिं जं णायं भवति-अत्थि मे आया उववाइए, जो इमाओ (दिसाओ) अणुदिसाओ वा अणुसंचरइ[1], सव्वाओ दिसाओ अणुदिसाओ, सोऽहं (सू० ४)

'से जं पुण जाणेज्जत्ति सूत्रं यावत् सोऽह'मिति 'से' इति निर्देशो मागधशैल्या प्रथमैकवचनान्तः, स इत्यनेन च यः प्राग्निर्दिष्टो ज्ञाता विशिष्टक्षयोपशमादिमान् स प्रत्यवमृश्यते, यदित्यनेनापि यत्प्राग्निर्दिष्टं दिग्विदिगागमनं, तथा कोऽहमभूवमतीतजन्मनि देवो नारकस्तिर्यग्योनो मनुष्यो वा? स्त्री पुमान्नपुंसको वा ?, को वाऽमुतो मनुष्यजन्मनः प्रभ्रष्टो- ॥ १९ ॥

१ अणुसंसरइ (इति पा०)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्ट संज्ञादि कारणत्वात् पूर्वापरजन्मस्य ज्ञानं

प्रत सूत्रांक [४]

दीप अनुक्रम [४]

ऽहं प्रेत्य देवादिर्भविष्यामीत्येतत्सरामृश्यते, 'जानीयाद्' अवगच्छेद्, इदमुक्तं भवति-न कश्चिदनादौ संसृतौ पर्यटन्नसुमान् दिगागमनादिकं जानीयात्, यः पुनर्जानीयात्स एवं 'सह सम्मइयाए'त्ति सहशब्दः सम्बन्धवाची, सदिति प्रशंसायां, मतिः-ज्ञानम्, अयमत्र वाक्यार्थः-आत्मना सह सदा या सन्मतिर्वर्त्तते तया सन्मत्या कश्चिज्जानीते, सहशब्दविशेषणाच्च सदाऽऽत्मस्वभावत्वं मतेरावेदितं भवति, न पुनर्यथा वैशेषिकाणां व्यतिरिक्ता सती समवायवृत्त्याऽऽत्मनि समवेतेति। यदि वा 'सम्मइए'त्ति स्वकीयया मत्या स्वमत्येति, तत्र भिन्नमप्यश्वादिकं स्वकीयं दृष्टमतः सहशब्दविशेषणं, सहशब्दश्चासमस्त इति, सत्यपि चात्मनः सदा मतिसन्निधाने प्रबलज्ञानावरणावृतत्वान्न सदा विशिष्टोऽवबोध इति, सा पुनः सन्मतिः स्वमतिर्वा अवधिमनःपर्यायकेवलज्ञानजातिस्मरणभेदाच्चतुर्विधा ज्ञेया, तत्रावधिमनःपर्यायकेवलानां स्वरूपमन्यत्र विस्तरेणोक्तं, जातिस्मरणं त्वाभिनिबोधिकविशेषः, तदेवं चतुर्विधया मत्याऽऽत्मनः कश्चिद्विशिष्टदिग्गत्यागती जानाति, कश्चिच्च परः-तीर्थकृत्सर्वज्ञः, तस्यैव परमार्थतः परशब्दवाच्यत्वात्परत्वं, तस्य तेन वा व्याकरणम्-उपदेशस्तेन जीवांस्तद्भेदांश्च-पृथिव्यादीन् तद्गत्यागती च जानाति, अपरः पुनः 'अन्येषां' तीर्थकरव्यतिरिक्तानामतिशयज्ञानिनामन्तिके श्रुत्वा जानातीति, यच्च जानाति तत् सूत्रावयवेन दर्शयति–तद्यथा-पूर्व्वस्या दिश आगतोऽहमस्मि, एवं दक्षिणस्याः पश्चिमायाः उत्तरस्या ऊर्ध्वदिशोऽधोदिशोऽन्यतरस्या दिशोऽनुदिशो वाऽऽगतोऽहमस्मीत्येवमेकेषां विशिष्टक्षयोपशमादिमतां तीर्थकरान्यातिशयज्ञानिबोधितानां च ज्ञानं भवति, तथा प्रतिविशिष्टदिगागमनपरिज्ञानान्तरमेषामेतदपि ज्ञानं भवति-यथा अस्ति मेऽस्य शरीरकस्याधिष्ठाता ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षण 'उपपादुको' भवान्तरसंक्रातिभाग् असर्वगतो भोक्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्ट संज्ञादि कारणत्वात् पूर्वापरजन्मस्य ज्ञानं, आत्मस्वरूपं

प्रत सूत्रांक [४]

दीप अनुक्रम [४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ २० ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः १

मूर्त्तिरहितोऽविनाशी शरीरमात्रव्यापीत्यादिगुणवानात्मेति । स च द्रव्यकषाययोगोपयोगज्ञानदर्शनचारित्रवीर्यात्मभेदादष्टधा, तत्रोपयोगात्मना बाहुल्येनेहाधिकारः, शेषास्तु तदंशतयोपयुज्यन्त इति उपन्यस्ताः । तथा अस्ति च ममात्मा, योऽमुष्या दिशोऽनुदिशश्च सकाशाद् 'अनुसञ्चरति' गतिप्रायोग्यकर्मोपादानादनु-पश्चात् सञ्चरत्यनुसञ्चरति, पाठान्तरं वा 'अणुसंसरइ'त्ति दिग्विदिशां गमनं भावदिगागमनं वा स्मरतीत्यर्थः । साम्प्रतं सूत्रावयवेन पूर्वसूत्रोक्तमेवार्थमुपसंहरति-सर्वस्या दिशः सर्वस्याश्चानुदिशो य आगतोऽनुसञ्चरति अनुसंस्मरतीति वा सः 'अह' मित्यात्मोल्लेखः, अहंप्रत्ययग्राह्यत्वादात्मनः, अनेन पूर्वाद्याः प्रज्ञापकदिशः सर्वा गृहीताः भावदिशश्चेति । इममेवार्थं निर्युक्तिकृद्दर्शयितुमना गाथात्रितयमाह—

जाणइ सयं मईए अन्नेसिं वावि अन्तिए सोच्चा । जाणगजणपण्णविओ जीवं तह जीवकाए वा ॥ ६४ ॥
इत्थ य सह संमइअत्ति जं एअं तत्थ जाणणा होई । ओहीमणपज्जवनाणकेवले जाइसरणे य ॥ ६५ ॥
परवइ वागरणं पुण जिणवागरणं जिणा परं नत्थि । अण्णेसिं सोच्चंतिय जिणेहिँ सव्वो परो अण्णो ॥ ६६ ॥

कश्चिदनादिसंसृतौ पर्यटन्नवध्यादिकया चतुर्विधया स्वकीयया मत्या जानाति । अनानुपूर्वीन्यायप्रकटनार्थं पश्चादुपात्तमप्यमन्येषामित्येतत्पदं तावदाचष्टे—'अन्येषां वा' अतिशयज्ञानिनामन्तिके श्रुत्वा जानाति, तथा 'जाणगजणपण्णविओ' इत्यनेन परव्याकरणमुपात्तं, तेनायमर्थो–ज्ञापकः–तीर्थकृत्तत्प्रज्ञापितश्च जानाति, यज्जानाति तत् स्वत एव दर्शयति-सामान्यतो 'जीव'मिति, अनेन चाधिकृतोद्देशकस्यार्थाधिकारमाह, तथा 'जीवकायांश्च' पृथ्वीकायादीन् इत्य-

॥ २० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्ट संज्ञादि कारणत्वात् पूर्वापरजन्मस्य ज्ञानं, आत्मस्वरूपं

प्रत सूत्रांक [४]

दीप अनुक्रम [४]

नेन चोत्तरेषां षण्णामप्युद्देशकानां यथाक्रममधिकारार्थमाहेति, अत्र च 'सह सम्मइए'त्ति सूत्रे यत्सदं, तत्र जाणणत्ति ज्ञानमुपात्तं भवति, 'मनि ज्ञाने' मननं मतिरितिकृत्वा, तच्च किंभूतमिति दर्शयति—'अवधिमनःपर्यायकेवलजातिस्मरणरूप'मिति, तत्रावधिज्ञानी संख्येयानसंख्येयान्वा भवान् जानाति, एवं मनःपर्यायज्ञान्यपि, केवली तु नियमतोऽनन्तान्, जातिस्मरणस्तु नियमतः संख्येयानिति, शेषं स्पष्टम् । अत्र च सहसम्मत्यादिपरिज्ञाने सुखप्रतिपत्त्यर्थं त्रयो दृष्टान्ताः प्रदर्श्यन्ते, तद्यथा-वसन्तपुरे नगरे जितशत्रू राजा, धारणी नाम महादेवी, तयोर्द्धर्मरुच्यभिधानः सुतः, स च राजाऽन्यदा तापसत्वेन प्रव्रजितुमिच्छुर्द्धर्मरुचिं राज्ये स्थापयितुमुद्यतः, तेन च जननी पृष्टा-किमिति तातो राज्यश्रियं त्यजति ?, तयोक्तम्-किमनया चपलया नारकादिसकलदुःखहेतुभूतया स्वर्गापवर्गमार्गार्गलया अवश्यमपायिन्या परमार्थत इहलोकेऽप्यभिमानमात्रफलयेत्यतो विहायैनां सकलसुखसाधनं धर्मं कर्त्तुमुद्यतः, धर्मरुचिस्तदाकर्ण्योक्तवान्-यद्येवं किमहं तातस्यानिष्टो ? येनैवंभूतां सकलदोषाश्रयिणीं मयि नियोजयति, सकलकल्याणहेतोर्द्धर्मात्मच्यावयतीत्यभिधाय पित्राऽनुज्ञातस्तेन सह तापसाश्रममगात्, तत्र च सकलास्तापसक्रिया यथोक्ताः पालयन्नास्ते, अन्यदाऽमावास्यायाः पूर्वाह्णे केनचित्तापसेनोद्घुष्टम्—यथा भो भोः तापसाः ! श्वोऽनाकुट्टिर्भविता, अतोऽद्यैव समित्कुसुमकुशकन्दफलमूलाद्याहरणं कुरुत, एतच्चाकर्ण्य धर्मरुचिना जनकः पृष्टः—तात ! केयमनाकुट्टिरिति, तेनोक्तम्—पुत्र ! कन्दफलादीनामच्छेदनं, तद्व्य-

१ ०या चेत्सतो प्र० २ एकेन प्र० ३ लतादीनामच्छे० प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्ट संज्ञादि कारणत्वात् पूर्वापरजन्मस्य ज्ञानं, आत्मस्वरूपं, जातिस्मरणज्ञाने 'धर्मरूचिः'-कथा

प्रत सूत्रांक [४]

दीप अनुक्रम [४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

मावास्यादिके विशिष्टे पर्वदिवसे न वर्त्तते, सावद्यत्वाच्छेदनादिक्रियायाः, श्रुत्वा चैतदसावचिन्तयत्–यदि सर्वदाऽनाकुट्टिः स्याच्छोभनं भवेद्, एवमध्यवसायिनस्तस्यामावास्यायां तपोवनासन्नपथेन गच्छतां साधूनां दर्शनमभूत्, ते च तेनाभिहिताः–किमद्य भवतामनाकुट्टिर्न सञ्जाता? येनाटवीं प्रस्थिताः, तैरप्यभिहितम्—'यथाऽस्माकं यावज्जीवमनाकुट्टि'रित्यभिधायातिक्रान्ताः साधवः, तस्य च तदाकर्ण्येहापोहविमर्शेन जातिमरणमुत्पन्नं–यथाऽहं जन्मान्तरे प्रव्रज्यां कृत्वा देवलोकसुखमनुभूयेहागत इति, एवं तेन विशिष्टदिगागमनं स्वमत्या–जातिस्मरणरूपया विज्ञातं, प्रत्येकबुद्धश्च जातः, एवमन्येऽपि वल्कलचीरिश्रेयांसप्रभृतयोऽत्र योज्या इति । परव्याकरणे त्विदमुदाहरणम्–गौतमस्वामिना भगवान्वर्द्धमानस्वामी पृष्टो–भगवन्! किमिति मे केवलज्ञानं नोत्पद्यते?, भगवता व्याकृतं–भो गौतम! भवतोऽतीव ममोपरि स्नेहोऽस्ति, तद्वशात्, तेनोक्तम्—'भगवन्नेवंमेवं, किंनिमित्तः पुनरसौ मम भगवदुपरि स्नेहः?, ततो भगवता तस्य बहुषु भवान्तरेषु पूर्वसम्बन्धः समावेदितः 'चिरसंसिट्ठोऽसि मे परिचिओऽसि मे गोयमे'त्येवमादि, तच्च तीर्थकृद्व्याकरणमाकर्ण्य गौतमस्वामिनो विशिष्टदिगागमनादिविज्ञानमभूदिति । अन्यश्रवणे त्विदमुदाहरणम्–मल्लिस्वामिना षण्णां राजपुत्राणामुद्वाहार्थमागतानामवधिज्ञानेन तत्प्रतिबोधनार्थं यथा जन्मान्तरे सहितैरेव प्रव्रज्या कृता, यथा च तत्फलं देवलोके जयन्ताभिधानविमानेऽनुभूतं तथाऽऽख्यातं, तच्चाकर्ण्य ते लघुकर्म्मत्वात्प्रतिबुद्धा विशिष्टदिगागमनविज्ञानं च

१ ०मेतत् प्र० २ चिरसंसृष्टोऽसि मया गौतम! चिरपरिचितोऽसि मम गौतम!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्ट संज्ञादि कारणत्वात् पूर्वापरजन्मस्य ज्ञानं, तत्र पर व्याकरणे गौतमस्वामी एवं अन्यश्रवणे मल्लिनाथस्य षण्णां पूर्वमित्राणामुदाहरणं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[५]

दीप
अनुक्रम
[५]

सञ्ज्ञातं, उक्तं च—'किं थें तेयं पम्हुट्ठं जं च तया भो ! जयंतपवरंमि । वुच्छा समयनिबद्धं देवा ! तं संभरह जातिं ॥१॥ इति गाथात्रयतात्पर्यार्थः ॥ ४ ॥

साम्प्रतं प्रकृतमनुस्रियते—यो हि सोऽहमित्यनेनाहङ्कारज्ञानेनात्मोल्लेखेन पूर्वादेर्दिश आगतमात्मानमविच्छिन्नसंततिपतितं द्रव्यार्थतया नित्यं पर्यायार्थतया त्वनित्यं जानाति स परमार्थतः आत्मवादीति सूत्रकृद्दर्शयति—

से आयावादी लोयावादी कम्मावादी किरियावादी (सू० ५)

'स' इति यो भ्रान्तः पूर्वं नारकतिर्यङ्नरामराद्यासु भावदिक्षु पूर्वाद्यासु च प्रज्ञापकदिक्षु अक्षणिकामूर्त्तादिलक्षणोपेतमात्मानमवैति[3], स इत्थंभूतः 'आत्मवादी'ति आत्मानं वदितुं शीलमस्येति, यः पुनरेवंभूतमात्मानं नाभ्युपगच्छति सोऽनात्मवादी नास्तिक इत्यर्थः । योऽपि सर्वव्यापिनं नित्यं क्षणिकं वाऽऽत्मानमभ्युपैति सोऽप्यनात्मवाद्येव, यतः सर्वव्यापिनो निष्क्रियत्वाद्भवान्तरसंक्रान्तिर्न स्यात्, सर्वथा नित्यत्वेऽपि 'अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं नित्य'मितिकृत्वा मरणाभावेन भवान्तरसंक्रान्तिरेव न स्यात्, सर्वथा क्षणिकत्वेऽपि निर्मूलविनाशात्सोऽहमित्यनेन पूर्वोत्तरानुसन्धानं न स्यात् । य एव चात्मवादी स एव परमार्थतो लोकवादी, यतो लोकयतीति लोकः—प्राणिगणस्तं वदितुं शीलमस्येति, अनेन चात्माद्वैतवादिनिरासेनात्मबहुत्वमुक्तं, यदिवा 'लोकापाती'ति लोकः—चतुर्दशरज्ज्वात्मकः प्राणिगणो वा, तत्रापतितुं

१ च. प्र० २ किमथ तद्विस्मृतं यच्च तदा भो जयन्तप्रवरे । उषिताः निबद्धसमयं देवास्तां स्मरत जातिम् ॥ १ ॥ ३ ०नं वेत्ति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मवादि: अनात्मवादिश्च-स्वरूपं, आत्मवादे: लोकवादित्वं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [५] दीप अनुक्रम [५]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ २२ ॥ | अध्ययनं १ उद्देशकः १

शीलमस्येति, अनेन च विशिष्टाकाशखण्डस्य लोकसंज्ञाऽऽवेदिता, तत्र च जीवास्तिकायस्य सम्भवेन जीवानां गमनागमनमावेदितं भवति, य एव च दिगादिगमनपरिज्ञानेनात्मवादी लोकवादी च संवृत्तः, स एवासुमान् 'कर्मवादी' कर्म–ज्ञानावरणीयादि तद्वदितुं शीलमस्य, यतो हि प्राणिनो मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगैः पूर्वं गत्यादियोग्यानि कर्माण्याददते, पश्चात्तासु तासु विरूपरूपासु योनिषूत्पद्यन्ते, कर्म्म च प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशात्मकमवसेयमिति । अनेन च कालयदृच्छानियतीश्वरात्मवादिनो निरस्ता द्रष्टव्याः । तथा य एव कर्मवादी स एव क्रियावादी, यतः कर्म योगनिमित्तं बध्यते, योगश्च व्यापारः, स च क्रियारूपः, अतः कर्मणः कार्यभूतस्य वदनात्तत्कारणभूतायाः क्रियाया अप्यसावेव परमार्थतो वादीति, क्रियायाश्च कर्मनिमित्तत्वं प्रसिद्धमागमे, स चायमागमः—"जावं णं भंते ! एस जीवे सया समियं एयइ वेयइ चलति फंदति घट्टति तिप्पति जाव तं तं भावं परिणमति तावं च णं अट्ठविहबंधए वा सत्तविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा णो णं अबंधए"त्ति, एवं च कृत्वा य एव कर्म्मवादी स एव क्रियावादीति, अनेन च सांख्याभिमतमात्मनोऽक्रियावादित्वं निरस्तं भवति ॥ ५ ॥ साम्प्रतं पूर्वोक्तां क्रियामात्मपरिणतिरूपां विशिष्टकाला–भिधायिना तिङ्प्रत्ययेनाभिदधदहंप्रत्ययसाध्यस्यात्मनस्तद्वद एवावधिमनःपर्यायकेवलज्ञानजातिस्मरणव्यतिरेकेणैव त्रिकालसंस्पर्शिना मतिज्ञानेन सद्भावावगमं दर्शयितुमाह—

१ यावद् भदन्त ! एष जीवः सदा समितमेजते व्येजते चलति स्पन्दते तिप्यति यावत् तं तं भावं परिणमति तावच्च अष्टविधबन्धको वा सप्तविधबन्धको वा षड्विधबन्धको वा एकविधबन्धको वा, नाबन्धकः.

॥ २२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्मवादि: क्रियावादिश्च-स्वरूपं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६]

दीप अनुक्रम [६]

अकरिस्सं चऽहं, कारवेसुं चऽहं, करओ आवि समणुन्ने भविस्सामि (सू० ६)

इह भूतवर्त्तमानभविष्यत्कालापेक्षया कृतकारितानुमतिभिर्नव विकल्पाः संभवन्ति, ते चामी–अहमकार्षमचीकरमहं कुर्वन्तमन्यमनुज्ञासिषमहं करोमि कारयाम्यनुजानाम्यहमिति करिष्याम्यहं कारयिष्याम्यहं कुर्वन्तमन्यमनुज्ञास्याम्यहमिति, एतेषां च मध्ये आद्यन्तौ सूत्रेणैवोपात्तौ, तदुपादानाच्च तन्मध्यपातिनां सर्वेषां ग्रहणम्, अस्यैवार्थस्याविष्करणाय द्वितीयो विकल्पः 'कारवेसुं चऽह'मिति सूत्रेणोपात्तः, एते च चकारद्वयोपादानादपिशब्दोपादानाच्च मनोवाक्कायैश्चिन्त्यमानाः सप्तविंशतिर्भेदा भवन्ति, अयमत्र भावार्थः–अकार्षमहमित्यत्राहमित्यनेनात्मोल्लेखिना विशिष्टक्रियापरिणतिरूप आत्माऽभिहितः, ततश्चायं भावार्थो भवति—स एवाहं येन मयाऽस्य देहादेः पूर्वं यौवनावस्थायामिन्द्रियवशगेन विषयविषमोहितान्धचेतसा तत्तदकार्य्यानुष्ठानपरायणेनाऽऽनुकूल्यमनुष्ठितम्, उक्तं च—"विहैवावलेवनडिएहिं जाइं कीरंति जोव्वणमएणं । वयपरिणामे सरियाइँ ताइं हियए खुडुकंति ॥ १ ॥" 'तथा अचीकरमह'मित्यनेन परोऽकार्यादौ प्रवर्त्तमानो मया प्रवृत्तिं कारितः, तथा कुर्वन्तमन्यमनुज्ञातवानित्येवं कृतकारितानुमतिभिर्भूतकालाभिधानं, तथा 'करोमी'त्यादिना वचनत्रिकेण वर्त्तमानकालोल्लेखः, तथा करिष्यामि कारयिष्यामि कुर्वतोऽन्यान् प्रति समनुज्ञापरायणो भविष्यामीत्यनागतकालोल्लेखः, अनेन च कालत्रयसंस्पर्शेन देहेन्द्रियातिरिक्तस्यात्मनो भूतवर्त्तमानभविष्यत्कालपरिणतिरू-

१ चकारद्वयापिशब्दोपादानान्मनो० प्र० २ विभवावलेपनटितैर्यानि क्रियन्ते यौवनमदेन । वयःपरिणामे स्मृतानि तानि हृदये शल्यायन्ते ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृत्-कारित-अनुमित भेदेन २७-भेदा:, कर्मबंध परिज्ञा,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [७]

दीप अनुक्रम [७]

पस्यास्तित्वावगतिरावेदिता भवति, सा च नैकान्तक्षणिकनित्यवादिनां सम्भवतीत्यतोऽनेन ते निरस्ताः, क्रियापरिणामेनात्मनः परिणामित्वाभ्युपगमादिति, एतदनुसारेणैव सम्भवानुमानादतीतानागतयोरपि भवयोरात्मास्तित्वमवसेयम्। यदिवा-अनेन क्रियाप्रबन्धप्रतिपादनेन कर्मण उपादानभूतायाः क्रियायाः स्वरूपमावेदितमिति ॥ ६ ॥ अथ किमेतावत्य एव क्रिया उतान्या अपि सन्तीति, एता एवेत्याह—

एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति (सू० ७)

एतावन्तः सर्वेऽपि 'लोके' प्राणिसङ्घाते 'कर्म्मसमारम्भाः' क्रियाविशेषा ये प्रागुक्ताः, अतीतानागतवर्त्तमानभेदेन कृतकारितानुमतिभिश्च अशेषक्रियानुयायिना च करोतिना सर्वेषां सङ्ग्रहादिति, एतावन्त एव परिज्ञातव्या भवन्ति नान्य इति। परिज्ञा च ज्ञप्रत्याख्यानभेदाद्विधा, तत्र ज्ञपरिज्ञयाऽऽत्मनो बन्धस्य चास्तित्वमेतावद्भिरेव सर्वैः कर्मसमारम्भैर्ज्ञातं भवति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च सर्वे पापोपादानहेतवः कर्म्मसमारम्भाः प्रत्याख्यातव्या इति। इयता सामान्येन जीवास्तित्वं प्रसाधितमधुना तस्यैवात्मनो दिगादिभ्रमणहेतूपदर्शनपुरस्सरमपायान् प्रदर्शितुमाह-यदिवा यस्तावदात्मकर्मादिवादी स दिगादिभ्रमणान्मोक्ष्यते, इतरस्य तु विपाकान् दर्शयितुमाह—

अपरिण्णायकम्मा खलु अयं पुरिसे जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ अणुसंचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ साहेति (सू० ८)

॥ २३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्मबंध परिज्ञा,

प्रत सूत्रांक [८] दीप अनुक्रम [८]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

योऽयं पुरिं शयनात्पूर्णः सुखदुःखानां वा पुरुषो-जन्तुर्मनुष्यो वा, प्राधान्याच्च पुरुषस्योपादानम्, उपलक्षणं चैतत्, सर्वोऽपि चतुर्गत्यापन्नः प्राणी गृह्यते, दिशोऽनुदिशो वाऽनुसञ्चरति, सः 'अपरिज्ञातकर्मा' अपरिज्ञातं कर्मानेनेत्यपरिज्ञातकर्म्मा, खलुरवधारणे, अपरिज्ञातकर्मैव दिगादौ भ्राम्यति नेतर इति, उपलक्षणं चैतद्, अपरिज्ञातात्मापरिज्ञातक्रियश्चेति, यश्चापरिज्ञातकर्मा स सर्वा दिशः सर्वाश्चानुदिशः 'साहेति' स्वयंकृतेन कर्मणा सहानुसञ्चरति, सर्वग्रहणं सर्वासां प्रज्ञापकदिशां भावदिशां चोपसङ्ग्रहार्थम् ॥ ८ ॥ स यदाप्नोति तद्दर्शयति—

अणेगरूवाओ जोणीओ संधेइ, विरूवरूवे फासे पडिसंवेदेइ (सू० ९)

अनेकं संकटविकटादिकं रूपं यासां तास्तथा, यौति-मिश्रीभवत्यौदारिकादिशरीरवर्गणापुद्गलैरसुमान् यासु ता योनयः-प्राणिनामुत्पत्तिस्थानानि, अनेकरूपत्वं चासां संवृतविवृतोभयशीतोष्णोभयरूपतया, यदिवा चतुरशीतिलक्षभेदेन, ते चामी चतुरशीतिर्लक्षाः—'पुढवीजलजलणमारुय एक्केक्के सत्त सत्त लक्खाओ । वण पत्तेय अणंते दस चोद्दस जोणिलक्खाओ ॥ १ ॥ विगलिंदिएसु दो दो चउरो चउरो य णारयसुरेसुं । तिरिएसु हुंति चउरो चोद्दस लक्खा य

१ पृथ्वीजलज्वलनमारुतेषु एकैकस्मिन् सप्त सप्त लक्षाः । प्रत्येकवने अनन्ते दश चतुर्दश योनिलक्षाः ॥ १ ॥ विकलेन्द्रियेषु द्वे द्वे चतस्रश्चतस्रश्च नारकसुरेषु । तिरश्चि भवन्ति चतस्रश्चतुर्दश लक्षाश्च मनुष्येषु ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्मबंध परिज्ञा, 'अपरिज्ञातकर्मा' स्वरूपं, ८४-लक्ष जीव-योनि स्वरूपं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[९]

दीप
अनुक्रम
[९]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)
॥ २४ ॥

अध्ययनं १
उद्देशकः १

मणुएसु ॥ २ ॥ तथा शुभाशुभभेदेन योनीनामनेकरूपत्वं गाथाभिः प्रदर्श्यते—'सीयादी जोणीओ चउरासीती य सयसहस्साइं । असुभाओ य सुभाओ तत्थ सुभाओ इमा जाण ॥ १ ॥ अस्संखाउमणुस्सा राईसर संखमादिआऊणं । तित्थगरनामगोत्तं सव्वसुहं होइ नायव्वं ॥ २ ॥ तत्थवि य जाइसंपन्नतादि सेसाउ हुंति असुभाओ । देवेसु किव्विसादी सेसाओ हुंति उ सुभाओ ॥ ३ ॥ पंचिंदियतिरिएसुं हयगयरयणे हवंति उ सुभाओ । सेसाओ अ सुभाओ सुभवण्णेगिंदियादीया ॥ ४ ॥ देविंदचक्कवट्टित्तणाइं मोत्तुं च तित्थगरभावं । अणगारभाविताविय सेसा उ अणंतसो पत्ता ॥ ५ ॥" एताश्चानेकरूपा योनीर्दिगादिषु पर्यटन्नपरिज्ञातकर्माऽसुमान् 'संधेइ'त्ति सन्धयति-सन्धिं करोत्यात्मना, सहाविच्छेदेन संघट्टयतीत्यर्थः, 'संधावइ'त्ति वा पाठान्तरं, 'सन्धावति' पौनःपुन्येन तासु गच्छतीत्यर्थः, तत्सन्धाने च यदनुभवति तद्दर्शयति–विरूपं-बीभत्समम‌नोज्ञं रूपं-स्वरूपं येषां स्पर्शानां दुःखोपनिपातानां ते तथा, स्पर्शाश्रिता दुःखोपनिपाताः स्पर्शा इत्युक्ताः, 'तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश' इतिकृत्वा, उपलक्षणं चैतन्मानस्योऽपि वेदना ग्राह्याः, अतस्तानेवम्भूतान् स्पर्शान् 'प्रतिसंवेदयति' अनुभवति, प्रतिग्रहणात्प्रत्येकं शारीरान्मानसांश्च दुःखो-

॥ २४ ॥

१ शीताद्या योनयश्चतुरशीतिश्च शतसहस्राणि । अशुभाः शुभाश्च तत्र शुभा इमा जानीहि ॥ १ ॥ असंख्यायुर्मनुष्याः संख्यायुष्काणां राजेश्वराद्याः । तीर्थंकरनामगोत्रं सर्वशुभं भवति ज्ञातव्यम् ॥ २ ॥ तत्रापि च जातिसम्पन्नताद्याः शेषा भवन्त्यशुभाः । देवेषु किल्बिषाद्याः शेषा भवन्ति च शुभाः ॥ ३ ॥ पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु हयगजरत्नयोर्भवति शुभा । शेषाश्च शुभाः शुभवर्णैकेन्द्रियाद्याः ॥४॥ देवेन्द्रचक्रवर्तित्वे मुक्त्वा तीर्थंकरभावं च । भावितानगारतामपि च शेषास्त्वनन्तशः प्राप्ताः ॥५॥

२ ताः प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शुभाशुभ भेदेन जीव-योनि स्वरूपं, संसारपरिभ्रमणं

प्रत सूत्रांक [९]

दीप अनुक्रम [९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

पनिपातानुभवतीत्युक्तं भवति, स्पर्शग्रहणं चेह सर्वसंसारान्तर्वर्त्तिजीवराशिसङ्ग्रहार्थं, स्पर्शनेन्द्रियस्य सर्वजीवव्यापित्वाद्, अत्रेदमपि वक्तव्यं–सर्वान्विरूपरूपान् रसगन्धरूपशब्दान् प्रतिसंवेदयतीति, विरूपरूपत्वं च स्पर्शानां कार्यभूतानां विचित्रकर्मोदयात्कारणभूताद्भवतीति वेदितव्यं, विचित्रकर्मोदयाच्चापरिज्ञातकर्मा संसारी स्पर्शादीन्विरूपरूपांस्तेषु तेषु योन्यन्तरेषु विपाकतः परिसंवेदयतीति, आह च—"तैः कर्मभिः स जीवो विवशः संसारचक्रमुपयाति । द्रव्यक्षेत्राद्धाभावभिन्नमावर्त्तते बहुशः ॥ १ ॥ नरकेषु देवयोनिषु तिर्यग्योनिषु च मनुजयोनिषु च । पर्यटति घटीयन्त्रवदात्मा बिभ्रच्छरीराणि ॥ २ ॥ सततानुबद्धमुक्तं दुःखं नरकेषु तीव्रपरिणामम् । तिर्यक्षु भयक्षुत्तृड्वधादिदुःखं सुखं चाल्पम् ॥ ३ ॥ सुखदुःखे मनुजानां मनःशरीराश्रये बहुविकल्पे । सुखमेव हि देवानां दुःखं स्वल्पं च मनसि भवम् ॥ ४ ॥ कर्मानुभावदुःखित एवं मोहान्धकारगहनवति । अन्ध इव दुर्गमार्गे भ्रमति हि संसारकान्तारे ॥ ५ ॥ दुःखप्रतिक्रियार्थं सुखाभिलाषाच्च पुनरपि तु जीवः । प्राणिवधादीन् दोषानधितिष्ठति मोहसंछन्नः ॥ ६ ॥ बध्नाति ततो बहुविधमन्यत्पुनरपि नवं सुबहु कर्म । तेनाथ पच्यते पुनरग्नेरग्निं प्रविश्येव ॥ ७ ॥ एवं कर्माणि पुनः पुनः स बध्नंस्तथैव मुञ्चंश्च । सुखकामो बहुदुःखं संसारमनादिकं भ्रमति ॥ ८ ॥ एवं भ्रमतः संसारसागरे दुर्लभं मनुष्यत्वम् । संसारमहत्त्वाधार्मिकत्वदुष्कर्म्मबाहुल्यैः ॥ ९ ॥ आर्यो देशः कुलरूपसम्पदायुश्च दीर्घमारोग्यम् । यतिसंसर्गः श्रद्धा धर्म्मश्रवणं च मतितैक्ष्ण्यम् ॥ १० ॥ एतानि दुर्लभानि प्राप्तवतोऽपि दृढमोहनीयस्य । कुपथाकुलेऽर्हदुक्तोऽतिदुर्लभो

१ तत्रे० प्र०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपरिज्ञातकर्मा आत्मानाम् विविध जीव-योनि मध्ये परिभ्रमणं

प्रत सूत्रांक [९]

दीप अनुक्रम [१०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ २५ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः १

जगति सन्मार्गः ॥ ११ ॥" यदि वा योऽयं पुरुषः सर्वा दिशोऽनुदिशश्चानुसञ्चरति तथाऽनेकरूपा योनीः सन्धावति विरूपरूपांश्च स्पर्शान् प्रतिसंवेदयति, सः 'अविज्ञातकर्मा' अविज्ञातम्—अविदितं कर्म्म-क्रिया व्यापारो मनोवाक्कायलक्षणः, अकार्षमहं करोमि करिष्यामीत्येवंरूपः जीवोपमर्दात्मकत्वेन बन्धहेतुः सावद्यो येन सोऽयमविज्ञातकर्मा, अविज्ञातकर्मत्वेन च तत्र तत्र कर्मणि जीवोपमर्दादिके प्रवर्त्तते येन येनास्याष्टविधकर्म्मबन्धो भवति, तदुदयाच्चानेकरूपयोन्यनुसन्धानं विरूपरूपस्पर्शानुभवश्च भवतीति ॥ ९ ॥ यद्येवं ततः किमित्यत आह—

तत्थ खलु भगवता परिण्णा पवेइआ (सू० १०)

'तत्र' कर्मणि व्यापारे अकार्षमहं करोमि करिष्यामीत्यात्मपरिणतिस्वभावतया मनोवाक्कायव्यापाररूपे 'भगवता' वीरवर्द्धमानस्वामिना परिज्ञानं परिज्ञा सा प्रकर्षेण प्रशस्ताऽऽदौ वा वेदिता प्रवेदिता, एतच्च सुधर्म्मस्वामी जम्बूस्वामिनाम्ने कथयति, सा च द्विधा-ज्ञपरिज्ञा प्रत्याख्यानपरिज्ञा च, तत्र ज्ञपरिज्ञया सावद्यव्यापारेण बन्धो भवतीत्येवं भगवता परिज्ञा प्रवेदिता, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च सावद्ययोगा बन्धहेतवः प्रत्याख्येया इत्येवंरूपा चेति ॥ अमुमेवार्थं निर्युक्तिकृदाह—

तत्थ अकारि करिस्संति बंधचिंता कया पुणो होइ । सहसम्मइया जाणइ कोइ पुण हेतुजुत्तीए ॥ ६७ ॥

'तत्र' कर्मणि क्रियाविशेषे, किम्भूत इत्याह—'अकारि करिस्संति' अकारीति कृतवान् करिस्सन्ति-करिष्यामीति, अनेनातीतानागतोपादानेन तन्मध्यवर्तिनो वर्त्तमानस्य कारितानुमत्योश्चोपसङ्ग्रहान्नवापि भेदा आत्मपरिणामत्वेन यो- ॥ २५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

----

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०]

दीप अनुक्रम [१०]

गरूपा उपात्ता द्रष्टव्याः, तत्रानेनात्मपरिणामरूपेण क्रियाविशेषेण 'बन्धचिन्ता कृता भवति' बन्धस्योपादानमुपात्तं भवति, 'कर्म योगनिमित्तं बध्यते' इति वचनात्, एतच्च कश्चिज्जानाति आत्मना सह या सन्मतिः स्वमतिर्वा-अवधि-मनःपर्यायकेवलजातिस्मरणरूपा तया जानाति, कश्चिच्च पक्षधर्मान्वयव्यतिरेकलक्षणया हेतुयुक्त्येति । अथ किमर्थमसौ कटुकविपाकेषु कर्माश्रवहेतुभूतेषु क्रियाविशेषेषु प्रवर्त्तत इत्याह—

इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाईमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं (सू० ११)

तत्र जीवितमिति-जीवन्त्यनेनायुःकर्म्मणेति जीवितं-प्राणधारणम्, तच्च प्रतिप्राणि स्वसंविदितमितिकृत्वा प्रत्यक्षासन्नवाचिनेदमा निर्दिशति, चशब्दो वक्ष्यमाणजात्यादिसमुच्चयार्थः, एवकारोऽवधारणे, (अस्यैव जीवितस्यार्थे परिफल्गुसारस्य तडिल्लताविलसितचञ्चलस्य बह्वपायस्य दीर्घसुखार्थं क्रियासु प्रवर्त्तते,) तथाहि—जीविष्याम्यहमरोगः सुखेन भोगान् भोक्ष्ये ततो व्याध्यपनयनार्थं स्नेहापानलावकपिशितभक्षणादिषु क्रियासु प्रवर्त्तते, तथाऽल्पस्य सुखस्य कृते अभिमानग्रहाकुलितचेता बह्वारम्भपरिग्रहाद्बह्वशुभं कर्मादत्ते, उक्तं च—"द्वे वाससी प्रवरयोषिदपायशुद्धा, शय्याऽऽसनं करिवरस्तुरगो रथो वा । काले भिषग्नियमिताशनपानमात्रा, राज्ञः पराक्यमिव सर्वमवेहि शेषम् ॥ १ ॥ पुष्ट्यर्थमन्नमिह यत्प्रणिधिप्रयोगैः, संत्रासदोषकलुषो नृपतिस्तु भुङ्क्ते । यन्निर्भयः प्रशमसौख्यरतिश्च भैक्षं, तत् स्वादुतां भृशमुपैति न पार्थिवान्नम् ॥ २ ॥ भृत्येषु मन्त्रिषु सुतेषु मनोरमेषु, कान्तासु वा मधुमदाङ्कुरितेक्षणासु । विश्रम्भमेति न कदाचिदपि क्षितीशः, सर्वाभिशङ्कितमतेः कतरत्तु सौख्यम् ॥ ३ ॥" तदेवमनवबुद्धतरुणकिशलयपलाशचञ्चलजीवितरतयः कर्मा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्माश्रव-हेतुभूत क्रियाविशेषे प्रवर्तने जीवस्य हेतुः

प्रत सूत्रांक [११]

दीप अनुक्रम [११]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ २६ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः १

श्रवेषु जीवितोपमर्दादिरूपेषु प्रवर्त्तन्ते, तथाऽस्यैव जीवितस्य परिवन्दनमाननपूजनार्थं हिंसादिषु प्रवर्त्तन्ते, तत्र 'परिवन्दनं' संस्तवः प्रशंसा तदर्थमाचेष्टते, तथाहि–अहं मयूरादिपिशिताशनाद्बली तेजसा देदीप्यमानो देवकुमार इव लोकानां प्रशंसास्पदं भविष्यामीति 'माननम्' अभ्युत्थानासनदानाञ्जलिप्रग्रहादिरूपं तदर्थं वा चेष्टमानः कर्माचिनोति तथा पूजनं पूजा–द्रविणवस्त्रान्नपानसत्कारप्रणामसेवाविशेषरूपं तदर्थं च प्रवर्त्तमानः क्रियासु कर्माश्रवैरात्मानं सम्भावयति, तथाहि—'वीरभोग्या वसुन्धरे'ति मत्वा पराक्रमते, दण्डभयाच्च सर्वा प्रजा बिभ्यतीति दण्डयति, इत्येवं राज्ञामन्येषामपि यथासम्भवमायोजनीयम्, अत्र च वन्दनादीनां द्वन्द्वसमासं कृत्वा तादर्थ्ये चतुर्थी विधेया, परिवन्दनमाननपूजनाय जीवितस्य कर्माश्रवेषु प्रवर्त्तन्त इति समुदायार्थः । न केवलं परिवन्दनाद्यर्थमेव कर्मादत्ते, अन्यार्थमप्यादत्त इति दर्शयति–जातिश्च मरणं च मोचनं च जातिमरणमोचनमिति समाहारद्वन्द्वात्तादर्थ्ये चतुर्थी, एतदर्थं च प्राणिनः क्रियासु प्रवर्त्तमानाः कर्माददते, तत्र जात्यर्थं क्रौञ्चारिवन्दनादिकाः[1] क्रिया विधत्ते, तथा यान् यान् कामान् ब्राह्मणादिभ्यो ददाति तांस्तानन्यजन्मनि पुनर्जातो भोक्ष्यते, तथा मनुनाऽप्युक्तम्—"वारिदस्तृप्तिमाप्नोति, सुखमक्षयमन्नदः । तिलप्रदः प्रजामिष्टामायुष्कमभयप्रदः ॥ ११ ॥" अत्र चैकमेव सुभाषितम्—'अभयप्रदान'मिति तुषमध्ये कणिकावदिति, एवमादिकुमार्गोपदेशाद्धिंसादौ प्रवृत्तिं विदधाति । तथा मरणार्थमपि पितृपिण्डदानादिषु क्रियासु प्रवर्तते, यदिवा ममानेन सम्बन्धी व्यापादितस्तस्य वैरनिर्यातनार्थं वधबन्धादौ प्रवर्त्तते, यदिवा मरणनिवृत्त्यर्थमात्मनो ॥ २६ ॥

१ कार्त्तिकेयः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्माश्रव-हेतुभूत क्रियाविशेषे प्रवर्तने जीवस्य हेतु:, ते ते क्रिया:

प्रत सूत्रांक [११]

दीप अनुक्रम [११]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

दुर्गाद्युपयाचितमजादिना बलिं विधत्ते यशोधर इव पिष्टमयकुक्कुटेन, तथा मुक्त्यर्थमज्ञानावृतचेतसः पञ्चाग्नितपोऽनुष्ठानादिकेषु प्राण्युपमर्द्दकारिषु प्रवर्त्तमानाः कर्माददते, यदिवा जातिमरणयोर्विमोचनाय हिंसादिकाः क्रियाः कुर्वते । 'जाइमरणभोयणाए'त्ति वा पाठान्तरं, तत्र भोजनार्थं कृष्यादिकर्मसु प्रवर्त्तमाना वसुधाजलज्वलनपवनवनस्पतिद्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियव्यापत्तये व्याप्रियन्त इति । तथा दुःखप्रतिघातमुररीकृत्यात्मपरित्राणार्थमारम्भानासेवन्ते, तथाहि–व्याधिवेदनार्त्ता लावकपिशितमदिराद्यासेवन्ते, तथा वनस्पतिमूलत्वक्पत्रनिर्यासादिसिद्धशतपाकादितैलार्थमग्न्यादिसमारम्भेण पापं कुर्वन्ति स्वतः कारयन्त्यन्यैः कुर्वतोऽन्यान् समनुजानत इत्येवमतीतानागतकालयोरपि मनोवाक्काययोगैः कर्मादानं विदधतीत्यायोजनीयम् । तथा दुःखप्रतिघातार्थमेव सुखोत्पत्त्यर्थं च कलत्रपुत्रगृहोपस्कराद्याददते, तल्लाभपालनार्थं च तासु तासु क्रियासु प्रवर्त्तमानाः पापकर्मासेवन्त इति, उक्तं च—"आदौ प्रतिष्ठाऽधिगमे प्रयासो, दारेषु पश्चाद्गृहिणः सुतेषु । कर्त्तुं पुनस्तेषु गुणप्रकर्षं, चेष्टा तदुच्चैःपदलङ्घनाय ॥ १ ॥" तदेवंभूतैः क्रियाविशेषैः कर्मोपादाय नानादिक्ष्वनुसञ्चरन्ति अनेकरूपासु च योनिषु सन्धावन्ति विरूपरूपांश्च स्पर्शान् प्रतिसंवेदयन्ति, इत्येतज्ज्ञात्वा क्रियाविशेषनिवृत्तिर्विधेयेति ॥ ११ ॥ एतावन्त एव च क्रियाविशेषा इति दर्शयितुमाह—

एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति (सू० १२)

'एआवन्ती सव्वावन्ती'ति एतौ द्वौ शब्दौ मागधदेशीभाषाप्रसिद्ध्या एतावन्तः सर्वेऽपीत्येतत्पर्यायौ, एतावन्त एव

१ मोक्षाया प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्माश्रव-हेतुभूत क्रियाविशेषे प्रवर्तने जीवस्य हेतु:, ते ते क्रिया:

प्रत सूत्रांक [१२]

दीप अनुक्रम [१२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ २७ ॥

अध्ययनं १

उद्देशकः १

सर्वस्मिन् 'लोके' धर्माधर्मास्तिकायावच्छिन्ने नभःखण्डे ये पूर्वं प्रतिपादिताः 'कर्मसमारम्भाः' क्रियाविशेषाः, नैतेभ्योऽधिकाः केचन सन्तीत्येवं परिज्ञातव्या भवन्ति, सर्वेषां पूर्वत्रोपादानादिति भावः तथाहि–आत्मपरोभयैहिकामुष्मिकातीतानागतवर्त्तमानकालकृतकारितानुमतिभिरारम्भाः क्रियन्ते, ते च सर्वेऽपि प्रागुपात्ता यथासम्भवमायोज्या इति ॥ १२ ॥ एवं सामान्येन जीवास्तित्वं प्रसाध्य तदुपमर्दकारिणां च क्रियाविशेषाणां बन्धहेतुत्वं प्रदर्श्योपसंहारद्वारेण विरतिं प्रतिपादयन्नाह—

जस्सेते लोगंसि कम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे (सू० १३) त्तिबेमि ॥ प्रमथोद्देशकः १ ॥

भगवान् समस्तवस्तुवेदी केवलज्ञानेन साक्षादुपलभ्यैवमाह—'यस्य' मुमुक्षोः 'एते' पूर्वोक्ताः 'कर्मसमारम्भाः' क्रियाविशेषाः कर्मणो वा–ज्ञानावरणीयाद्यष्टप्रकारस्य समारम्भा-उपादानहेतवस्ते च क्रियाविशेषा एव, परि-समन्तात् ज्ञाताः–परिच्छिन्नाः कर्मबन्धहेतुत्वेन भवन्ति, हुरवधारणे, मनुते मन्यते वा जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिः स एव मुनिर्ज्ञ-परिज्ञया परिज्ञातकर्मा प्रत्याख्यानपरिज्ञया च प्रत्याख्यातकर्म्मबन्धहेतुभूतसमस्तमनोवाक्कायव्यापार इति, अनेन च मोक्षाङ्गभूते ज्ञानक्रिये उपात्ते भवतो, न ह्याभ्यां विना मोक्षो भवति, यत उक्तम्—"ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष" इति । इतिशब्द एतावानयमात्मपदार्थविचारः कर्मबन्धहेतुविचारश्च सकलोद्देशकेन परिसमापित इति प्रदर्शकः, यदिवा

॥ २७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्मबंधस्य कारणभूत क्रियाविशेषा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[१३]

दीप
अनुक्रम
[१३]

'इति' एतदहं ब्रवीमि यन्मयाऽउक्तं यच्च वक्ष्ये तत्सर्वं भगवदन्तिके साक्षात् श्रुत्वेति शस्त्रपरिज्ञायां प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

उक्तः प्रथमोद्देशकः साम्प्रतं द्वितीयः प्रस्तूयते–अस्य चायमभिसम्बन्धः-प्रथमोद्देशके सामान्येन जीवास्तित्वं प्रसाधितम्, इदानीं तस्यैवेकेन्द्रियादिपृथिव्याद्यस्तित्वप्रतिपिपादयिषयाऽऽह–यदिवा प्राक् परिज्ञातकर्मत्वं मुनित्वकारणमुपादेशि, यः पुनरपरिज्ञातकर्मत्वान्मुनिर्न भवति-विरतिं न प्रतिपद्यते स पृथिव्यादिषु बम्भ्रमीति, अथ क एते पृथिव्यादय इत्यतस्तद्विशेषास्तित्वज्ञापनार्थमिदमुपक्रम्यत इति। अनेनाभिसम्बन्धेनायातस्यास्योद्देशकस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि वाच्यानि, यावन्नामनिष्पन्ने निक्षेपे पृथिव्युद्देशक इति, तत्रोद्देशकस्य निक्षेपादेरन्यत्र प्रतिपादितत्वान्नेह प्रदर्श्यते, पृथिव्यास्तु यन्निक्षेपादि सम्भवति तन्निर्युक्तिकृद्दर्शयितुमाह—

पुढवीए निक्खेवो परूवणालक्खणं परीमाणं। उवभोगो सत्थं वेयणा य वहणा निवित्ती य ॥ ६८ ॥

प्राग् जीवोद्देशके जीवस्य प्ररूपणा किं न कृतेत्येतच्च नाशङ्कनीयं, यतो जीवसामान्यस्य विशेषाधारत्वात् विशेषस्य च पृथिव्यादिरूपत्वात् सामान्यजीवस्य चोपभोगादेरसम्भवात् पृथिव्यादिचर्चयैव तस्य चिन्तितत्वादिति। तत्र पृथिव्या नामादिनिक्षेपो वक्तव्यः, प्ररूपणा-सूक्ष्मबादरादिभेदा, लक्षणं-साकारानाकारोपयोगकाययोगादिकं, परिमाणं-संवर्त्तितलोकप्रतरासंख्येयभागमात्रादिकम्, उपभोगः–शयनासनचङ्क्रमणादिकः, शस्त्रं-स्नेहाम्लक्षारादि, वेदना-स्वशरीराव्यक्तचेतनानुरूपा सुखदुःखानुभवस्वभावा, वधः–कृतकारितानुमतिभिरुपमर्दनादिकः, निवृत्तिः–अप्रमत्तस्य मनोवाक्कायगुप्त्याऽनुपमर्दादिकेति समासार्थः। व्यासार्थं तु निर्युक्तिकृद्यथाक्रममाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययने द्वितीय: उद्देशक: 'पृथ्विकाय' आरब्ध:,
'पृथ्वी' शब्दस्य निक्षेपा:,

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

नामंठवणापुढवी दव्वपुढवी य भावपुढवी य । एसो खलु पुढवीए निक्खेवो चउविहो होइ ॥ ६९ ॥

स्पष्टा, नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्याह—

दव्वं सरीरभविओ भावेण य होइ पुढविजीवो उ । जो पुढविनामगोयं कम्मं वेएइ सो जीवो ॥ ७० ॥

द्रव्यपृथिवी आगमतो नोआगमतश्च, आगमतो ज्ञाता तत्र चानुपयुक्तः, नोआगमतस्तु पृथिवीपदार्थज्ञस्य शरीरं जीवापेतं तथा पृथिवीपदार्थज्ञत्वेन भव्यो-बालादिस्ताभ्यां विनिर्मुक्तो द्रव्यपृथिवीजीवः—एकभविको बद्धायुष्कोऽभिमुखनामगोत्रश्च, भावपृथिवीजीवः पुनर्यः पृथिवीनामादिकर्मोदीर्णं वेदयति । गतं निक्षेपद्वारं, साम्प्रतं प्ररूपणाद्वारम्—

दुविहा य पुढविजीवा सुहुमा तह बायरा य लोगंमि । सुहुमा य सव्वलोए दो चेव य बायरविहाणा ॥ ७१ ॥

पृथिवीजीवा द्विविधाः—सूक्ष्मा बादराश्च, सूक्ष्मनामकर्मोदयात् सूक्ष्माः, बादरनामकर्मोदयात्तु बादराः, कर्मोदयजनिते एवैषां सूक्ष्मबादरत्वे न त्वापेक्षिके बदरामलकयोरिव ॥ तत्र सूक्ष्माः समुद्गकपर्याप्तप्रक्षिप्तगन्धावयववत् सर्वलोकव्यापिनः, बादरास्तु मूलभेदाद्विविधा इत्याह—

दुविहा बायरपुढवी समासओ सण्हपुढवि खरपुढवी । सण्हा य पंचवण्णा अवरा छत्तीसइविहाणा ॥ ७२ ॥

'समासतः' संक्षेपाद्विविधा बादरपृथिवी-श्लक्ष्णबादरपृथिवी खरबादरपृथिवी च, तत्र श्लक्ष्णबादरपृथिवी कृष्णनीललोहितपीतशुक्लभेदात्पञ्चधा, इह च गुणभेदाद्गुणिभेदोऽभ्युपगन्तव्यः, खरबादरपृथिव्यास्त्वन्येऽपि षट्त्रिंशद्विशेषभेदाः सम्भवन्तीति ॥ तानाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'पृथ्वी' शब्दस्य निक्षेपा:, 'पृथ्व्या: भेदा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[१३]

दीप
अनुक्रम
[१३]

पुढवी य सक्करा वालुगा य उवले सिला य लोणूसे। अय तंब तउअ सीसग रुप्प सुवण्णे य वइरे य ॥७३॥
हरियाले हिंगुलए मणोसिला सासगंजण पवाले। अब्भपडलब्भवालुअ बायरकाए मणिविहाणा ॥ ७४ ॥
गोमेज्जए य रुयगे अंको फलिहे य लोहियक्खे य। मरगय मसारगल्ले भुयमोयग इंदनीले य ॥ ७५ ॥
चंदप्पह वेरुलिए जलकंते चेव सूरकन्ते य। एए खरपुढवीए नामं छत्तीसयं होइ ॥ ७६ ॥

अत्र च प्रथमगाथया पृथिव्यादयश्चतुर्दश भेदाः परिगृहीताः, द्वितीयगाथया त्वष्टौ हरितालादयः, तृतीयगाथया दश गोमेदकादयः, तुर्यगाथया चत्वारश्चन्द्रकान्तादयः। अत्र च पूर्वगाथाद्वयेन सामान्यपृथिवीभेदाः प्रदर्शिताः, उत्तरगाथाद्वयेन मणिभेदाः प्रदर्शिताः, एताः स्पष्टा इति कृत्वा न विवृताः॥ एवं सूक्ष्मबादरभेदान् प्रतिपाद्य पुनर्वर्णादिभेदेन पृथिवीभेदान् दर्शयितुमाह—

वण्णरसगंधफासे जोणिप्पमुहा भवंति संखेज्जा। णेगाइ सहस्साइं हुंति विहाणंमि इक्विक्के ॥ ७७ ॥

तत्र वर्णाः शुक्लादयः पञ्च रसास्तिक्तादयः पञ्च गन्धौ सुरभिदुरभी स्पर्शाः मृदुकर्कशादयः अष्टौ, तत्र वर्णादिके एकैकस्मिन् 'योनिप्रमुखा' योनिप्रभृतयः संख्येया भेदा भवन्ति, संख्येयस्यानेकरूपत्वाद्विशिष्टसंख्यार्थमाह—अनेकानि सहस्राणि एकैकस्मिन् वर्णादिके 'विधाने' भेदे भवन्ति, योनितो गुणतश्च भेदानामिति। एतच्च सप्तयोनिलक्षप्रमाणत्वात्

१ चंदण गेरुय हंसग भुयमोय मसारगल्ले य प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'पृथ्व्याः' भेदाः, (वर्ण-आदि भेदे)

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[१३]

दीप
अनुक्रम
[१३]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ २९ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः २

पृथिव्या एवं सम्भावनीयमिति । उक्तं च प्रज्ञापनायाम्—“तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एएसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखेज्जाइं जोणिपमुहसयसहस्साइं पज्जत्तयणिस्साए अपज्जत्तया वक्कमंति, तं जत्थेगो तत्थ नियमा असंखेज्जा, से त्तं खरबायरपुढविकाइया” इह च संवृतयोनयः पृथिवीकायिका उक्ताः, सा पुनः सचित्ता अचित्ता मिश्रा वा, तथा पुनश्च शीता उष्णा शीतोष्णा वेत्येवमादिका द्रष्टव्येति ॥ एतदेव भूयो निर्युक्तिकृत् स्पष्टतरमाह—

वण्णंमि य इक्किके गंधंमि रसंमि तह य फासंमि । नाणत्ती कायव्वा विहाणए होइ इक्किक्कं ॥ ७८ ॥

वर्णादिके एकैकस्मिन् ‘विधाने’ भेदे सहस्राग्रशो नानात्वं विधेयं, तथाहि–कृष्णो वर्ण इति सामान्यं, तस्य च भ्रमराङ्गारकोकिलगवलकज्जलादिषु प्रकर्षाप्रकर्षविशेषाद्भेदः कृष्णः कृष्णतरः कृष्णतम इत्यादि, एवं नीलादिष्वप्यायोज्यं, तथा रसगन्धस्पर्शेषु सर्वत्र पृथिवीभेदा वाच्याः, तथा वर्णादीनां परस्परसंयोगाद्धूसरकेसरकर्बुरादिवर्णान्तरोत्पत्तिरेवमुत्प्रेक्ष्य वर्णादीनां प्रत्येकं प्रकर्षाप्रकर्षतया परस्परानुवेधेन च बहवो भेदा वाच्याः ॥ पुनरपि पर्याप्तकादिभेदाद्भेदमाह—

जे बायरे विहाणा पज्जत्ता तत्तिआ अपज्जत्ता । सुहुमावि हुंति दुविहा पज्जत्ता चेव अपज्जत्ता ॥ ७९ ॥

॥ २९ ॥

१ भावनीयमिति प्र. २ तत्र ये ते पर्याप्तकाः एतेषां वर्णादेशेन गन्धादेशेन रसादेशेन स्पर्शादेशेन सहस्राग्रशो विधानानि संख्येयानि योनिप्रमुखानि शतसहस्राणि, पर्याप्तकनिश्रयाऽपर्याप्तका व्युत्क्रामन्ति, तद् यत्रैकस्तत्र नियमादसंख्येयाः इत्येते खरबादरपृथ्वीकायिकाः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

‘पृथ्व्या:’ भेदा:, (वर्ण-आदि भेदे)

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१३]

यानि बादरपृथिवीकाये 'विधानानि' भेदाः प्रतिपादितास्तानि यावन्ति पर्याप्तकानां तावन्त्येवापर्याप्तकानामपि, अत्र च भेदानां तुल्यत्वं द्रष्टव्यं न तु जीवानां, यत एकपर्याप्तकाश्रयेणासंख्येया अपर्याप्तका भवन्ति, सूक्ष्मा अपि पर्याप्तकापर्याप्तकभेदेन द्विविधा एव, किन्तु अपर्याप्तकनिश्रया पर्याप्तकाः समुत्पद्यन्ते, यत्र चैकोऽपर्याप्तकस्तत्र नियमादसंख्येयाः पर्याप्तकाः स्युः। पर्याप्तिस्तु 'आहारसरीरिन्दियऊसासवओमणोऽहिनिव्वत्ती । होति जतो दलियाओ करणं पइ सा उ पज्जत्ती ॥ १ ॥' जन्तुरुत्पद्यमानः पुद्गलोपादानेन करणं निर्वर्त्तयति तेन च करणविशेषेणाहारमवगृह्य पृथग् खलरसादिभावेन परिणतिं नयति स तादृक्करणविशेष आहारपर्याप्तिशब्देनोच्यते, एवं शेषपर्याप्तयोऽपि वाच्याः, तत्रैकेन्द्रियाणामाहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासाभिधानाश्चतस्रो भवन्ति, एताश्चान्तर्मुहूर्त्तेन जन्तुरादत्ते, अनाप्तपर्याप्तिरपर्याप्तकोऽवाप्तपर्याप्तिस्तु पर्याप्तक इति, अत्र च पृथिव्येव कायो येषामिति विग्रहः ॥ यथा सूक्ष्मबादरादयो भेदाः सिद्ध्यन्ति तथा प्रसिद्धभेदेनोदाहरणेन दर्शयितुमाह—

रुक्खाणं गुच्छाणं गुम्माण लयाण वल्लिवलयाणं। जह दीसइ नाणत्तं पुढवीकाए तहा जाण ॥ ८० ॥

यथा वनस्पतेर्वृक्षादिभेदेन स्पष्टं नानात्वमुपलभ्यते, तथा पृथिवीकायिकेऽपि जानीहि, तत्र वृक्षाः—चूतादयो गुच्छा-वृन्ताकीसल्लकीकर्पास्यादयः, गुल्मानि-नवमालिकाकोरण्टकादीनि, लताः—पुन्नागाशोकलताद्याः, वल्ल्यः—त्रपुषीवालुङ्कीकोशातक्याद्याः, वलयानि-केतकीकदल्यादीनि ॥ पुनरपि वनस्पतिभेददृष्टान्तेन पृथिव्या भेदमाह—

१ आहारः शरीरमिन्द्रियाणि उच्छ्वासो वचः मनः (एषां) अभिनिर्वृत्तिः। भवति यतो दलिकात् करणं प्रति सैव पर्याप्तिः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'पृथ्व्याः' भेदाः, वनस्पतेः भेदाः

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ३० ॥

ओसहि तण सेवाले पणगविहाणे य कंद मूले य। जह दीसइ नाणत्तं पुढवीकाए तहा जाण ॥ ८१ ॥ अध्ययनं १ उद्देशकः २

यथा हि वनस्पतिकायस्य ओषध्यादिको भेद एवं पृथिव्या अपि द्रष्टव्यः, तत्र ओषध्यः–शाल्याद्याः, तृणानि-दर्भादीनि, सेवालं-जलोपरि मलरूपं, पनकः-काष्ठादावुल्लीविशेषः पञ्चवर्णः, कन्दः–सूरणकन्दादिः, मूलम्–उशीरादीति ॥ एते च सूक्ष्मत्वान्नैकद्व्यादिकाः समुपलभ्यन्ते, यत्संख्यास्तूपलभ्यन्ते तद्दर्शयितुमाह—

इक्कस्स दुण्ह तिण्ह व संखिज्जाण व न पासिउं सक्का। दीसंति सरीराइं पुढविजियाणं असंखाणं ॥ ८२ ॥

स्पष्टा ॥ कथं पुनरिदमवगन्तव्यम्?, सन्ति पृथिवीकायिका इति, उच्यते, तदधिष्ठितशरीरोपलब्धेः अधिष्ठातरि प्रतीतिर्गवाश्वादाविव इति, एतद्दर्शयितुमाह—

एएहिँ सरीरेहिं पचक्खं ते परूविया हुंति। सेसा आणागिज्झा चक्खुफासं न जं इंति ॥ ८३ ॥

'एभिः' असंख्येयतयोपलभ्यमानैः पृथिवीशर्करादिभेदभिन्नैः शरीरैस्ते शरीरिणः शरीरद्वारेण 'प्रत्यक्षं' साक्षात् 'प्ररूपिताः' ख्यापिता भवन्ति, शेषास्तु सूक्ष्मा आज्ञाग्राह्या एव द्रष्टव्याः, यतस्ते चक्षुःस्पर्शं नागच्छन्ति, स्पर्शशब्दो विषयार्थः ॥ प्ररूपणाद्वारानन्तरं लक्षणद्वारमाह—

उवओगजोग अज्झवसाणे मइसुय अचक्खुदंसे य। अट्ठविहोदयलेसा सन्नुस्सासे कसाया य ॥ ८४ ॥ ॥ ३० ॥

तत्र पृथिवीकायादीनां स्त्यानर्ध्युद्युदयाद्या च यावती चोपयोगशक्तिरव्यक्ता ज्ञानदर्शनरूपेत्येवमात्मक उपयोगो लक्षणं, तथा योगः–कायाख्य एक एव, औदारिकतन्मिश्रकार्म्मणात्मको वृद्धयष्टिकल्पो जन्तोः सकर्मकस्यालम्बनाय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वनस्पते: भेदा:, पृथिवी आदि कायिकानाम् लक्षणा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[१३]

दीप
अनुक्रम
[१३]

व्याप्रियते, तथा अध्यवसायाः–सूक्ष्मा आत्मनः परिणामविशेषाः, ते च लक्षणम्, अव्यक्तचैतन्यपुरुषमनःसमुद्भूतचिन्ताविशेषा इवानभिलक्ष्यास्तेऽभिगन्तव्याः, तथा साकारोपयोगान्तःपातिमतिश्रुताज्ञानसमन्विताः पृथिवीकायिका बोद्धव्याः, तथा स्पर्शनेन्द्रियेणाचक्षुर्दर्शनानुगता बोद्धव्याः, तथा ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मोदयभाजस्तावद्बन्धभाजश्च, तथा लेश्या-अध्यवसायविशेषरूपाः कृष्णनीलकापोततैजस्यश्चतस्रः ताभिरनुगताः, तथा दशविधसंज्ञानुगताः, ताश्च आहारादिकाः प्रागुक्ता एव, तथा सूक्ष्मोच्छ्वासनिःश्वासानुगताः, उक्तं च—"पुढविकाइया णं भंते! जीवा आणवन्ति वा पाणवन्ति वा ऊससन्ति वा नीससंति वा?, गोयमा! अविरहियं सतयं चेव आणवन्ति वा पाणवन्ति वा ऊससन्ति वा नीससन्ति वा" कषाया अपि सूक्ष्माः क्रोधादयः। एवमेतानि जीवलक्षणान्युपयोगादीनि कषायपर्यवसानानि पृथिवीकायिकेषु सम्भवन्तीति, ततश्चैवंविधजीवलक्षणकलापसमनुगतत्वात् मनुष्यवत्सचित्ता पृथिवीति। ननु च तदिदमसिद्धमसिद्धेन साध्यते, तथाहि–न ह्युपयोगादीनि लक्षणानि पृथिवीकायेषु व्यक्तानि समुपलक्ष्यन्ते, सत्यमेतद्, अव्यक्तानि तु विद्यन्ते, यथा कस्यचित्पुंसः हृत्पूरकव्यतिमिश्रमदिरातिपानपित्तोदयाकुलीकृतान्तःकरणविशेषस्याव्यक्ता चेतना, न चैतावता तस्याचिद्रूपता, एवमत्राप्यव्यक्तचेतनासम्भवोऽभ्युपगन्तव्यः, ननु चात्रोच्छ्वासादिकमव्यक्तचेतनालिङ्गमस्ति, न चेह तथाविधं किञ्चिच्चेतनालिङ्गमस्ति, नैतदेवम्, इहापि समानजातीयलतोद्भेदादिकमर्शोमांसाङ्कुरवच्चेतना-

१ पृथ्वीकायिका भदन्त! जीवा आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा?, गौतम! अविरहितं सततमेव चानन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा.

[ए. ६]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथिवी आदि कायिकानाम् लक्षणा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[१३]

दीप
अनुक्रम
[१३]

चिह्नमस्त्येव, अव्यक्तचेतनानां हि सम्भावितैकचेतनालिङ्गानां वनस्पतीनामिव चेतनाऽभ्युपगन्तव्येति, वनस्पतेश्च चैतन्यं विशिष्टर्तुपुष्पफलप्रदत्वेन स्पष्टं साधयिष्यते च, ततोऽव्यक्तोपयोगादिलक्षणसद्भावात् सचित्ता पृथिवीति स्थितम् ॥ ननु चाश्मलतादेः कठिनपुद्गलात्मिकायाः कथं चेतनत्वमित्यत आह—

अट्ठी जहा सरीरंमि अणुगयं चेयणं खरं दिट्ठं। एवं जीवाणुगयं पुढविसरीरं खरं होइ ॥ ८५ ॥

यथाऽस्थि शरीरानुगतं सचेतनं खरं दृष्टम्, एवं जीवानुगतं पृथिवीशरीरमपीति ॥ साम्प्रतं लक्षणद्वारानन्तरं परिमाणद्वारमाह—

जे बायरपज्जत्ता पयरस्स असंखभागमित्ता ते। सेसा तिन्निवि रासी वीसुं लोया असंखिज्जा ॥ ८६ ॥

तत्र पृथिवीकायिकाश्चतुर्द्धा, तद्यथा–बादराः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च तथा सूक्ष्मा अपर्याप्ताः पर्याप्ताश्च, तत्र ये बादराः पर्याप्तकास्ते संवर्त्तितलोकप्रतरासंख्येयभागमात्रवर्त्तिप्रदेशराशिप्रमाणा भवन्ति, शेषास्तु त्रयोऽपि राशयः प्रत्येकमसंख्येयानां लोकानामाकाशप्रदेशराशिप्रमाणा भवन्ति, यथानिर्दिष्टक्रमेण चैते यथोत्तरं बहुतराः, यत उक्तम्—"सव्वत्थोवा बादरपुढविकाइया पज्जत्ता, बादरपुढविकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा सुहुमपुढविकाइया पज्जत्ता असंखेज्जगुणा" ॥ प्रकारान्तरेणापि राशित्रयस्य परिमाणं दर्शयितुमाह—

१ सर्वस्तोका बादरपृथ्वीकायिकाः पर्याप्ताः बादरपृथ्वीकायिका अपर्याप्ता असंख्येयगुणाः सूक्ष्मपृथ्वीकायिकाः अपर्याप्ता असंख्येयगुणाः सूक्ष्मपृथ्वीकायिकाः पर्याप्ता असंख्येयगुणाः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथिवी आदि कायिकानाम् लक्षणा:, पृथिवीकायिकस्य परिमाण:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[१३]

दीप
अनुक्रम
[१३]

पत्थेण व कुडवेण व जह कोइ मिणिज्ज सव्वधन्नाइं । एवं मविज्जमाणा हवंति लोया असंखिज्जा ॥ ८७ ॥

यथा प्रस्थादिना कश्चित्सर्वधान्यानि मिनुयाद्, एवमसद्भावप्रज्ञापनाङ्गीकरणाल्लोकं कुडवीकृत्याजघन्योत्कृष्टावगाहनान् पृथिवीकायिकजीवान् यदि मिनोति ततोऽसंख्येयान् लोकान् पृथिवीकायिकाः पूरयन्ति ॥ पुनरपि प्रकारान्तरेण परिमाणमाह—

लोगागासपएसे इक्किक्कं निक्खिवे पुढविजीवं । एवं मविज्जमाणा हवंति लोआ असंखिज्जा ॥ ८८ ॥

स्पष्टा ॥ साम्प्रतं कालतः प्रमाणं निर्दिदिक्षुः क्षेत्रकालयोः सूक्ष्मबादरत्वमाह—

निउणो उ होइ कालो तत्तो निउणयरयं हवइ खित्तं । अंगुलसेढीमित्ते ओसप्पिणीओ असंखिज्जा ॥ ८९ ॥

'निपुणः' सूक्ष्मः 'कालः' समयात्मकः, ततोऽपि सूक्ष्मतरं क्षेत्रं भवति, यतोऽङ्गुलीश्रेणिमात्रक्षेत्रप्रदेशानां समयापहारेणासंख्येया उत्सर्प्पिण्यवसर्प्पिण्योऽपक्रामन्तीत्यतः कालात् क्षेत्रं सूक्ष्मतरम् ॥ प्रस्तुतं कालतः परिमाणं दर्शयितुमाह—

अणुसमयं च पवेसो निक्खमणं चेव पुढविजीवाणं । काए कायट्ठिइया चउरो लोया असंखिज्जा ॥ ९० ॥

तत्र जीवाः पृथिवीकायेऽनुसमयं प्रविशन्ति निष्क्रामन्ति च, एकस्मिन् समये कियतां निष्क्रमः प्रवेशश्च १–२, तथा विवक्षिते च समये कियन्तः पृथिवीकायपरिणताः सम्भवन्ति ३, तथा कियती च कायस्थिति ४ रित्येते चत्वारो विकल्पाः कालतोऽभिधीयन्ते, तत्रासंख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणाः समयेनोत्पद्यन्ते विनश्यन्ति च, पृथिवीत्वेन परि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथिवीकायिकस्य परिमाण:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१३]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ३२ ॥

णता अप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाः, तथा कायस्थितिरपि मृत्वा मृत्वाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणं कालं तत्र तत्रोत्पद्यन्त इति, एवं क्षेत्रकालाभ्यां परिमाणं प्रतिपाद्य परस्परावगाहप्रतिपिपादयिषयाऽऽह— अध्ययनं १ उद्देशकः २

बायरपुढविकाइयपज्जत्तो अन्नमन्नमोगाढो । सेसा ओगाहंते सुहुमा पुण सव्वलोगंमि ॥ ९१ ॥

बादरपृथिवीकायिकः पर्याप्तो यस्मिन्नाकाशखण्डे अवगाढः तस्मिन्नेवाकाशखण्डेऽपरस्यापि बादरपृथिवीकायिकस्य शरीरमवगाढमिति, शेषास्तु अपर्याप्तकाः पर्याप्तकनिश्रया समुत्पद्यमाना अनन्तरप्रक्रियया पर्याप्तकावगाढाकाशप्रदेशावगाढाः, सूक्ष्माः पुनः सर्वस्मिन्नपि लोकेऽवगाढा इति ॥ उपभोगद्वारमाह—

चंकमणे य ट्ठाणे निसीयण तुयट्टणे य कयकरणे । उच्चारे पासवणे उवगरणाणं च निक्खिवणे ॥ ९२ ॥

आलेवण पहरण भूसणे य कयविक्कए किसीए य । भंडाणंपि य करणे उवभोगविही मणुस्साणं ॥ ९३ ॥

चङ्क्रमणोर्द्धस्थाननिषीदनत्वग्वर्त्तनकृतकपुत्रककरणउच्चारप्रश्रवणउपकरणनिक्षेपआलेपनप्रहरणभूषणक्रयविक्रयकृषीकरणभण्डकघट्टनादिषूपभोगविधिर्मनुष्याणां पृथिवीकायेन भवतीति ॥ यद्येवं ततः किमित्यत आह—

एएहिं कारणेहिं हिंसंति पुढविकाइए जीवे । सायं गवेसमाणा परस्स दुक्खं उदीरंति ॥ ९४ ॥

एभिश्चङ्क्रमणादिभिः कारणैः पृथिवीजीवान् हिंसन्ति, किमर्थमिति दर्शयति–'सातं' सुखमात्मनोऽन्वेषयन्तः परदुःखान्यजानानाः कतिपयदिवसरमणीयभोगाशाकर्षितसमस्तेन्द्रियग्रामा विमूढचेतस इति, 'परस्य' पृथिव्याश्रितजन्तुराशेः ॥ ३२ ॥ 'दुःखम्' असातलक्षणं तदुदीरयन्ति–उत्पादयन्तीति, अनेन भूदानजनितः शुभफलोदयः प्रत्युक्त इति ॥ अधुना शस्त्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथिवीकायिकस्य परिमाणद्वारं एवं उपभोगद्वारं

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

द्वारं–शस्यतेऽनेनेति शस्त्रं, तच्च द्विधा–द्रव्यशस्त्रं भावशस्त्रं च, द्रव्यशस्त्रमपि समासविभागभेदाद्द्विधैव, तत्र समासद्रव्यशस्त्रप्रतिपादनायाह—

हलकुलियविसकुद्दालालित्तयमिगसिंगकट्ठमग्गी य । उच्चारे पासवणे एयं तु समासओ सत्थं ॥ ९५ ॥

तत्र हलकुलिकविषकुद्दालालित्रकमृगशृङ्गकाष्ठाग्न्युच्चारप्रश्रवणादिकमेतत् 'समासतः' संक्षेपतो द्रव्यशस्त्रम् ॥ विभागद्रव्यशस्त्रप्रतिपादनायाह—

किंची सकायसत्थं किंची परकाय तदुभयं किंचि । एयं तु दव्वसत्थं भावे अ असंजमो सत्थं ॥ ९६ ॥

किञ्चित्स्वकायशस्त्रं पृथिव्येव पृथिव्याः, किञ्चित्परकायशस्त्रमुदकादि, तदुभयं किञ्चिदिति भूदकं मिलितं भुव इति । तच्च सर्वमपि द्रव्यशस्त्रं, भावे पुनः 'असंयमः' दुष्प्रयुक्ता मनोवाक्कायाः शस्त्रमिति ॥ वेदनाद्वारमाह—

पायच्छेयण भेयण जंघोरु तहेव अंगुवंगेसुं । जह हुंति नरा दुहिया पुढविकाए तहा जाण ॥ ९७ ॥

यथा पादादिकेष्वङ्गप्रत्यङ्गेषु छेदनभेदादिकया क्रियया नरा दुःखिताः, तथा पृथिवीकायेऽपि वेदनां जानीहि ॥ यद्यपि पादशिरोग्रीवादीन्यङ्गानि पृथिवीकायिकानां न सन्ति तथापि तच्छेदनानुरूपा वेदनाऽस्त्येवेति दर्शयितुमाह—

नत्थि य सि अंगुवंगा तयाणुरूवा य वेयणा तेसिं । केसिंचि उदीरंती केसिंचऽतिवायए पाणे ॥ ९८ ॥

पूर्वार्द्धं गतार्थं, केषाञ्चित्पृथिवीकायिकानां तदारम्भिणः पुरुषा वेदनामुदीरयन्ति, केषाञ्चित्तु प्राणानप्यतिपातयेयुरिति । तथा हि भगवत्यां दृष्टान्त उपात्तो यथा–चतुरन्तचक्रवर्त्तिनो गन्धपेषिका यौवनवर्त्तिनी बलवती आर्द्रामलक-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शस्त्रद्वारम् एवं शस्त्रस्य भेदा:, वेदना द्वारं

प्रत सूत्रांक [१३] दीप अनुक्रम [१३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रमाणं सचित्तपृथिवीगोलकमेकविंशतिकृत्वो गन्धपट्टके कठिनशिलापुत्रकेण पिंष्यात्, ततस्तेषां पृथिवीजीवानां कश्चित्सङ्घट्टितः कश्चित्परितापितः कश्चिद्व्यापादितोऽपरः किल तेन शिलापुत्रकेण न स्पृष्टोऽपीति ॥ वधद्वारमाह—

पवयंति य अणगारा ण य तेहि गुणेहि जेहिँ अणगारा । पुढविं विहिंसमाणा न हु ते वायाहि अणगारा ॥९९॥

इह ह्येके कुतीर्थिका यतिवेषमास्थाय एवं च प्रवदन्ति—वयम् 'अनगाराः' प्रव्रजिताः, न च 'तेषु गुणेषु' निरवद्यानुष्ठानरूपेषु प्रवर्त्तन्ते, येष्वनगाराः, यथा चानगारगुणेषु न प्रवर्त्तन्ते तद्दर्शयति—यतस्तेऽहर्निशं पृथिवीजन्तुविपत्तिकारिणो दृश्यन्ते गुदपाणिपादप्रक्षालनार्थम्, अन्यथापि निर्लेपनिर्गन्धत्वं कर्तुं शक्यम्, अतश्च यतिगुणकलापशून्या न वाङ्मात्रेण युक्तिनिरपेक्षेणानगारत्वं बिभ्रतीति, अनेन प्रयोगः सूचितः, तत्र गाथापूर्वार्द्धेन प्रतिज्ञा, पश्चार्द्धेन हेतुः, उत्तरगाथार्द्धेन साधर्म्यदृष्टान्तः, स चायं प्रयोगः—कुतीर्थिका यत्यभिमानवादिनोऽपि यतिगुणेषु न प्रवर्तन्ते, पृथिवीहिंसाप्रवृत्तत्वाद्, इह ये ये पृथिवीहिंसाप्रवृत्तास्ते ते यतिगुणेषु न प्रवर्त्तन्ते, गृहस्थवत् ॥ साम्प्रतं दृष्टान्तगर्भं निगमनमाह—

अणगारवाइणो पुढविहिंसगा निग्गुणा अगारिसमा । निद्दोसत्ति य मइला विरइदुगंछाइ मइलतरा ॥ १०० ॥

'अनगारवादिनो' वयं यतय इति वदनशीलाः पृथिवीकायविहिंसकास्सन्तो निर्गुणा यतोऽतः 'अगारिसमा' गृहस्थतुल्या भवन्ति, अभ्युच्चयमाह—सचेतना पृथिवीत्येवं ज्ञानरहितत्वेन तत्समारम्भवर्त्तिनः सदोषा अपि सन्तो वयं निर्दोषा इत्येवं मन्यमानाः स्वदोषप्रेक्षाविमुखत्वात् 'मलिनाः' कलुषितहृदयाः, पुनश्चातिप्रगल्भतया साधुजनाश्रिताया निरवद्यानुष्ठानात्मिकाया विरतेः 'जुगुप्सया' निन्दया मलिनतरा भवन्ति, अनया च साधुनिन्दयाऽनन्तसंसारित्वं प्रदर्शितं भव- ॥ ३३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वध द्वारं, अनगारवादी

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१३]

तीति ॥ एतच्च गाथाद्वयं सूत्रोपात्तार्थानुसार्यपि वधद्वारावसरे निर्युक्तिकृताऽभिहितं, तस्य स्वयमेवोपात्तत्वेन तद्व्याख्यानस्य न्याय्यत्वात्, तच्चेदं सूत्रम् 'लज्जमाणा पुढो पास अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणे'त्यादि ॥ अयं च वधः कृतकारितानुमतिभिर्भवतीति तदर्थमाह—

केई सयं वहंती केई अन्नेहिँ उ वहाविंती । केई अणुमन्नंती पुढविकायं वहेमाणा ॥ १०१ ॥

स्पष्टा, तद्वधे अन्येषामपि तदाश्रितानां वधो भवतीति दर्शयितुमाह—

जो पुढवि समारंभइ अन्नेऽवि य सो समारभइ काए । अनियाए अ नियाए दिस्से य तहा अदिस्से य ॥१०२॥

यः पृथ्वीकायं 'समारभते' व्यापादयति सः 'अन्यानपि' अप्कायद्वीन्द्रियादीन् 'समारभते' व्यापादयति उदुम्बरवटफलभक्षणप्रवृत्तः तत्फलान्तःप्रविष्टत्रसजन्तुभक्षणवदिति, तथा 'अणियाए य नियाइ'त्ति अकारणेन कारणेन च, यदिवाऽसङ्कल्पेन सङ्कल्पेन च पृथिवीजन्तून् समारभते तदारम्भवांश्च 'दृश्यान्' दर्दुरादीन् 'अदृश्यान्' पनकादीन् 'समारभते' व्यापादयतीत्यर्थः ॥ एतदेव स्पष्टतरमाह—

पुढविं समारभंता हणंति तन्निसिए य बहुजीवे । सुहुमे य बायरे य पज्जत्ते या अपज्जत्ते ॥ १०३ ॥

स्पष्टा, अत्र च सूक्ष्माणां वधः परिणामाशुद्धत्वात्तद्विषयनिवृत्त्यभावेन द्रष्टव्य इति ॥ विरतिद्वारमाह—

एयं वियाणिऊणं पुढवीए निक्खिवंति जे दंडं । तिविहेण सव्वकालं मणेण वायाए काएणं ॥ १०४ ॥

'एवमि'त्युक्तप्रकारानुसारेण पृथिवीजीवान् विज्ञाय तद्वधं बन्धं च विज्ञाय पृथिवीतो निक्षिपन्ति ये दण्डं-पृथिवी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

----

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१३]

दीप अनुक्रम [१३]

समारम्भाद्व्युपरमन्ति, ते ईदृक्षा अनगारा भवन्तीत्युत्तरगाथायां वक्ष्यति, 'त्रिविधेने'ति कृतकारितानुमतिभिः 'सर्वकालं' यावज्जीवमपि मनसा वाचा कायेनेति ॥ अनगारभवने उक्तशेषमाह—

गुत्ता गुत्तीहिँ सव्वाहिं समिया समिईहिँ संजया । जयमाणगा सुविहिया एरिसया हुंति अणगारा ॥ १०५ ॥

तिसृभिर्मनोवाक्कायगुप्तिभिर्गुप्ताः, तथा पञ्चभिरीर्यासमित्यादिभिस्समिताः, सम्यक्-उत्थानशयनचङ्क्रमणादिक्रियासु यताः संयताः 'यतमानाः' सर्वत्र प्रयत्नकारिणः, शोभनं विहितं—सम्यग्दर्शनाद्यनुष्ठानं येषां ते तथा, ते ईदृक्षा अनगारा भवन्ति, न तु पूर्वोक्तगुणाः पृथिवीकायसमारम्भिणः शाक्यादय इति ॥ गतो नामनिष्पन्नो निक्षेपः, अधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चार्यते, तच्चेदं सूत्रम्—

अट्टे लोए परिजुण्णे दुस्संबोहे अविजाणए अस्सिं लोए पव्वहिए तत्थ तत्थ पुढो पास आतुरा परितावेंति (सू० १४)

अस्य चायमभिसम्बन्धः—इहानन्तरसूत्रे परिज्ञातकर्मा मुनिर्भवतीत्युक्तं, यस्त्वपरिज्ञातकर्मा स भावार्त्तो भवतीति, तथाऽऽदिसूत्रेण सह सम्बन्धः—सुधर्मस्वामी जम्बूनाम्ने इदमाचष्टे—'श्रुतं मया' किं तच्छ्रुतं? पूर्वोद्देशकार्थं प्रदर्श्येदमपीति, 'अट्टे' इत्यादि, परम्परसम्बन्धस्तु 'इह एगेसिं णो सन्ना भवती'त्युक्तं, कथं पुनः संज्ञा न भवतीति, आर्त्तत्वात्, तदाह— ॥ ३४ ॥
'अट्टे'इत्यादि, आर्त्तो नामादिश्चतुर्द्धा, नामस्थापने क्षुण्णे, ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो नोआगमतो द्रव्यार्त्तः शक-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथिवीकायिकानाम् हिंसकाः

प्रत सूत्रांक [१४]

दीप अनुक्रम [१४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

टादिचक्राणामुद्धिमूले वा यो लोहमयः पट्टो दीयते स द्रव्यार्त्तः, भावार्त्तस्तु द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो ज्ञाता–आर्त्तपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तो, नोआगमतस्तु औदयिकभाववर्ती रागद्वेषग्रहपरिगृहीतान्तरात्मा प्रियविप्रयोगादिदुःखसङ्कटनिमग्नो भावार्त्त इति व्यपदिश्यते, अथवा शब्दादिविषयेषु विषविपाकसदृशेषु तदाकाङ्क्षिरवाद्धिताहितविचारशून्यमना भावार्त्तः कर्मोपचिनोति, यत उक्तम्—"सोइंदियवसट्टे णं भंते! जीवे किं बंधइ? किं चिणाइ? किं उवचिणाइ?, गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ घणियबंधणबद्धाओ पकरेइ, जाव अणादियं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरन्तसंसारकन्तारमणुपरियट्टइ" एवं स्पर्शनादिष्वप्यायोजनीयम्, एवं क्रोधमानमायालोभदर्शनमोहनीयचारित्रमोहनीयादिभिर्भावार्त्ताः संसारिणो जीवा इति, उक्तं च—"रागद्दोसकसाएहिं, इंदिएहि य पञ्चहिं। दुहा वा मोहणिज्जेण, अट्टा संसारिणो जिया ॥ १ ॥" यदिवा ज्ञानावरणीयादिना शुभाशुभेनाष्टप्रकारेण कर्म्मणाऽऽर्त्तः, कः पुनरेवंविध इत्यत्राह–लोकयतीति लोकः–एकद्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियजीवराशिरित्यर्थः, अत्र लोकशब्दस्य नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभवभावपर्यायभेदादष्टधा निक्षेपं प्रदर्श्याप्रशस्तभावोदयवर्त्तिना लोकेनेहाधिकारो वाच्यः, यस्माद्यावानार्त्तः स सर्वोऽपि परिद्यूनो नाम परिपेलवो निस्सारः औपशमिकादिप्रशस्तभावहीनोऽव्यभिचारिमोक्षसाधनहीनो वेति, स च द्विधा–द्रव्यभावभेदात्, तत्र सचित्तद्रव्यपरिद्यूनो जीर्णशरीरः स्थविरकः जीर्णवृक्षो वा, अचित्तद्रव्यपरिद्यूनो जीर्णपटादिः,

१ श्रोत्रेन्द्रियवशार्त्तो भदन्त! जीवः किं बध्नाति? किं चिनोति? किमुपचिनोति?, गौतम! अष्ट कर्मप्रकृतीः शिथिलबन्धनबद्धा गाढबन्धनबद्धाः प्रकरोति, यावदनादिकमनवनताग्रं दीर्घाध्वानं चातुरन्तसंसारकान्तारमनुपर्यटति. २ रागद्वेषकषायैरिन्द्रियैश्च पञ्चभिः। द्विधा मोहनीयेन वा आर्त्ताः संसारिणो जीवाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

----

प्रत सूत्रांक [१४]

दीप अनुक्रम [१४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ३५ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः २

भावपरिद्यून औदयिकभावोदयात्प्रशस्तज्ञानादिभावविकलः, कथं विकलः?, अनन्तगुणपरिहाण्या, तथाहि–पञ्चचतुस्त्रिद्व्येकेन्द्रियाः क्रमशो ज्ञानविकलाः, तत्र सर्वनिकृष्टज्ञानाः सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तकाः प्रथमसमयोत्पन्ना इति, उक्तं च—"सर्वनिकृष्टो जीवस्य दृष्ट उपयोग एष वीरेण। सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकानां स च भवति विज्ञेयः॥ १॥ तस्मात्प्रभृति ज्ञानविवृद्धिर्दृष्टा जिनेन जीवानाम्। लब्धिनिमित्तैः करणैः कायेन्द्रियवाङ्मनोदृग्भिः॥ २॥" स च विषयकषायार्त्तः प्रशस्तज्ञानद्यूनः किमवस्थो भवतीति दर्शयति—'दुस्संबोध' इति, दुःखेन सम्बोध्यते–धर्मचरणप्रतिपत्तिं कार्यत इति दुस्सम्बोधो, मेतार्यवदिति, यदिवा दुस्सम्बोधो यो बोधयितुमशक्यो ब्रह्मदत्तवत्, किमित्येवम्?, यतः 'अवियाणए'त्ति विशिष्टावबोधरहितः, स चैवंविधः किं विदध्यादित्याह—'अस्मिन्' पृथिवीकायलोके 'प्रव्यथिते' प्रकर्षेण व्यथिते, सर्वस्यारम्भस्य तदाश्रयत्वादिति प्रकर्षार्थः, तत्तत्प्रयोजनतया खननादिभिः पीडिते नानाविधशस्त्राद्भीते वा 'व्यथ भयचलनयो'रिति कृत्वा व्यथितं भीतमिति, 'तत्थ तत्थे'ति तेषु तेषु कृषिखननगृहकरणादिषु 'पृथग्'विभिन्नेषु कार्येषूत्पन्नेषु 'पश्ये'ति विनेयस्य लोकाकार्यप्रवृत्तिः प्रदर्श्यते, सिद्धान्तशैल्या एकादेशेऽपि प्राकृते बह्वादेशो भवतीति, 'आतुरा' विषयकषायादिभिः 'अस्मिन्' पृथिवीकाये विषयभूते सामर्थ्यात् पृथिवीकायं 'परितापयन्ति' परि–समन्तात्तापयन्ति–पीडयन्तीत्यर्थः, बहुवचननिर्देशस्तु तदारम्भिणां बहुत्वं गमयति, यदिवा–लोकशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते, कश्चिल्लोको विषयकषायादिभिरार्त्तोऽपरस्तु कायपरिजीर्णः कश्चिद्दुःखसम्बोधः[1] तथाऽपरो विशिष्टज्ञानरहितः, एते सर्वेऽप्यातुरा विषयजीर्णदेहादिभिः सुखा- ॥ ३५ ॥

१ कश्चित्तु प्र० अपरो दुःसम्बोधः नास्तीदं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

----

प्रत
सूत्रांक
[१४]

दीप
अनुक्रम
[१४]

स्रयेऽस्मिन्–पृथिवीकायलोके विषयभूते पृथिवीकायं नानाविधैरुपायैः 'परितापयन्ति' परि–समन्तात्तापयन्ति–पीडयन्तीति सूत्रार्थः ॥ १४ ॥ ननु चैकदेवताविशेषावस्थिता पृथिवीति शक्यं प्रतिपत्तुं न पुनरसंख्येयजीवसङ्घातरूपेत्येतत्परिहर्त्तुकाम आह—

संति पाणा पुढो सिया लज्जमाणा पुढो पास अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभेमाणा अणेगरूवे पाणे विहिंसइ (सू० १५)

'सन्ति' विद्यन्ते 'प्राणाः' सत्त्वाः 'पृथग्' पृथग्भावेन, अङ्गुलासंख्येयभागस्वदेहावगाहनया पृथिव्याश्रिताः सिता वा–सम्बद्धा इत्यर्थः, अनेनैतत्कथयति–नैकदेवता पृथिवी, अपि तु प्रत्येकशरीरपृथिवीकायात्मिकेति, तदेवं सचेतनत्वमनेकजीवाधिष्ठितत्वं च पृथिव्या आविष्कृतं भवतीति । एतच्च ज्ञात्वा तदारम्भनिवृत्तान् दर्शयितुमाह—'लज्जमाणा पुढो पास'त्ति, लज्जा द्विविधा–लौकिकी लोकोत्तरा च, तत्र लौकिकी स्नुषासुभटादेः श्वशुरसङ्ग्रामविषया, लोकोत्तरा सप्तदशप्रकारः संयमः, तदुक्तम्—"[१]लज्जा दया संजम बंभचेर'मित्यादि, लज्जमानाः–संयमानुष्ठानपराः, यदिवा

१ लज्जा दया संयमो ब्रह्मचर्यम्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्विकायेषु जीवस्य अस्तित्वं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१५]

दीप अनुक्रम [१५]

–पृथिवीकायसमारम्भरूपादसंयमानुष्ठानाल्लज्जमानाः 'पृथगि'ति प्रत्यक्षज्ञानिनः परोक्षज्ञानिनश्च, अतस्तान् लज्जमानान् पश्येत्यनेन शिष्यस्य कुशलानुष्ठानप्रवृत्तिविषयः प्रदर्शितो भवतीति। कुतीर्थिकास्त्वन्यथावादिनोऽन्यथाकारिण इति दर्शयितुमाह–'अणगारा' इत्यादि,नविद्यतेऽगारं–गृहमेषांमित्यनगारा–यतयः स्मो वयमित्येवं प्रकर्षेण वदन्तः प्रवदन्त इति, 'एके' शाक्यादयो ग्राह्याः, ते च वयमेव जन्तुरक्षणपराः क्षपितकषायाज्ञानतिमिरा 'इति' एवमादि प्रतिज्ञामात्रमनर्थकमारटन्ति, यथा कश्चिदत्यन्तशुचिर्वोद्रश्चतुःषष्टिमृत्तिकास्नायी गोशवस्याशुचितया परित्यागं विधाय पुनः कर्मकरवाक्याच्चर्मास्थिपिशितस्नाय्वादेर्यथास्वमुपयोगार्थं सङ्ग्रहं कारितवान्, तथा च तेन शुच्यभिमानमुद्वहताऽपि किं तस्य परित्यक्तम्!, एवमेतेऽपि शाक्यादयोऽनगारवादमुद्वहन्ति,न चानगारगुणेषु मनागपि प्रवर्त्तन्ते, न च गृहस्थचर्यां मनागप्यतिलङ्घयन्तीति दर्शयति– 'यद्' यस्माद् 'इम'मिति सर्वजनप्रत्यक्षं पृथिवीकायं 'विरूपरूपैः' नानाप्रकारैः 'शस्त्रैः' हलकुद्दालखनित्रादिभिः पृथिव्याश्रयं कर्म्म–क्रियां समारभमाणा विहिंसन्ति, तथाऽनेन च पृथिवीकर्मसमारम्भेण पृथिवीशस्त्रं 'समारभमाणो' व्यापारयन् पृथिवीकायं नानाविधैः शस्त्रैर्व्यापादयन् 'अनेकरूपान्' तदाश्रितानुदकवनस्पत्यादीन् विविधं हिनस्ति, नानाविधैरुपायैर्व्यापादयतीत्यर्थः, एवं शाक्यादीनां पार्थिवजन्तुवैरिणामयतित्वं प्रतिपाद्य साम्प्रतं सुखाभिलाषितया कृतकारितानुमतिभिर्मनोवाक्कायलक्षणां प्रवृत्तिं दर्शयितुमाह—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूय-

१ येषां ते प्र० २ सम्प्रति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्विकायजीवस्य हिंसाया: हेतु:

प्रत सूत्रांक [१५]

दीप अनुक्रम [१६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

णाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव पुढविसत्थं समारंभइ अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारंभावेइ अण्णे वा पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणइ (सू० १५)

तत्र पृथिवीकायसमारम्भे खलुशब्दो वाक्यालङ्कारे 'भगवता' श्रीवर्द्धमानस्वामिना परिज्ञानं परिज्ञा सा प्रवेदितेति, इदमुक्तं भवति–भगवतेदमाख्यातं–यथैभिर्वक्ष्यमाणैः कारणैः कृतकारितानुमतिभिः सुखैषिणः पृथिवीकायं समारभन्ते, तानि चामूनि–अस्यैव जीवितस्य परिपेलवस्य परिवन्दनमाननपूजनार्थं, तथा जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातहेतुं च स सुखलिप्सुर्दुःखद्विट् स्वयमात्मनैव पृथिवीशस्त्रं समारभते, तथाऽन्यैश्च पृथिवीशस्त्रं समारम्भयति, पृथिवीशस्त्रं समारभमाणानन्यांश्च स एव समनुजानीते, एवमतीतानागताभ्यां मनोवाक्कायकर्मभिरायोजनीयम् । तदेवं प्रवृत्तमतेर्यद्भवति तद्दर्शयितुमाह—

तं से अहिआए तं से अबोहीए से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोच्चा खलु भगवओ अणगाराणं इहमेगेसिं णातं भवति-एस खलु गंथे एस खलु मोहे एस खलु मारे एस खलु णरए इच्चत्थं गड्ढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेण पुढविसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ, से बेमि अप्पेगे

आ. सू. ७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र "तत्थ खलु भगवया०" सूत्रस्य क्रम-१५ मूल सम्पादकेन द्वी-वारान् लिखितम् ,तत् मुद्रणदोष: दृश्यते
पृथ्विकायस्य हिंसाया:फलं,

प्रत सूत्रांक [१६]

दीप अनुक्रम [१७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ ३७ ॥

अंधमब्भे अप्पेगे अंधमच्छे अप्पेगे पायमब्भे अप्पेगे पायमच्छे अप्पेगे गुप्फमब्भे अप्पेगे गुप्फमच्छे अप्पेगे जंघमब्भे २ अप्पेगे जाणुमब्भे २ अप्पेगे ऊरुमब्भे २ अप्पेगे कडिमब्भे २ अप्पेगे णाभिमब्भे २ अप्पेगे उदरमब्भे २ अप्पेगे पासमब्भे २ अप्पेगे पिट्ठिमब्भे २ अप्पेगे उरमब्भे २ अप्पेगे हिययमब्भे २ अप्पेगे थणमब्भे २ अप्पेगे खंधमब्भे २ अप्पेगे बाहुमब्भे २ अप्पेगे हत्थमब्भे २ अप्पेगे अंगुलिमब्भे २ अप्पेगे णहमब्भे २ अप्पेगे गीवमब्भे २ अप्पेगे हणुमब्भे २ अप्पेगे होट्ठमब्भे २ अप्पेगे दंतमब्भे २ अप्पेगे जिब्भमब्भे २ अप्पेगे तालुमब्भे २ अप्पेगे गलमब्भे २ अप्पेगे गंडमब्भे २ अप्पेगे कण्णमब्भे २ अप्पेगे णासमब्भे २ अप्पेगे अच्छिमब्भे २ अप्पेगे भमुहमब्भे २ अप्पेगे णिडालमब्भे २ अप्पेगे सीसमब्भे २ अप्पेगे संपमारए मा अप्पेगे उद्दवए, इत्थं सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाता भवंति (सू० १६)

अध्ययनं १ उद्देशकः २

॥ ३७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्विकायस्य हिंसकानाम् वेदानाया: अज्ञानं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१६]

दीप अनुक्रम [१७]

'तं से अहियाए तं से अबोहीए' तत् पृथिवीकायसमारम्भणं 'से' तस्य कृतकारितानुमतिभिः पृथ्वीशस्त्रं समारभमाणस्यागामिनि काले अहिताय भवति, तदेव चाबोधिलाभायेति, न हि प्राणिगणोपमर्दनप्रवृत्तानामणीयसाऽपि हितेनाऽऽयत्यां योगो भवतीत्युक्तं भवति, यः पुनर्भगवतः सकाशात्तच्छिष्यानगारेभ्यो वा विज्ञाय पृथ्वीसमारम्भं पापात्मकं भावयति स एवं मन्यत इत्याह–'से त'मित्यादि, 'सः' ज्ञातपृथिवीजीवत्वेन विदितपरमार्थः 'तं' पृथ्वीशस्त्रसमारम्भमहितं सम्यगवबुध्यमानः 'आदानीयं' ग्राह्यं सम्यग्दर्शनादि सम्यगुत्थाय–अभ्युपगम्य, केन प्रत्ययेनेति दर्शयति–'श्रुत्वा' अवगम्य साक्षाद्भगवतोऽनगाराणां वा समीपे, ततः 'इह' मनुष्यजन्मनि 'एकेषां' प्रतिबुद्धतत्त्वानां साधूनां ज्ञातं भवतीति, यत् ज्ञातं भवति तद्दर्शयितुमाह—'एसे'त्यादि, एष पृथ्वीशस्त्रसमारम्भः खलुरवधारणे कारणे कार्योपचारं कृत्वा 'नड्वलोदकं पादरोग' इति न्यायेनैष एव ग्रन्थः–अष्टप्रकारकर्मबन्धः, तथैष एव पृथ्वीसमारम्भो मोहहेतुत्वान्मोहः–कर्मबन्धविशेषो दर्शनचारित्रभेदोऽष्टाविंशतिविधः, तथैष एव मरणहेतुत्वान्मारः–आयुष्ककर्मक्षयलक्षणः, तथैष एव नरकहेतुत्वान्नरकः–सीमन्तकादिर्भूभागः, अनेन चासातावेदनीयमुपात्तं भवति, कथं पुनरेकप्राणिव्यापादनप्रवृत्तावष्टविधकर्मबन्धं करोतीति, उच्यते, मार्यमाणजन्तुज्ञानावरोधित्वात् ज्ञानावरणीयं बध्नात्येवमन्यत्राप्यायोजनीयमिति, अन्यदपि तेषां ज्ञातं भवतीति दर्शयितुमाह—'इच्चत्थमित्यादि, 'इत्येवमर्थम्' आहारभूषणोपकरणार्थं तथा परिवन्दनमाननपूजनार्थं दुःखप्रतिघातहेतुं च 'गृद्धो' मूर्छितो 'लोकः' प्राणिगणः, एवंविधेऽप्यतिदुरितनिचयविपाकफले पृथ्वीकायसमारम्भे अज्ञानवशान्मूर्च्छितस्त्वेतद्विधत्त इति दर्शयति–'यद्' यस्माद् 'इमं' पृथ्वीकायं विरूपरूपैः शस्त्रैः पृथ्वी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

----

प्रत सूत्रांक [१६]

दीप अनुक्रम [१७]

कर्म समारभमाणो हिनस्ति, पृथिवीकायसमारम्भेण च पृथिव्येव शस्त्रं स्वकायादेः पृथिव्या वा शस्त्रं हलकुद्दालादि तत्समारभते, पृथिवीशस्त्रं समारभमाणश्चान्याननेकरूपान् 'प्राणिनो' द्वीन्द्रियादीन्विविधं हिनस्तीति । स्यादारेका, ये हि न पश्यन्ति न शृण्वन्ति न जिघ्रन्ति न गच्छन्ति कथं पुनस्ते वेदनामनुभवन्तीति श्रद्धीतव्यम् ?, अमुष्यार्थस्य प्रसिद्धये दृष्टान्तमाह—'से बेमी' त्यादि, सोऽहं पृष्टो भवता पृथिवीकायवेदनां ब्रवीमि, अथवा 'से' इति तच्छब्दार्थे वर्त्तते, यत्त्वया पृष्टस्तदहं ब्रवीमि, अपिशब्दो यथानामशब्दार्थे, यथा नाम कश्चिज्जात्यन्धो बधिरो मूकः कुष्ठी पङ्गुः अनभिनिर्वृत्तपाण्याद्यवयवविभागो मृगापुत्रवत् पूर्वकृताशुभकर्मोदयाद्धिताहितप्राप्तिपरिहारविमुखोऽतिकरुणां दशां प्राप्तः, तमेवंविधमन्धादिगुणोपेतं कश्चित्कुन्ताग्रेण 'अब्भे' इति आभिन्द्यात् तथाऽपरः कश्चिदन्धमाच्छिन्द्यात्, स च भिद्यमानाद्यवस्थायां न पश्यति न शृणोति मूकत्वान्नोच्चै रारटीति, किमेतावता तस्य वेदनाऽभावो जीवाभावो वा शक्यो विज्ञातुम् ?, एवं पृथिवीजीवा अप्यव्यक्तचेतना जात्यन्धबधिरमूकपङ्ग्वादिगुणोपेतपुरुषवदिति, यथा वा पञ्चेन्द्रियाणां परिस्पष्टचेतनानां 'अप्पेगे पायमब्भे' इति यथा नाम कश्चित्पादमाभिन्द्यादाच्छिन्द्याद्वेत्येवं गुल्फादिष्वप्यायोजनीयमिति दर्शयति, एवं जङ्घाजानूरुकटीनाभ्युदरपार्श्वपृष्ठउरोहृदयस्तनस्कन्धबाहुहस्ताङ्गुलिनखग्रीवाहनुकौष्ठदन्तजिह्वाताल्लुगलगण्डकर्णनासिकाक्षिभ्रूललाटशिरःप्रभृतिष्ववयवेषु भिद्यमानेषु छिद्यमानेषु वा वेदनोत्पत्तिर्लक्ष्यते, एवमेषामुत्कटमोहाज्ञानभाजां स्त्यानर्द्ध्याद्युदयादव्यक्तचेतनानामव्यक्तैव वेदना भवतीति ग्राह्यम् । अत्रैव दृष्टान्तान्तरं दर्शयितुमाह—'अप्पेगे ॥ ३८ ॥

१ कायं प्र.

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

----

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१६]

दीप अनुक्रम [१७]

संपमारए अप्पेगे उद्दवए' यथा नाम कश्चित् 'सम्' एकीभावेन प्रकर्षेण प्राणानां मारणम्–अव्यक्तत्वापादनं कस्यचित् कुर्यात्, मूर्च्छामापादयेदित्यर्थः, तथाऽवस्थं च यथा नाम कश्चिदपद्रापयेत् प्राणेभ्यो व्यपरोपयेत् न चासौ तां वेदनां स्फुटमनुभवति, अस्ति चाव्यक्ता तस्यासौ वेदनेति[1], एवं पृथिवीजीवानामपि द्रष्टव्यमिति । पृथिवीकायिकानां जीवत्वं प्रसाध्य तथा नानाविधशस्त्रसंपाते वेदनां चाविर्भाव्य अधुना तद्वधे बन्धं दर्शयितुमाह[2]—

एत्थ सत्थं असमारभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाता भवंति, तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं पुढविसत्थं समारंभेज्जा णेवण्णेहिं पुढविसत्थं समारंभावेज्जा णेवण्णे पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा, जस्सेते पुढविकम्मसमारंभा परिण्णाता भवंति से हु मुणी परिण्णातकम्मेत्ति बेमि (सू० १७) इति द्वितीय उद्देशकः ॥

'अत्र' पृथिवीकाये 'शस्त्रं' द्रव्यभावभिन्नं, तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वकायपरकायोभयरूपं, भावशस्त्रं त्वसंयमो दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायलक्षणः, एतद्विविधमपि शस्त्रं समारभमाणस्येति 'एते' खननकृष्याद्यात्मकाः समारम्भाः बन्धहेतुत्वेन 'अपरिज्ञाता' अविदिता भवन्ति[3], एतद्विपरीतस्य परिज्ञाता भवन्तीति दर्शयितुमाह—'एत्थे' त्यादि, 'अत्र' पृथिवीकाये द्विविधमपि शस्त्रम् 'असमारभमाणस्य' अव्यापारयत इति, 'एते' प्रागुक्ताः कर्मसमारम्भाः 'परिज्ञाता' विदिता भ-

१ चेतनेति. २ प्रतिपादयन्. ३ ०तीति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्विकायानाम् ज्ञाता ही मुनि:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [१८]

वन्ति, अनेन च विरत्यधिकारः प्रतिपादितो भवतीति, तामेव विरतिं स्वनामग्राहमाह—'त'मित्यादि, तं पृथिवीकायसमारम्भे बन्धं परिज्ञाय असमारम्भे वाऽबन्धमिति 'मेधावी' कुशलः एतत् कुर्यादिति दर्शयति-नैव पृथिवीशस्त्रं द्रव्यभावभिन्नं समारभेत, नापि तद्विषयोऽन्यैः समारम्भः कारयितव्यः, न चान्यान् पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानीयात् इति, एवं मनोवाक्कायकर्म्मभिरतीतानागतकालयोरप्यायोजनीयमिति, ततश्चैवं कृतनिवृत्तिरसौ मुनिरिति व्यपदिश्यते, न शेष इति दर्शयन्नुपसञ्जिहीर्षुराह–'यस्य' विदितपृथिवीजीववेदनास्वरूपस्य, 'एते' पृथिवीविषयाः कर्म्मसमारम्भाः खननकृष्याद्यात्मकाः कर्मबन्धहेतुत्वेन परिज्ञाता भवन्ति ज्ञपरिज्ञया तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति, हुरवधारणे, स एव मुनिर्द्विविधयाऽपि परिज्ञया परिज्ञातं कर्म–सावद्यानुष्ठानमष्टप्रकारं वा कर्म येन स परिज्ञातकर्मा, नापरः शाक्यादिः, ब्रवीमि पूर्ववदिति शस्त्रपरिज्ञायां द्वितीय उद्देशकः समाप्तः ॥

गतः पृथिव्युद्देशकः, साम्प्रतमप्कायोद्देशकः समारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–इहानन्तरोद्देशके पृथिवीकायजीवाः प्रतिपादितास्तद्वधे बन्धो विरतिश्च, साम्प्रतं क्रमायातस्याप्कायस्य जीवत्वं तद्वधे बन्धो विरतिश्च प्रतिपाद्यते इति, अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्योद्देशकस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि वाच्यानि, तत्र नामनिष्पन्ने निक्षेपे अप्कायोद्देशकः, तत्र पृथिवीकायजीवस्वरूपसमधिगतये यानि नव निक्षेपादीनि द्वाराण्युक्तानि, अप्कायेऽपि तान्येव समानतयाऽतिदेष्टुकामः कानिचिद्विशेषाभिधित्सयोद्धर्तुकामश्च निर्युक्तिकारो गाथामाह—

आउस्सवि दाराइं ताइं जाइं हवंति पुढवीए। नाणत्ती उ विहाणे परिमाणुवभोगसत्थे य ॥ १०६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययने तृतीयः उद्देशकः 'अप्काय' आरब्धः,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [१८]

अपूकायस्यापि तान्येव द्वाराणि भवन्ति यानि पृथिव्याः प्रतिपादितानीति, 'नानात्वं' भेदरूपं विधानपरिमाणोपभोगशस्त्रविषत्यं द्रष्टव्यं, चशब्दाल्लक्षणविषयं च, तुशब्दोऽवधारणार्थः, एतद्गतमेव नानात्वं नान्यगतमिति ॥ तत्र विधानं-प्ररूपणा, तद्गतं नानात्वं प्रदर्शयितुमाह—

दुविहा उ आउजीवा सुहुमा तह बायरा य लोगंमि । सुहुमा य सव्वलोए पंचेव य बायरविहाणा ॥ १०७ ॥

स्पष्टा ॥ तत्र पञ्च बादरविधानानि दर्शयितुमाह—

सुद्धोदए य उस्सा हिमे य महिया य हरतणू चेव । बायर आउविहाणा पंचविहा वण्णिया एए ॥ १०८ ॥

'शुद्धोदकं' तडागसमुद्रनदीहृदावटादिगतमवश्यायादिरहितमिति, 'अवश्यायो' रजन्यां यस्नेहः पतति, हिमं तु शिशिरसमये शीतपुद्गलसम्पर्काज्जलमेव कठिनीभूतमिति, गर्भमासादिषु सायं प्रातर्वा धूमिकापातो महिकेत्युच्यते, वर्षाशरत्कालयोर्हरिताङ्कुरमस्तकस्थितो जलबिन्दुर्भूमिस्नेहसम्पर्कोद्भूतो हरतनुशब्देनाभिधीयते, एवमेते पञ्च बादराप्कायविधयो व्यावर्णिताः । ननु च प्रज्ञापनायां बादराप्कायभेदा बहवः परिपठिताः, तद्यथा—करकशीतोष्णक्षारक्षत्रकटुम्ललवणवरुणकालोदपुष्करक्षीरघृतेक्षुरसादयः, कथं पुनस्तेषामत्र सङ्ग्रहः ?, उच्यते, करकस्तावत्कठिनत्वाद्धिमान्तःपाती, शेषास्तु स्पर्शरसस्थानवर्णमात्रभिन्नत्वान्न शुद्धोदकमतिवर्त्तन्ते, यद्येवं प्रज्ञापनायां किमर्थोऽपरभेदानां पाठः ?, उच्यते, स्त्रीबालमन्दबुद्ध्यादिप्रतिपत्त्यर्थमिति, इहापि कस्मान्न तदर्थं पाठः ?, उच्यते, प्रज्ञापनाध्ययनमुपाङ्गत्वादार्षं, तत्र युक्तः सकलभेदोपन्यासः स्त्र्याद्यनुग्रहाय, निर्युक्तयस्तु सूत्रार्थं पिण्डीकुर्वन्त्यः प्रवर्तन्त इत्यदोषः । त एते बादराप्कायाः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [१८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ४० ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः ३

समासतो द्वेधाः– पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, तत्रापर्याप्तका वर्णादीनसम्प्राप्ताः, पर्याप्तकास्तु वर्णगन्धरसस्पर्शादेशैः सहस्राग्रशो भिद्यन्ते, ततश्च सङ्ख्येयानि योनिप्रमुखानि शतसहस्राणि भवन्ति भेदानामित्यवगन्तव्यं, संवृतयोनयश्चैते, सा च योनिः सचित्ताचित्तमिश्रभेदात् त्रिधा, पुनश्च शीतोष्णोभयभेदात्रिविधैव, एवं गण्यमानाः योनीनां सप्त लक्षा भवन्तीति ॥ प्ररूपणानन्तरं परिमाणद्वारमाह—

जे बायरपज्जत्ता पयरस्स असंखभागमित्ता ते । सेसा तिन्निवि रासी वीसुं लोगा असंखिज्जा ॥ १०९ ॥

ये बादराप्कायपर्याप्तकास्ते संवर्त्तितलोकप्रतरासङ्ख्येयभागप्रदेशराशिपरिमाणाः, शेषास्तु त्रयोऽपि राशयो 'विष्वक्' पृथगसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिपरिमाणा इति, विशेषश्चायम्–बादरपृथिवीकायपर्याप्तकेभ्यो बादराप्कायपर्याप्तका असङ्ख्येयगुणाः बादरपृथ्वीकायापर्याप्तकेभ्यो बादराप्कायिकापर्याप्तका असंख्येयगुणाः सूक्ष्मपृथिवीकायापर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्माप्कायापर्याप्तका विशेषाधिकाः सूक्ष्मपृथ्वीकायपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्माप्कायपर्याप्ता विशेषाधिकाः ॥ साम्प्रतं परिमाणद्वारानन्तरं चशब्दसूचितं लक्षणद्वारमाह—

जह हत्थिस्स सरीरं कललावत्थस्स अहुणोववन्नस्स । होइ उदगंडगस्स य एसुवमा सव्वजीवाणं ॥ ११० ॥

अथवा पर आक्षिपति-नाप्कायो जीवः, तल्लक्षणायोगात् प्रश्रवणादिवदित्यस्य हेतोरसिद्धतोद्भावनार्थं दृष्टान्तद्वारेण लक्षणमाह–जहेत्यादि, यथा हस्तिनः शरीरं कललावस्थायामधुनोत्पन्नस्य द्रवं चेतनं च दृष्टम्, एवमप्कायोऽपीति, ॥ ४० ॥
यथा वा उदकप्रधानमण्डकमुदकाण्डकमधुनोत्पन्नमित्यर्थः, तन्मध्यव्यवस्थितं रसमात्रमसञ्जातावयवमनभिव्यक्तचञ्चा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [१८]

दिग्रविभागं चेतनावद् दृष्टम्, एषा एवोपमा अप्कायजीवानामपीति, हस्तिशरीरकललग्रहणं च महाकायत्वात्तद्धि भवतीत्यतः सुखेन प्रतिपद्यते, अधुनोपपन्नग्रहणं सप्ताहपरिग्रहार्थं, यतः सप्ताहमेव कललं भवति, परतस्त्वर्बुदादि, अण्डकेऽप्युदकग्रहणमेवमर्थमेव, प्रयोगश्चायम्–सचेतना आपः, शस्त्रानुपहतत्वे सति द्रवत्वात्, हस्तिशरीरोपादानभूतकललवत्, विशेषणोपादानात्प्रश्रवणादिव्युदासः, तथा सात्मकं तोयम्, अनुपहतद्रवत्वाद्, अण्डकमध्यस्थितकललवदिति, तथा आपो जीवशरीराणि, छेद्यत्वाद्भेद्यत्वादुत्क्षेप्यत्वाद्भोज्यत्वाद्भोग्यत्वात् घ्रेयत्वाद्रसनीयत्वात् स्पर्शनीयत्वात् दृश्यत्वाद् द्रव्यत्वाद् एवं सर्वेऽपि शरीरधर्मा हेतुत्वेनोपन्यसनीयाः, गगनवर्जभूतधर्माश्च रूपवत्त्वाकारवत्त्वादयः, सर्व्वत्र चायं दृष्टान्तः–सास्नाविषाणादिसङ्घातवदिति, ननु च रूपवत्त्वाकारवत्त्वादयो भूतधर्माः परमाणुष्वपि दृष्टा इत्यनैकान्तिकता, नैतदेवं, यदत्र छेद्यत्वादिहेतुत्वेनोपन्यस्तं तत्सर्वमिन्द्रियव्यवहारानुपाति, न च तथा परमाणवः, अतः प्रकरणादतीन्द्रियपरमाणुव्यवच्छेदः, यदिवा नैवासौ विपक्षः, सर्वस्य पुद्गलद्रव्यस्य द्रव्यशरीराभ्युपगमात्, जीवसहितासहितत्वं तु विशेषः, उक्तं च—"तणवोऽणब्भातिविगार मुत्तजाइत्तओऽणिलंता उ । सत्थासत्थहयाओ निज्जीवसजीवरूवाओ ॥ १ ॥" एवं शरीरत्वे सिद्धे सति प्रमाणं–सचेतना हिमादयः, क्वचित् अप्कायत्वाद्, इतरोदकवत् इति, तथा सचेतना आपः, क्वचित् खातभूमिस्वाभाविकसम्भवत्वाद्, दर्दुरवत्, अथवा सचेतना अन्तरिक्षोद्भवा

१ तनवोऽण्वभ्रादिविकारा मूर्त्तजातित्वतः अनिलान्तास्तु । शस्त्राशस्त्रहता निर्जीवसजीवरूपाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१७]

दीप अनुक्रम [१८]

आपः, स्वाभाविकव्योमसम्भूतसम्पातित्वात्, मत्स्यवत्, अत एते एवंविधलक्षणभाक्त्वाज्जीवा भवन्त्यप्कायाः ॥ साम्प्रतमुपभोगद्वारमाह—

ण्हाणे पिअणे तह धोअणे य भत्तकरणे अ सेए अ। आउस्स उ परिभोगो गमणागमणे य जीवाणं ॥ १११ ॥

स्नानपानधावनभक्तकरणसेकयानपात्रोडुपगमनागमनादिरुपभोगः ॥ ततश्च तत्परिभोगाभिलाषिणो जीवा एतानि कारणान्युद्दिश्याप्कायवधे प्रवर्त्तन्त इति प्रदर्शयितुमाह—

एएहिं कारणेहिं हिंसंती आउकाइए जीवे। सायं गवेसमाणा परस्स दुक्खं उदीरंति ॥ ११२ ॥

'एभिः' स्नानावगाहनादिकैः कारणैरुपस्थितैः विषयविषमोहितात्मानो निष्करुणा अप्कायिकान् जीवान् 'हिंसन्ति' व्यापादयन्ति, किमर्थमित्याह—'सातं' सुखं तदात्मनः 'अन्वेषयन्तः' प्रार्थयन्तः हिताहितविचारशून्यमनसः कतिपयदिवसस्थायिरम्ययौवनदर्पाध्मातचेतसः सन्तः सद्विवेकरहिताः तथा विवेकिजनसंसर्गविकलाः 'परस्य' अबादेर्जन्तुगणस्य 'दुःखम्' असातलक्षणं तद् 'उदीरयन्ति' असातवेदनीयमुत्पादयन्तीत्यर्थः, उक्तं च—"एकं हि चक्षुरमलं सहजो विवेकस्तद्वद्भिरेव सह संवसतिर्द्वितीयम्। एतद्द्वयं भुवि न यस्य स तत्त्वतोऽन्धस्तस्यापमार्गचलने खलु कोऽपराधः? ॥ १ ॥ इदानीं शस्त्रद्वारमुच्यते—

उस्सिंचणगालणधोवणे य उवगरणमत्तभंडे य। बायरआउक्काए एयं तु समासओ सत्थं ॥ ११३ ॥

शस्त्रं द्रव्यभावभेदात् द्विधा–द्रव्यशस्त्रमपि समासविभागभेदात् द्विधैव, तत्र समासतो द्रव्यशस्त्रमिदम्-ऊर्ध्वं सेच- ॥ ४१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[१७]

दीप
अनुक्रम
[१८]

नमुत्सेचनं—कूपादेः कोशादिनोत्क्षेपणमित्यर्थः, 'गालनं' घनमसृणवस्त्राद्धन्तेन 'धावनं' वस्त्राद्युपकरणचर्मकोशकटाहादिभण्डकविषयम्, एवमादिकं बादराप्काये 'एतत्' पूर्वोक्तं 'समासतः' सामान्येन शस्त्रं, तुशब्दो विभागापेक्षया विशेषणार्थः ॥ विभागतस्त्विदम्—

किंची सकाय सत्थं किंची परकाय तदुभयं किंचि । एयं तु दव्वसत्थं भावे य असंजमो सत्थं ॥ ११४ ॥

किञ्चित् स्वकायशस्त्रं नादेयं तडागस्य, किञ्चित्परकायशस्त्रं मृत्तिकास्नेहक्षारादि, किञ्चिचोभयं उदकमिश्रा मृत्तिकोदकस्येति, भावशस्त्रमसंयमः प्रमत्तस्य दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायलक्षण इति ॥ शेषद्वाराणि पृथिवीकायवन्नेतव्यानि इति दर्शयितुमाह—

सेसाइं दाराइं ताइं जाइं हवंति पुढवीए । एवं आउद्देसे निज्जुत्ती कित्तिया एसा (होइ) ॥ ११५ ॥

'शेषाणी' त्युक्तशेषाणि निक्षेपवेदनावधनिवृत्तिरूपाणि, तान्येवात्रापि द्रष्टव्यानि यानि पृथिव्यां भवन्तीति, 'एवम्' उक्तप्रकारेणाप्कायोद्देशके 'निर्युक्तिः' निश्चयेनार्थघटना 'कीर्तिता' प्रदर्शिता भवतीति ॥ साम्प्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं, तच्चेदम्—

से बेमि जहा अणगारे उज्जुकडे नियाय[1]पडिवण्णे अमायं कुव्वमाणे वियाहिए (सू० १८)

१ निकायं पडिवन्ने इति पा.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनगार स्वरुप

प्रत सूत्रांक [१८]

दीप अनुक्रम [१९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

'से बेमी'त्यादि अस्य चायमभिसम्बन्धः–इहानन्तरोद्देशके परिसमाप्तिसूत्रे 'पृथिवीकायसमारम्भव्यावृत्तो मुनि'रित्युक्तं, न चैतावता सम्पूर्णो मुनिर्भवति, यथा च भवति तथा दर्शयति, तथाऽऽदिसूत्रेणायं सम्बन्धः–सुधर्मस्वामी इदमाह–श्रुतं मया भगवदन्तिके यत् प्राक् प्रतिपादितमन्यच्चेदमित्येवं परम्परसूत्रसम्बन्धोऽपि प्राग्वद्वाच्यः। सेशब्दस्तच्छब्दार्थो, स यथा पृथिवीकायसमारम्भव्यावृत्त्युत्तरकालं सम्पूर्णानगारव्यपदेशभाग् भवति तदहं ब्रवीमि, अपिः समुच्चये, स यथा वाऽनगारो न भवति तथा च ब्रवीमि 'अणगारा मो त्ति एगे पयवमाणे'त्यादिनेति, न विद्यते अगारं–गृहमस्येत्यनगारः, इह च यत्यादिशब्दव्युदासेनानगारशब्दोपादानेनैतदाचष्टे–गृहपरित्यागः प्रधानं मुनित्वकारणं, तदाश्रयत्वात्सावद्यानुष्ठानस्य, निरवद्यानुष्ठायी च मुनिरिति दर्शयति–'उज्जुकडे'त्ति ऋजुः-अकुटिलः संयमो दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायनिरोधः सर्वसत्त्वसंरक्षणप्रवृत्तत्वाद्यैकरूपः, सर्वत्राकुटिलगतिरितियावत्, यदिवा मोक्षस्थानगमनर्जुश्रेणिप्रतिपत्तिः सर्वसंवरसंयमात्, कारणे कार्योपचारं कृत्वा संयम एव सप्तदशप्रकार ऋजुः तं करोतीति ऋजुकृत्, ऋजुकारीत्यर्थः । अनेन चेदमुक्तं भवति–अशेषसंयमानुष्ठायी सम्पूर्णोऽनगारः, एवंविधश्चेदृग् भवतीति दर्शयति—'नियागपडिवन्ने'त्ति, यजनं यागः नियतो निश्चितो वा यागो नियागो-मोक्षमार्गः, सङ्गतार्थत्वाद्धातोः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रात्मतया गतं सङ्गतमिति, तं नियागं–सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं मोक्षमार्गं प्रतिपन्नो नियागप्रतिपन्नः, पाठान्तरं वा 'निकायप्रतिपन्नो' निर्गतः कायः–औदारिकादिर्यस्माद्यस्मिन्वा सति स निकायो–मोक्षस्तं प्रतिपन्नो निकायप्रतिपन्नः, तत्कारणस्य सम्यग्दर्शनादेः स्वशक्त्याऽनुष्ठानात्, स्वशक्त्याऽनुष्ठानं चामायाविनो भवतीति दर्शयति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८]

दीप अनुक्रम [१९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

—'अमायं कुव्वमाणे'त्ति माया-सर्वत्र स्ववीर्यनिगूहनं, न माया अमाया तां कुर्वाणः, अनिगूहितबलवीर्यः संयमानुष्ठाने पराक्रममाणोऽनगारो व्याख्यात इति, अनेन च तज्जातीयोपादानादशेषकषायापगमोऽपि द्रष्टव्य इति, उक्तं च —"सोही यं उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ"त्ति ॥ तदेवमसावुद्धृतसकलमायावल्लीवितानः किं कुर्यादित्याह—

जाए सद्धाए निक्खंतो तमेव अणुपालिज्जा, वियहित्ता विसोत्तियं (सूत्र० १९)

'यया श्रद्धया' प्रवर्द्धमानसंयमस्थानकण्डकरूपया 'निष्क्रान्तः' प्रव्रज्यां गृहीतवान् 'तामेव' श्रद्धामश्रान्तो यावज्जीवम् 'अनुपालयेद्' रक्षेदित्यर्थः, प्रव्रज्याकाले च प्रायशः प्रवृद्धपरिणाम एव प्रव्रजति, पश्चात्तु संयमश्रेणीं प्रतिपन्नो वर्द्धमानपरिणामो वा हीयमानपरिणामो वा अवस्थितपरिणामो वेति, तत्र वृद्धिकालो हानिकालो वा समयाद्युत्कर्षेणान्तर्मौहूर्त्तिकः, नातः परं सङ्क्लेशविशुद्ध्यद्धे भवतः, उक्तं च—"नान्तर्मुहूर्त्तकालमतिवृत्य शक्यं हि जगति सङ्क्लेष्टुम् । नापि विशोद्धुं शक्यं प्रत्यक्षो ह्यात्मनः सोऽर्थः ॥ १ ॥ उपयोगद्वयपरिवृत्तिः सा निर्हेतुका स्वभावत्वात् । आत्मप्रत्यक्षो हि स्वभावो व्यर्थाऽत्र हेतूक्तिः ॥ २ ॥" अवस्थितकालश्च द्वयोर्वृद्धिहानिलक्षणयोर्यवमध्यवज्रमध्ययोरष्टौ समयाः, तत ऊर्द्ध्वमवश्यं पातात्, अयं च वृद्धिहान्यवस्थितरूपः परिणामः केवलिनां निश्चयेन गम्यो न छद्मस्थानामिति । यद्यपि च प्रव्रज्याभिगमोत्तरकालं श्रुतसागरमवगाहमानः संवेगवैराग्यभावनाभावितान्तरात्मा कश्चित्प्रवर्द्धमानमेव परिणामं

१ शोधिश्चर्जुभूतस्य धर्मः शुद्धस्य तिष्ठति. २ पुव्वसंजोयं इति पा.

आ. सू. ८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयम-श्रद्धा वृद्धिकरणे उपदेश:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१९]

दीप अनुक्रम [२०]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ४३ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः ३

भजते, तथा चोक्तम्—"जह जह सुयमवगाहइ अइसयरसपसरसंजुयमउव्वं । तह तह पल्हाइ मुणी नवनवसंवेगसद्धाए ॥ १ ॥" तथापि स्तोक एव तादृक् बहवश्च परिपतन्ति अतोऽभिधीयते 'तामेवानुपालयेदि'ति, कथं पुनः कृत्वा श्रद्धामनुपालयेदित्याह—'विजहे'त्यादि, 'विहाय' परित्यज्य 'विस्रोतसिकां'शङ्कां, सा च द्विधा-सर्वशङ्का देशशङ्का च, तत्र सर्वशङ्का किमस्ति आर्हतो मार्गो नवेति, देशशङ्का तु किं विद्यन्ते अप्कायादयो जीवाः ?, विशेष्य प्रवचनेऽभिहितत्वात् स्पष्टचेतनात्मलिङ्गाभावान्न विद्यन्ते इति वा, इत्येवमादिकामारेकां विहाय सम्पूर्णाननगारगुणान् पालयेत्, यदिवा विस्रोतांसि द्रव्यभावभेदात् द्विधा–तत्र द्रव्यविस्रोतांसि नद्यादिस्रोतसां प्रतीपगमनानि, भावविस्रोतांसि तु मोक्षं प्रति सम्यग्दर्शनादिस्रोतसा प्रस्थितानां विरूपाणि, प्रतिकूलानि गमनानि भावविस्रोतांसि, तानि विहाय सम्पूर्णानगारगुणभाग् भवति, श्रद्धां वाऽनुपालयेदिति, पाठान्तरं वा 'विजहित्ता पुव्वसंजोगं' पूर्वसंयोगः-मातापित्रादिभिः, अस्य चोपलक्षणार्थत्वात्पश्चात्संयोगोऽपि श्वशुरादिकृतो ग्राह्यस्तं 'विहाय' त्यक्त्वा 'श्रद्धामनुपालयेदि'ति मीलनीयं ॥ तत्र यस्यायमुपदेशो दीयते यथा 'विहाय विस्रोतांसि तदनु श्रद्धानुपालनं कार्यं' स एवाभिधीयते–न केवलं भवानेवापूर्वमिदमनुष्ठानमेवंविधं करिष्यति, किं त्वन्यैरपि महासत्त्वैः कृतपूर्वमिति दर्शयितुमाह—

पणया वीरा महावीहिं (सू० २०)

॥ ४३ ॥

१ यथा यथा श्रुतमवगाहतेऽतिशयरसप्रसरसंयुतमपूर्वम् । तथा तथा प्रह्लादते मुनिर्नवनवसंवेगश्रद्धया ॥ १ ॥ २ मार्ग उत नेति प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महापुरुष आचरित मार्ग:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२०]

दीप अनुक्रम [२१]

'प्रणताः' प्रह्वाः 'वीराः' परीषहोपसर्गकषायसेनाविजयात् वीथिः-पन्थाः महांश्चासौ वीथिश्च महावीथिः-सम्यग्दर्शनादिरूपो मोक्षमार्गो जिनेन्द्रचन्द्रादिभिः सत्पुरुषैः प्रहतः, तं प्रति प्रह्वाः-वीर्यवन्तः संयमानुष्ठानं कुर्वन्ति, ततश्चोत्तमपुरुषप्रहतोऽयं मार्ग इति प्रदर्श्य तज्जनितमार्गविस्रम्भो विनेयः संयमानुष्ठाने सुखेनैव प्रवर्त्तयिष्यते ॥ उपदेशान्तरमाह-लोकं चेत्यादि, अथवा यद्यपि भवतो मतिर्न क्रमतेऽप्कायजीवविषये, असंस्कृतत्वात्, तथापि भगवदाज्ञेयमिति श्रद्धातव्यमित्याह—

लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुओभयं (सू० २१)

अत्राधिकृतत्वादप्कायलोको लोकशब्देनाभिधीयते, तमप्कायलोकं चशब्दादन्यांश्च पदार्थान् 'आज्ञया' मौनीन्द्रवचनेनाभिमुख्येन सम्यगित्वा-ज्ञात्वा, यथाऽप्कायादयो जीवाः, इत्येवमवगम्य न विद्यते कुतश्चिद्धेतोः-केनापि प्रकारेण जन्तूनां भयं यस्मात् सोऽयमकुतोभयः-संयमस्तमनुपालयेदिति सम्बन्धः, यद्वा 'अकुतोभयः' अप्कायलोको, यतोऽसौ न कुतश्चिद्भयमिच्छति, मरणभीरुत्वात्, तमाज्ञयाऽभिसमेत्यानुपालयेद्-रक्षेदित्यर्थः ॥ अप्कायलोकमाज्ञया अभिसमेत्य यत्कर्त्तव्यं तदाह—

से बेमि णेव सयं लोगं अब्भाइक्खिज्जा णेव अत्ताणं अब्भाइक्खिज्जा, जे लोयं अ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्कायेषु जीवस्य अस्तित्वं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२२]

दीप अनुक्रम [२३]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ४४ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः ३

ब्भाइक्खइ से अत्ताणं अब्भाइक्खइ, जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ से लोयं अब्भाइ-क्खइ (सू० २२)

सोऽहं ब्रवीमि, सेशब्दस्य युष्मदर्थत्वात्त्वां वा ब्रवीमि, न 'स्वयम्' आत्मना 'लोकः' अप्कायलोकोऽभ्याख्यातव्यः, अभ्याख्यानं नामासदभियोगः, यथाऽचौरं चौरमित्याह, इह तु जीवा न भवन्त्यापः, केवलमुपकरणमात्रं, घृततैलादिवत्, एषोऽसदभियोगः, हस्त्यादीनामपि जीवानामुपकरणत्वात्, स्यादारेका-नन्वेतदेवाभ्याख्यानं यदजीवानां जीवत्वापादनं, नैतदस्ति, प्रसाधितमपां प्राक् सचेतनत्वं, यथा हि अस्य शरीरस्याहंप्रत्यादिभिर्हेतुभिरधिष्ठाताऽऽत्मा व्यतिरिक्तः प्राक् प्रसाधित एवमप्कायोऽप्यव्यक्तचेतनया सचेतन इति प्राक् प्रसाधितः, न च प्रसाधितस्याभ्याख्यानं न्याय्यम्, अथापि स्याद्, आत्मनोऽपि शरीराधिष्ठातुरभ्याख्यानं कर्त्तव्यं, न च तत्क्रियमाणं घटामियर्त्तीति दर्शयति —'नेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा' नैव 'आत्मानं' शरीराधिष्ठातारमहंप्रत्ययसिद्धं ज्ञानाभिन्नगुणं प्रत्यक्षं 'प्रत्याचक्षीत' अपह्नुवीत, ननु चैतदेव कथमवसीयते-शरीराधिष्ठाताऽऽत्माऽस्तीति, उच्यते, विस्मरणशीलो देवानां प्रिय उक्तमपि भाणयति, तथाहि—आहृतमिदं शरीरं केनचिदभिसन्धिमता, कफरुधिराङ्गोपाङ्गादिपरिणतेः, अन्नादिवत्, तथोत्सृष्टमपि केनचिदभिसन्धिमतैव, आहृतत्वाद्, अन्नमलवदिति, तथा न ज्ञानोपलब्धिपूर्वकः परिस्पन्दो भ्रान्तिरूपः, परिस्पन्दत्वात्, त्वदीयवचनपरिस्पन्दवत्, तथा विद्यमानाधिष्ठातृव्यापारभाञ्जीन्द्रियाणि, करणत्वात्, दात्रादिवत्, एवं कुत-

॥ ४४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२]

दीप अनुक्रम [२३]

र्कमार्गानुसारिहेतुमालोच्छेदः स्याद्वादपरशुना कार्यः, अत एवंविधोपपत्तिसमधिगतमात्मानं शुभाशुभफलभाजं न प्रत्याचक्षीत, एवं च सति यो ह्यज्ञः कुतर्कतिमिरोपहतज्ञानचक्षुरप्कायलोकमभ्याख्याति-प्रत्याचष्टे स सर्वप्रमाणसिद्धमात्मानमभ्याख्याति, यश्चात्मानमभ्याख्याति–नास्म्यहं, स सामर्थ्यादप्कायलोकमभ्याख्याति, यतो ह्यात्मनि पाण्याद्यवयवोपेतशरीराधिष्ठायिनि प्रस्पष्टलिङ्गेऽभ्याख्याते सत्यव्यक्तचेतनालिङ्गोऽप्कायलोकस्तेन सुतरामभ्याख्यातः ॥ एवमनेकदोषोपपत्तिं विदित्वा नायमप्कायलोकोऽभ्याख्यातव्य इत्यालोच्य साधवो नाप्कायविषयमारम्भं कुर्वन्तीति, शाक्यादयस्त्वन्यथोपस्थिता इति दर्शयितुमाह—

लज्जमाणा पुढो पास-अणगारा मो त्ति एगे पवयमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारंभेणं उदयसत्थं समारंभमाणे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ । तत्थ खलु भगवता परिण्णा पवेदिता । इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव उदयसत्थं समारभति अण्णेहिं वा उदयसत्थं समारंभावेति अण्णे उदयसत्थं समारंभंते समणुजाणति । तं से अहियाए तं से अबोहीए । से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोच्चा भगवओ अ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्काय हिंसानाम् विरत: एव 'मुनि:'

प्रत सूत्रांक [२३]

दीप अनुक्रम [२४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

णगाराणं अंतिए इहमेगेसिं णायं भवति–एस खलु गंथे एस खलु मोहे एस खलु-मारे एस खलु णरए, इच्चत्थं गड्ढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदयकम्म-समारम्भेणं उदयसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ । से बेमि संति पाणा उदयनिस्सिया जीवा अणेगे (सू० २३)

‘लज्जमानाः’ स्वकीयं प्रव्रज्याभासं कुर्वाणाः यदिवा सावद्यानुष्ठानेन लज्जमानाः-लज्जां कुर्वाणाः ‘पृथग्’विभिन्नाः शाक्योलूककणभुक्कपिलादिशिष्याः, पश्येति शिष्यचोदना, अविवक्षितकर्मका अपि अकर्मका भवन्ति, यथा–पश्य मृगो धावतीति, द्वितीयार्थे वा प्रथमा सुब्व्यत्ययेन द्रष्टव्या, ततश्चायमर्थः–शाक्यादीन् गृहीतप्रव्रज्यानपि सावद्यानुष्ठानरतान् पृथग्विभिन्नान् पश्य, किं तैरसदाचरितं? येनैवं प्रदर्श्यन्त इति दर्शयति-अनगारा वयमित्येके शाक्यादयः प्रवदन्तो ‘यदिदं’ यदेतत्, काक्का दर्शयति–‘विरूपरूपैः’ उत्सेचनाग्निविध्यापनादिशस्त्रैः स्वकायपरकायभेदभिन्नैरुदककर्म समारभन्ते, उदककर्मसमारम्भेण च उदके शस्त्रं उदकमेव वा शस्त्रं समारभन्ते, तच्च समारभमाणोऽनेकरूपान्वनस्पतिद्वीन्द्रियादीन्विविधं हिनस्ति, तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता, यथा अस्यैव जीवितव्यस्य परिवन्दनमाननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातहेतुं यत् करोति तद्दर्शयति–स स्वयमेवोदकशस्त्रं समारभते अन्यैश्चोदकशस्त्रं समारम्भयति अन्यांश्चोदकशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानीते, तच्चोदकसमारम्भणं तस्याहिताय भवति, तथा ॥ ४५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्कायस्य हिंसात् अनेक जीवानाम् हिंसा

प्रत सूत्रांक [२३]

दीप अनुक्रम [२४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

तदेवाबोधिलाभाय भवति, स एतत्सम्बुध्यमान आदानीयं–सम्यग्दर्शनादि सम्यगुत्थाय–अभ्युपगम्य श्रुत्वा भगवतोऽनगाराणां वाऽन्तिके इहैकेषां साधूनां यत् ज्ञातं भवति तद्दर्शयति–'एषः' अप्कायसमारम्भो ग्रन्थ एष खलु मोह एष खलु मार एष खलु नरक इत्येवमर्थं गृद्धो लोको 'यदिदं विरूपरूपैः शस्त्रैः उदककर्मसमारम्भेणोदकशस्त्रं समारभमाणोऽन्याननेकरूपान् प्राणिनो विविधं हिनस्तीत्येतत्प्राग्वत् व्याख्येयं, पुनरप्याह—'से बेमी'त्यादि, सेशब्द आत्मनिर्देशे, सोऽहमेवमुपलब्धानेकाप्कायतत्त्ववृत्तान्तो ब्रवीमि–'सन्ति' विद्यन्ते प्राणिन उदकनिश्रिताः-पूतरकमत्स्यादयो यानुदकारम्भप्रवृत्तो हन्यादिति, अथवाऽपरः सम्बन्धः-प्रागुक्तमुदकशस्त्रं समारभमाणोऽन्यानप्यनेकरूपान् जन्तून् विविधं हिनस्तीति, तत् कथमेतच्छक्यमभ्युपगन्तुमित्यत आह–'सन्ति पाणा' इत्यादि पूर्ववत्, कियन्तः पुनस्त इति दर्शयति–'जीवा अणेगा' पुनर्जीवोपादानमुदकाश्रितप्रभूतजीवभेदज्ञापनार्थं, ततश्चेदमुक्तं भवति-एकैकस्मिन् जीवभेदे उदकाश्रिता 'अनेके' असंख्येयाः प्राणिनो भवन्ति, एवं चाप्कायविषयारम्भभाजः पुरुषास्ते तन्निश्रितप्रभूतसत्त्वव्यापत्तिकारिणो द्रष्टव्याः ॥ शाक्यादयस्तूदकाश्रितानेव द्वीन्द्रियादीन् जीवानिच्छन्ति नोदकमित्येतदेव दर्शयति—

इहं च खलु भो ! अणगाराणं उदयजीवा वियाहिया (सू० २४)

खलुशब्दोऽवधारणे 'इहैव' ज्ञातपुत्रीये प्रवचने द्वादशाङ्गे गणिपिटके 'अनगाराणां' साधूनाम् 'उदकजीवा' उदकरूपा जीवाश्चशब्दात्तदाश्रिताश्च पूतरकछेदनकलोद्दणकभ्रमरकमत्स्यादयो जीवा व्याख्याताः, अवधारणफलं च नान्येषामुदकरूपा जीवाः प्रतिपादिताः ॥ यद्येवमुदकमेव जीवास्ततोऽवश्यं तत्परिभोगे सति प्राणातिपातभाजः साधव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्कायिक जीवानाम् स्वरूपं

प्रत सूत्रांक [२४]

दीप अनुक्रम [२५+२६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ४६ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः ३

इति, अत्रोच्यते, नैतदेवं, यतो वयं त्रिविधमप्कायमाचक्ष्महे–सचित्तं मिश्रमचित्तं च, तत्र योऽचित्तोऽप्कायस्तेनोपयोगविधिः साधूनां, नेतराभ्यां, कथं पुनरसौ भवत्यचित्तः ? किं स्वभावादेवाहोश्विच्छस्त्रसम्बन्धात् ?, उभयथाऽपीति, तत्र यः स्वभावादेवाचित्तीभवति न बाह्यशस्त्रसम्पर्कात्, तमचित्तं जानाना अपि केवलमनःपर्यायावधिश्रुतज्ञानिनो न परिभुञ्जते, अनवस्थाप्रसङ्गभीरुतया, यतो नु श्रूयते-भगवता किल श्रीवर्द्धमानस्वामिना विमलसलिलसमुल्लसत्तरङ्गः शैवलपटलत्रसादिरहितो महाह्रदो व्यपगताशेषजलजन्तुकोऽचित्तवारिपरिपूर्णः स्वशिष्याणां तृड्बाधितानामपि पानाय नानुजज्ञे, तथा अचित्ततिलशकटस्थण्डिलपरिभोगानुज्ञा चानवस्थादोषसंरक्षणाय भगवता न कृतेति, श्रुतज्ञानप्रामाण्यज्ञापनार्थं च, (तथाहि–सामान्यश्रुतज्ञानी बाह्येन्धनसम्पर्कारुषितस्वरूपमेवाचित्तमिति व्यवहरति जलं, न पुनर्निरिन्धनमेवेति, अतो यद्बाह्यशस्त्रसम्पर्कात् परिणामान्तरापन्नं वर्णादिभिस्तदचित्तं साधुपरिभोगाय कल्पते, किं पुनस्तच्छस्त्रमित्यत आह—

सत्थं चेत्थं अणुवीइ पासा, पुढो सत्थं पवेइयं (सू० २५)

शस्यन्ते–हिंस्यन्तेऽनेन प्राणिन इति शस्त्रं, तच्चोत्सेचनगालनउपकरणधावनादि स्वकायादि च वर्णाद्यापत्तयो वा पूर्वावस्थाविलक्षणाः शस्त्रं, (तथाहि–अग्निपुद्गलानुगतत्वादीषत्पिङ्गलं जलं भवत्युष्णं गन्धतोऽपि धूमगन्धि रसतो विरसं स्पर्शत उष्णं तच्चोद्वृत्तत्रिदण्डम्,) एवंविधावस्थं यदि ततः कल्पते, नान्यथा, तथा कचवरकरीषगोमूत्रोषादीन्धनसम्बन्धात् स्तोकमध्यबहुभेदात्, स्तोकं स्तोके प्रक्षिपतीत्यादिचतुर्भङ्गिकाभावना कार्या, एवमेतत् त्रिविधं शस्त्रं, चशब्दो- ॥ ४६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्कायानाम् शस्त्राः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२५]

दीप अनुक्रम [२५+२६]

ऽवधारणार्थः, अन्यतमशस्त्रसम्पर्कविध्वस्तमेव ग्राह्यं, नान्यथेति, 'एत्थ'त्ति एतस्मिन् अप्काये प्रस्तुते 'अनुविचिन्त्य' विचार्य इदमस्य शस्त्रमित्येवं ग्राह्यं, 'पश्ये' त्यनेन शिष्यस्य चोदनेति । तदेवं नानाविधं शस्त्रमप्कायस्यास्तीति प्रतिपादितम्, एतदेव दर्शयति—'पुढो सत्थं पवेदितं' 'पृथग्' विभिन्नमुत्सेचनादिकं शस्त्रं 'प्रवेदितम्' आख्यातं भगवता, पाठान्तरं वा 'पुढोऽपासं पवेदितं' एवं पृथग्विभिन्नलक्षणेन शस्त्रेण परिणामितमुदकग्रहणमपाशं प्रवेदितम्–आख्यातं भगवता, अपाशः–अबन्धनं शस्त्रपरिणामितोदकग्रहणमबन्धनमाख्यातमितियावद् ॥ एवं तावत्साधूनां सचित्तमिश्राप्कायपरित्यागेनाचित्तपयसा परिभोगः प्रतिपादितः, ये पुनः शाक्यादयोऽप्कायोपभोगप्रवृत्तास्ते नियमत एवाप्कायं विहिंसन्ति, तदाश्रितांश्चान्यानिति, तत्र न केवलं प्राणातिपातापत्तिरेव तेषां, किमन्यदित्यत आह—

अदुवा अदिन्नादाणं (सू० २६)

'अथवे'ति पक्षान्तरोपन्यासद्वारेणाभ्युच्चयोपदर्शनार्थः, अशस्त्रोपहताप्कायोपभोगकारिणां न केवलं प्राणातिपातः, अपि त्वदत्तादानमपि तत्तेषां, यतो यैरप्कायजन्तुभिर्यानि शरीराणि निर्वर्त्तितानि तैरदत्तानि ते तान्युपभुञ्जते, यथा कश्चित् पुमान् सचित्तशाक्यभिक्षुकशरीरकात् खण्डमुत्कृत्य गृह्णीयाद्, अदत्तं हि तस्य तत्, परपरिगृहीतत्वात्, परकीयगवाद्यादानवत्, एवं तानि शरीराण्यब्जीवपरिगृहीतानि गृह्णतोऽदत्तादानमवश्यम्भावि, स्वाम्यनुज्ञानाभावादिति, ननु यस्य तत्तडागकूपादि तेनानुज्ञातं सकृत्तत्पय इति, ततश्च नादत्तादानं, स्वामिनाऽनुज्ञातत्वात्, परानुज्ञातपश्वादिघातवत्, नन्वेतदपि साध्यावस्थमेवोपन्यस्तं, यतः पशुरपि शरीरप्रदानविमुख एव भिन्नार्यमर्यादैरुच्चैरारटन्विशस्यते,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्कायस्य हिंसात् अदत्तादान-दोषः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२६]

दीप अनुक्रम [२७]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ४७ ॥ | अध्ययनं १ उद्देशकः ३

ततश्च कथमिव नादत्तादानं स्यात्?, न चान्यदीयस्यान्यः स्वामी दृष्टः परमार्थचिन्तायां, नन्वेवमशेषलोकप्रसिद्धगोदानादिव्यवहारस्त्रुट्यति, त्रुट्यतु नामैवंविधः पापसम्बन्धः, तद्धि देयं यद्दुःखितं स्वयं न भवति दासीबलीवर्दादिवत्, न चान्येषां दुःखोत्पत्तेः कारणं हलखड्गादिवत्, एतद्व्यतिरिक्तं दातृपरिगृहीत्रोरेकान्तत एवोपकारकं देयं प्रतिजानते जिनेन्द्रमतावलम्बिनः, उक्तं च—“यत् स्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि। केवलमुपग्रहकरं धर्मकृते तद्भवेद्देयम् ॥ १ ॥” इति, तस्मादवस्थितमेतत्—तेषां तददत्तादानमपीति ॥ साम्प्रतमेतद्दोषद्वयं स्वसिद्धान्ताभ्युपगमद्वारेण परः परिजिहीर्षुराह—

कप्पइ णे कप्पइ णे पाउं, अदुवा विभूसाए (२७ सू०)

अशस्त्रोपहतोदकारम्भिणो हि चोदिताः सन्त एवमाहुः-यथा नैतत् स्वमनीषिकातः समारम्भयामो वयं, किं त्वागमे निर्जीवत्वेनानिषिद्धत्वात् ‘कल्पते’ युज्यते ‘नः’ अस्माकं ‘पातुम्’ अभ्यवहर्तुमिति, वीप्सया च नानाविधप्रयोजनविषय उपभोगोऽभ्यनुज्ञातो भवति, तथाहि—आजीविकभस्मस्नाय्यादयो वदन्ति—पातुमस्माकं कल्पते न स्नातुं वारिणा, शाक्यपरिव्राजकादयस्तु स्नानपानावगाहनादि सर्वं कल्पते इति प्रभाषन्ते, एतदेव स्वनामग्राहं दर्शयति—अथवोदकं विभूषार्थमनुज्ञातं नः समये, विभूषा—करचरणपायूपस्थमुखप्रक्षालनादिका वस्त्रभण्डकादिप्रक्षालनात्मिका वा, एवं स्नानादिशौचानुष्ठायिनां नास्ति कश्चिद्दोष इति ॥ एवं ते परिफल्गुवचसः परिव्राजकादयो निजराद्धान्तोपन्यासेन मुग्धमतीन्विमोह्य किं कुर्वन्तीत्याह— ॥ ४७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्काय सम्बन्धे अन्य मत

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[२८]

दीप
अनुक्रम
[२९]

पुढो सत्थेहिं विउट्टन्ति (सू० २८)

'पृथग्' विभिन्नलक्षणैः नानारूपैरुत्सेचनादिशस्त्रैस्ते अनगारायमाणाः 'विउट्टन्ति'त्ति अप्कायजीवान् जीवनाख्यावर्त्तयन्ति–व्यपरोपयन्तीत्यर्थः, यदिवा पृथग्विभिन्नैः शस्त्रैरप्कायिकान्विविधं कुट्टन्ति-छिन्दन्तीत्यर्थः, कुट्टेर्धातोः छेदनार्थत्वात् ॥ अधुनैषामागमानुसारिणामागमासारत्वप्रतिपादनायाह—

एत्थऽवि तेसिं नो निकरणाए (सू० २९)

'एतस्मिन्नपि' प्रस्तुते स्वागमानुसारेणाभ्युपगमे सति 'कप्पइ णे कप्पइ णे पाउं, अदुवा विभूसाए'त्ति एवंरूपस्तेषामयमागमो यद्बलादप्कायपरिभोगे ते प्रवृत्ताः स स्याद्वादयुक्तिभिरभ्याहतः सन् 'नो निकरणाए'त्ति नो निश्चयं कर्त्तुं समर्थो भवति, न केवलं तेषां युक्तयो न निश्चयायालम्, अपि त्वागमोऽपीत्यपिशब्दः, कथं पुनस्तदागमो निश्चयाय नालमिति, अत्रोच्यते, त एवं प्रष्टव्याः–कोऽयमागमो नाम ? यदादेशात्कल्पते भवतामप्कायारम्भः, त आहुः–प्रतिविशिष्टानुपुर्वीविन्यस्तवर्णपदवाक्यसङ्घात आप्तप्रणीत आगमः, नित्योऽकर्तृको वा !, ततश्चैवमभ्युपगते यो येन प्रतिपन्न आप्तः स निराकर्त्तव्यः, अनाप्तोऽसौ अप्कायजीवापरिज्ञानात् तद्वधानुज्ञानाद्वा भवानिव, जीवत्वं चापां प्राक् प्रसाधितमेव, ततस्तत्प्रणीतागमोऽपि सद्धर्मचोदनायामप्रमाणम्, अनाप्तप्रणीतत्वाद्, रथ्यापुरुषवाक्यवत्, अथ नित्योऽकर्तृकः समयोऽभ्युपगम्यते ततो नित्यत्वं दुष्प्रतिपादं, यतः शक्यते वक्तुं–भवदभ्युपगतः समयः सकर्तृको वर्णपदवा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्कायस्य हिंसकाः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२९]

दीप अनुक्रम [३०]

क्यात्मकत्वात्, विधिप्रतिषेधात्मकत्वात्, उभयसम्मतसकर्तृकग्रन्थसन्दर्भवदिति, अभ्युपगम्य वा ब्रूमः-अप्रमाणमसौ, नित्यत्वादाकाशवत्, यच्च प्रमाणं तदनित्यं दृष्टं प्रत्यक्षादिवदिति, तथा विभूषासूत्रावयवेऽपि पृष्टा न प्रत्युत्तरदाने क्षमाः, यतियोग्यं स्नानं न भवति, कामाङ्गत्वात्, मण्डनवत्, कामाङ्गता च सर्वजनप्रसिद्धा, तथा चोक्तम्—“स्नानं मदद-र्प्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम्। तस्मात्कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः॥ १॥” शौचार्थोऽपि न पुष्कलो, वारिणा बाह्यमलापनयनमात्रत्वात्, न ह्यन्तर्व्यवस्थितकर्ममलक्षालनसमर्थं वारि दृष्टं, तस्माच्छरीरवाङ्मनसामकुशलप्रवृत्तिनिरोधो भावशौचमेव कर्मक्षयायालं, तच्च वारिसाध्यं न भवति, कुतः?, अन्वयव्यतिरेकसमधिगम्यत्वात्सर्वभावानां, न हि मत्स्यादयः तत्र स्थिता मत्स्यादित्वकर्मक्षयभाक्त्वेनाभ्युपगम्यन्ते, विना च वारिणा महर्षयो विचित्रतपोभिः कर्म्म क्षपयन्तीति, अतः स्थितमेतत्-तत्समयो न निश्चयाय प्रभवतीति॥ तदेवं निःसपत्नमपां जीवत्वं प्रतिपाद्य तत्प्रवृत्तिनिवृत्तिविकल्पफलप्रदर्शनद्वारेणोपसंजिहीर्षुः सकलमुद्देशार्थमाह—

एत्थ सत्थं समारभमाणस्स इच्चेए आरंभा अपरिण्णाया भवंति, एत्थ सत्थं असमारभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं उदयसत्थं समारम्भेज्जा णेवण्णेहिं उदयसत्थं समारंभावेज्जा उदयसत्थं समारंभंतेऽवि

॥ ४८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[३०]

दीप
अनुक्रम
[३१]

अण्णे ण समणुजाणेज्जा, जस्सेते उदयसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णातकम्मे (सू० ३०) त्ति बेमि ॥ इति तृतीयोऽप्कायोद्देशकः ॥

'एतस्मिन्' अप्काये 'शस्त्रं' द्रव्यभावरूपं समारभमाणस्येत्येते समारम्भा बन्धकारणत्वेनापरिज्ञाता भवन्ति, अत्रैवाप्काये शस्त्रमसमारभमाणस्येत्येते आरम्भा ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाता भवन्ति प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति, तामेव प्रत्याख्यानपरिज्ञां विशेषतो ज्ञपरिज्ञापूर्विकां दर्शयति—'तद्' उदकारम्भणं बन्धायेत्येवं परिज्ञाय मेधावी-मर्यादाव्यवस्थितो नैव स्वयमुदकशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरुदकशस्त्रं समारम्भयेत्, नैवान्यानुदकशस्त्रं समारभमाणान्समनुजानीयात्, यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः द्विधा परिज्ञाता भवन्ति स एव मुनिः परिज्ञातकर्मा भवति । ब्रवीमीति पूर्ववद् । इति शस्त्रपरिज्ञायां तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

उक्तस्तृतीयोद्देशकः, साम्प्रतं चतुर्थ आरभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–इहानन्तरोद्देशके मुनित्वप्रतिपत्तये अप्कायः प्रतिपादितः, तदधुना तदर्थमेव क्रमायातस्तेजस्कायप्रतिपादनायायमुद्देशकः समारभ्यते–तस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि वाच्यानि तावद्यावन्नामनिष्पन्ने निक्षेपे तेजउद्देशक इति नाम, तत्र तेजसो निक्षेपादीनि द्वाराणि वाच्यानि, अत्र च पृथिवीविकल्पतुल्यत्वात् केषाञ्चिदतिदेशो द्वाराणामपरेषां तद्विलक्षणत्वात् अपोद्धार इत्येतत् द्वयमुररीकृत्य निर्युक्तिकृद् गाथामाह—

तेउस्सवि दाराइं ताइं जाइं हवंति पुढवीए । नाणत्ती उ विहाणे परिमाणुवभोगसत्थे य ॥ ११६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययने चतुर्थ: उद्देशक: 'अग्निकाय:' आरब्ध:,

प्रत सूत्रांक [३०]

दीप अनुक्रम [३१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

'तेजसोऽपि' अग्नेरपि 'द्वाराणि' निक्षेपादीनि यानि पृथिव्याः समधिगमेऽभिहितानि तान्येव वाच्यानि, अपवादं दर्शयितुमाह—'नानात्वं' भेदो विधानपरिमाणोपभोगशस्त्रेषु, तुरवधारणे, विधानादिष्वेव च नानात्वं नान्यत्रेति, चशब्दाल्लक्षणद्वारपरिग्रहः ॥ यथाप्रतिज्ञातनिर्वहणार्थमादिद्वारव्याचिख्यासयाऽऽह—

दुविहा य तेउजीवा सुहुमा तह बायरा य लोगंमि। सुहुमा य सव्वलोए पंचेव य बायरविहाणा ॥ ११७॥

स्पष्टा ॥ बादरपञ्चभेदप्रतिपादनायाह—

इंगाल अगणि अची जाला तह मुम्मुरे य बोद्धव्वे। बायरतेउविहाणा पंचविहा वण्णिया एए ॥ ११८॥

दग्धेन्धनो विगतधूमज्वालोऽङ्गारः–, इन्धनस्थः प्लोषक्रियाविशिष्टरूपः तथा विद्युदुल्काऽशनिसङ्घर्षसमुत्थितः सूर्यमणिसंसृतादिरूपश्चाग्निः, दाह्यप्रतिबद्धो ज्वालाविशेषोऽर्च्चिः, ज्वाला छिन्नमूलाऽनङ्गारप्रतिबद्धा, प्रविरलाग्निकणानुविद्धं भस्म मुर्मुरः, एते बादरा अग्निभेदाः पञ्च भवन्तीति ॥ एते च बादराग्नयः स्वस्थानाङ्गीकरणान्मनुष्यक्षेत्रेऽर्द्धतृतीयेषु द्वीपसमुद्रेष्वव्याघातेन पञ्चदशसु कर्म्मभूमिषु व्याघाते सति पञ्चसु विदेहेषु, नान्यत्र, उपपाताङ्गीकरणेन लोकासङ्ख्येयभागवर्तिनः, तथा चागमः—"उववाएणं दोसु उड्ढकवाडेसु तिरियलोयतट्टे (ट्ठे) य" अस्यायमर्थः–अर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रबाहल्ये पूर्वापरदक्षिणोत्तरस्वयम्भूरमणपर्यन्तायते ऊर्ध्वाधोलोकप्रमाणे कपाटे तयोः प्रविष्टा बादराग्निषूत्पद्यमानकास्तद्व्यपदेशं लभन्ते, तथा 'तिरियलोयतट्टे (ट्ठे) य'त्ति तिर्यग्लोकस्थालके च व्यवस्थितो बादराग्निषूत्पद्यमानो बादराग्निव्यपदेशभाग् भवति। अन्ये तु व्याचक्षते–तयोस्तिष्ठतीति तत्स्थः, तिर्यग्लोकश्चासौ तत्स्थश्च तिर्यग्लोकतत्स्थः, तत्र च स्थित ॥ ४९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[३०]

दीप
अनुक्रम
[३१]

उत्सित्सुर्बादराग्निव्यपदेशमासादयति, अस्मिंश्च व्याख्याने कपाटान्तर्गत एव गृह्यते, स च द्वयोरूर्द्धकपाटयोरित्यनेनैवोपात्त इति तद्व्याख्यानाभिप्रायं न विद्मः । कपाटस्थापना चेयम् । समुद्घातेन सर्वलोकवर्त्तिनः, ते च पृथिव्यादयो मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहता बादराग्निषूत्पद्यमानास्तद्व्यपदेशभाजः सर्वलोकव्यापिनो भवन्ति, यत्र च बादराः पर्याप्तकास्तत्रैव बादरा अपर्याप्तकाः, तन्निश्रया तेषामुत्पद्यमानत्वात्, तदेवं सूक्ष्मा बादराश्च पर्याप्तकापर्याप्तकभेदेन प्रत्येकं द्विधा भवन्ति, एते च वर्णगन्धरसस्पर्शादेशैः सहस्राग्रशो भिद्यमानाः सङ्ख्येययोनिप्रमुखशतसहस्रभेदपरिमाणा भवन्ति, तत्रैषां संवृता योनिरुष्णा च सचित्ताचित्तमिश्रभेदात् त्रिधा, सप्त चैषां योनिलक्षा भवन्ति ॥ साम्प्रतं चशब्दसमुच्चितं लक्षणद्वारमाह—

जह देहप्परिणामो रत्तिं खज्जोयगस्स सा उवमा । जरियस्स य जह उम्हा तओवमा तेउजीवाणं ॥ ११९ ॥

'यथे'ति दृष्टान्तोपन्यासार्थः 'देहपरिणामः' प्रतिविशिष्टा शरीरशक्तिः 'रात्रा'विति विशिष्टकालनिर्देशः 'खद्योतक' इति प्राणिविशेषपरिग्रहः, यथा तस्यासौ देहपरिणामो जीवप्रयोगनिर्वृत्तशक्तिराविश्चकास्ति, एवमङ्गारादीनामपि प्रतिविशिष्टा प्रकाशादिशक्तिरनुमीयते जीवप्रयोगविशेषाविर्भावितेति । यथा वा—ज्वरोष्मा जीवप्रयोगं नातिवर्त्तते, जीवाधिष्ठितशरीरकानुपात्येव भवति, एषैवोपमाऽऽग्नेयजन्तूनां, न च मृता ज्वरिणः क्वचिदुपलभ्यन्ते, एवमन्वयव्यतिरेकाभ्यामग्नेः सचित्तता मुक्तकग्रन्थोपपत्तिमुखेन प्रतिपादिता, सम्प्रति प्रयोगमारोप्यते अयमेवार्थः—जीवशरीराण्यङ्गारादयः, छेद्यत्वादिहेतुगणान्वितत्वात्, सास्नाविषाणादिसङ्घातवत्, तथा आत्मसंयोगाविर्भूतोऽङ्गारादीनां प्रकाशपरिणामः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०]

दीप अनुक्रम [३१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ५० ॥

शरीरस्थत्वात्, खद्योतकदेहपरिणामवत्, तथा आत्मसम्प्रयोगपूर्वकोऽङ्गारादीनामूष्मा, शरीरस्थत्वात्, ज्वरोष्मवत्, न चादित्यादिभिरनेकान्तः, सर्वेषामात्मप्रयोगपूर्वकं यत उष्णपरिणामभाक्त्वं तस्मान्नानेकान्तः, तथा सचेतनं तेजो, यथायोग्याहारोपादानेन वृद्धिविशेषतद्विकारवत्त्वात्, पुरुषवत्, एवमादिना लक्षणेनाग्नेया जन्तवो निश्चेया इति ॥ उक्तं लक्षणद्वारं, तदनन्तरं परिमाणद्वारमाह—

जे बायरपज्जत्ता पलिअस्स असंखभागमित्ता उ। सेसा तिण्णिवि रासी वीसुं लोगा असंखिज्जा ॥ १२० ॥

ये बादरपर्याप्तानलजीवाः क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागमात्रवर्त्तिप्रदेशराशिपरिमाणाः भवन्ति, ते पुनर्बादरपृथिवीकायपर्याप्तकेभ्योऽसङ्ख्येयगुणहीनाः, शेषास्त्रयोऽपि राशयः पृथ्वीकायवद्भावनीयाः, किन्तु बादरपृथिवीकायापर्याप्तकेभ्यो बादराग्न्यपर्याप्तका असंख्येयगुणहीनाः सूक्ष्मपृथिवीकायापर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्माग्नेयापर्याप्तका विशेषहीनाः सूक्ष्मपृथिवीकायपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्माग्नेयपर्याप्तका विशेषहीना इति ॥ साम्प्रतमुपभोगद्वारमाह—

दहणे पयावण पगासणे य सेए य भत्तकरणे य। बायरतेउक्काए उवभोगगुणा मणुस्साणं ॥ १२१ ॥

दहनं–शरीराद्यवयवस्य वाताद्यपनयनार्थं प्रकृष्टं तापनं प्रतापनं–शीतापनोदाय प्रकाशकरणमुद्योतकरणं–प्रदीपादिना भक्तकरणम्–ओदनादिरन्धनं स्वेदो–ज्वरविसूचिकादीनाम्, इत्येवमादिष्वनेकप्रयोजनेषूपस्थितेषु मनुष्याणां बादरतेजस्कायविषया उपभोगरूपा गुणा उपभोगगुणा भवन्तीति ॥ तदेवमेवमादिभिः कारणैः समुपस्थितैः सततमारम्भप्रवृत्ता गृहिणो यत्याभासा वा सुखैषिणस्तेजस्कायजन्तून् हिंसन्तीति दर्शयितुमाह—

अध्ययनं १ उद्देशकः ४ ॥ ५० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[३०]

दीप
अनुक्रम
[३१]

एएहिं कारणेहिं हिंसंती तेउकाइए जीवे। सायं गवेसमाणा परस्स दुक्खं उदीरंति ॥ १२२ ॥

'एतैः' दहनादिभिः कारणैस्तेजस्कायिकान् जीवान् 'हिंसन्ती'ति सङ्घट्टनपरितापनापद्रावणानि कुर्वन्ति 'सातं' सुखं तदात्मनोऽन्विष्यन्तः 'परस्य' बादराग्निकायस्य दुःखम् 'उदीरयन्ति' उत्पादयन्तीति ॥ साम्प्रतं शस्त्रद्वारं, तच्च द्रव्यभावशस्त्रभेदात् द्विधा, द्रव्यशस्त्रमपि समासविभागभेदात् द्विधैव, तत्र समासतो द्रव्यशस्त्रप्रतिपादनायाह—

पुढवी आउक्काए उल्ला य वणस्सई तसा पाणा। बायरतेउक्काए एयं तु समासओ सत्थं ॥ १२३ ॥

'पृथिवी' धूलिः अप्कायश्च आर्द्रश्च वनसतिः त्रसाश्च प्राणिनः, एतद्बादरतेजस्कायजन्तूनां 'समासतः' सामान्येन शस्त्रमिति ॥ विभागतो द्रव्यशस्त्रमाह—

किंची सकायसत्थं किंची परकाय तदुभयं किंची। एयं तु दव्वसत्थं भावे य असंजमो सत्थं ॥ १२४ ॥

किञ्चिच्छस्त्रं स्वकाय एव–अग्निकाय एव अग्निकायस्य, तद्यथा–तार्णोऽग्निः पार्णाग्नेः शस्त्रमिति, किञ्चिच्च परकायशस्त्रम्–उदकादि, उभयशस्त्रं पुनः–तुषकरीषादिव्यतिमिश्रोऽग्निरपराग्नेः, तुशब्दो भावशस्त्रापेक्षया विशेषणार्थः, 'एतत्तु' पूर्वोक्तं समासविभागरूपं पृथिवीस्वकायादि द्रव्यशस्त्रमिति । भावशस्त्रं दर्शयति-भावे शस्त्रम् असंयमो–दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायलक्षण इति ॥ उक्तव्यतिरिक्तद्वारातिदेशद्वारेणोपसञ्जिहीर्षुर्निर्युक्तिकृदाह—

सेसाइं दाराइं ताइं जाइं हवंति पुढवीए। एवं तेउद्देसे निज्जुत्ती कित्तिया एसा ॥ १२५ ॥

उक्तशेषाणि द्वाराणि तान्येव यानि पृथिव्युद्देशकेऽभिहितानि 'एवम्' उक्तप्रकारेण तेजस्कायाभिधानोद्देशके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३१]

दीप अनुक्रम [३२]

निर्युक्तिः 'कीर्त्तिता' व्यावर्णिता भवतीति ॥ साम्प्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं, तच्चेदम्—

से बेमि णेव सयं लोगं अब्भाइक्खेज्जा णेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा, जे लोयं अब्भाइक्खइ से अत्ताणं अब्भाइक्खइ, जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ से लोयं अब्भाइक्खइ (सू० ३१)

अस्य च सम्बन्धः प्राग्वद्वाच्य इति, येन मया सामान्यात्मपदार्थपृथिव्यप्कायजीवप्रविभागव्यावर्णनमकारि स एवाहमव्यवच्छिन्नज्ञानप्रवाहस्तेजोजीवस्वरूपोपलम्भसमुपजनितजिनवचनसम्मदो ब्रवीमि, किं पुनस्तदिति दर्शयति—'नैवे'त्यादि, इह हि प्रकरणसम्बन्धाल्लोकशब्देनाग्निकायलोकोऽभिधित्सितः, अतस्तमग्निलोकं जीवत्वेन नैव 'स्वयम्' आत्मनाऽभ्याचक्षीत-नैवापह्नुवीतेत्यर्थः, एतदभ्याख्याने ह्यात्मनोऽपि ज्ञानादिगुणकलापानुमितस्याभ्याख्यानमवाप्नोति, अथ च प्राक् प्रसाधितत्वादभ्याख्यानं नैवात्मनो न्याय्यम्, एवं तेजस्कायस्यापि प्रसाधितत्वात् अभ्याख्यानं क्रियमाणं न युक्तिपथमवतरति, एवं चास्य युक्त्यागमबलप्रसिद्धस्याभ्याख्याने क्रियमाणे सत्यात्मनोऽप्यहंप्रत्ययसिद्धस्याभ्याख्यानं भवतः प्राप्तम्। एवमस्त्विति चेत्, तन्नेति दर्शयति—'नेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा' नैवात्मानं-शरीराधिष्ठातारं ज्ञानगुणं प्रत्यात्मसंवेद्यं प्रत्याचक्षीत, तस्य शरीराधिष्ठातृत्वेन आहृतमिदं शरीरं केनचिदभिसन्धिमता, तथा त्यक्तमिदं शरीरं केनचिदभिसन्धिमतैवेत्येवमादिभिर्हेतुभिः प्रसाधितत्वात्, न च प्रसाधितप्रसाधनं पिष्टपेषणवत् विद्वज्जनमनांसि रञ्जयति,

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३१]

दीप अनुक्रम [३३]

एवं च सत्यात्मवत्प्रसाधितमग्निलोकं यः प्रत्याचक्षीत सोऽतिसाहसिक आत्मानमभ्याख्याति–निराकरोति, यश्चात्माभ्याख्यानप्रवृत्तः स सदैवाग्निलोकमभ्याख्याति, सामान्यपूर्वकत्वाद्विशेषाणां, सति ह्यात्मसामान्ये पृथिव्याद्यात्मविभागः सिद्ध्यति, नान्यथा, सामान्यस्य विशेषव्यापकत्वात्, व्यापकविनिवृत्तौ च व्याप्यस्याप्यवश्यंभाविनी विनिवृत्तिरितिकृत्वा । एवमयमग्निलोकः सामान्यात्मवन्नाभ्याख्यातव्य इति प्रदर्शितम्, अधुनाऽग्निजीवप्रतिपत्तौ सत्यां तद्विषयसमारम्भकटुकफलपरिहारोपन्यासाय सूत्रमाह—

जे दीहलोगसत्थस्स खेयण्णे से असत्थस्स खेयण्णे जे असत्थस्स खेयण्णे से दीहलोगसत्थस्स खेयण्णे (सू० ३२)

'य' इति मुमुक्षुर्दीर्घलोको–वनस्पतिर्यस्मादसौ कायस्थित्या परिमाणेन शरीरोच्छ्रयेण च शेषैकेन्द्रियेभ्यो दीर्घो वर्त्तते, तथाहि–कायस्थित्या तावत् '¹वणस्सइकाइए णं भंते? वणस्सइकाइएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?, गोयमा! अणंतं कालं अणंताओ उस्सप्पिणिअवसप्पिणिओ खेत्तओ अणंता लोया असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागे' परिमाणतस्तु '²पडुप्पन्नवणस्सइकाइयाणं भंते! केवतिकालस्स निलेवणा सिया?, गोयमा!

१ वनस्पतिकायो भदन्त! वनस्पतिकाय इति कालतः कियच्चिरं भवति?, गौतम! अनन्तं कालम्, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः, क्षेत्रतोऽनन्ता लोकाः, असंख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः, ते पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येये भागे. २ प्रत्युत्पन्नवनस्पतिकायिकानां भदन्त! कियता कालेन निर्लेपना स्यात्?, गौतम! प्रत्युत्पन्नवनस्पतिकायिकानां नास्ति निर्लेपना.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३२]

दीप अनुक्रम [३३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ५२ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः ४

पडुप्पन्नवणस्सइकाइयाणं नत्थि निल्लेवणा' तथा शरीरोच्छ्रयाच्च दीर्घो वनस्पतिः 'वणस्सइकाइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?, गोयमा ! साइरेगं जोयणसहस्सं सरीरोगाहणा' न तथाऽन्येषामेकेन्द्रियाणाम् , अतः स्थितमेतत्-सर्वथा दीर्घलोको वनस्पतिरिति, अस्य च शस्त्रमग्निः, यस्मात्स हि प्रवृद्धज्वालाकलापाकुलः सकलतरुगणप्रध्वंसनाय प्रभवति, अतोऽसौ तदुत्पादकत्वाच्छस्त्रं, ननु च सर्वलोकप्रसिद्ध्या कस्मादग्निरेव नोक्तः?, किं वा प्रयोजनमुररीकृत्योक्तं दीर्घलोकशस्त्रमिति, अत्रोच्यते, प्रेक्षापूर्वकारितया, न निरभिप्रायमेतत्कृतमिति, यस्मादयमुत्पाद्यमानो ज्वाल्यमानो वा हव्यवाहः समस्तभूतग्रामघाताय प्रवर्त्तते, वनस्पतिदाहप्रवृत्तस्तु बहुविधसत्त्वसंहतिविनाशकारी विशेषतः स्यात् , यतो वनस्पतौ कृमिपिपीलिकाभ्रमरकपोतश्वापदादयः सम्भवन्ति, तथा पृथिव्यपि तरुकोटरव्यवस्थिता स्यात्, आपोऽप्यवश्यायरूपाः, वायुरपीषच्चञ्चलस्वभावकोमलकिशलयानुसारी सम्भाव्यते, तदेवमग्निसमारम्भप्रवृत्तः एतावतो जीवान्नाशयति, अस्यार्थस्य सूचनाय दीर्घलोकशस्त्रग्रहणमकरोत् सूत्रकार इति, तथा चोक्तम्—"जायतेयं न इच्छन्ति, पावगं जलइत्तए । तिक्खमन्नयरंसत्थं, सव्वओऽवि दुरासयं ॥ १ ॥ पाईणं पडिणं वावि, उड्ढं अणुदिसामवि । अहे दाहिणओ वावि, दहे उत्तरओऽवि य ॥ २ ॥ भूयाणमेसमाघाओ, हव्ववाहो न संसओ । तं पईवपयावट्ठा,

१ वनस्पतिकायिकानां भदन्त ! का महती शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता ?, गौतम ! सातिरेकं योजनसहस्रं शरीरावगाहना. २ जाततेजसं नेच्छन्ति पावकं ज्वलयितुम् । तीक्ष्णमन्यतरत् शस्त्रं सर्वतोऽपि दुराश्रयम् ॥ १ ॥ प्राचीनं प्रतीचीनं वापि ऊर्ध्वमनुदिक्ष्वपि । अधो दक्षिणतो वापि दहति उत्तरतोऽपि च ॥२॥ भूतानामेष आघातो हव्यवाहो न संशयः । तत् प्रदीपप्रतापार्थं संयतः किञ्चिन्नारभेत ॥ ३ ॥

॥ ५२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[३२]

दीप
अनुक्रम
[३३]

संजओ किंचि नारभे ॥ ३ ॥" अथवा बादरतेजस्कायाः पर्याप्तकाः स्तोकाः, शेषाः पृथिव्यादयो जीवकाया बहवः, भवस्थितिरपि त्रीण्यहोरात्राणि स्वल्पा इतरेषां पृथिव्यब्वायुवनस्पतीनां यथाक्रमं द्वाविंशतिसप्तत्रिदशवर्षसहस्रपरिमाणा दीर्घा अवसेया इति, अतो दीर्घलोकः–पृथिव्यादिस्तस्य शस्त्रम्–अग्निकायस्तस्य 'क्षेत्रज्ञो' निपुणः अग्निकायं वर्णादितो जानातीत्यर्थः, 'खेदज्ञो वा' खेदः–तद्व्यापारः सर्वसत्त्वानां दहनात्मकः पाकाद्यनेकशक्तिकलापोपचितः प्रवरमणिरिव जाज्वल्यमानो लब्धाग्निव्यपदेशः यतीनामनारम्भणीयः, तमेवंविधं खेदम्-अग्निव्यापारं जानातीति खेदज्ञः, अतो य एव दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः स एव 'अशस्त्रस्य' सप्तदशभेदस्य संयमस्य खेदज्ञः, संयमो हि न कञ्चिज्जीवं व्यापादयति अतोऽशस्त्रम्, एवमनेन संयमेन सर्वसत्त्वाभयप्रदायिनाऽनुष्ठीयमानेनाग्निजीवविषयः समारम्भः शक्यः परिहर्तुं पृथिव्यादिकायसमारम्भश्चेत्येवमसौ संयमे निपुणमतिर्भवति, ततश्च निपुणमतित्वाद्विदितपरमार्थोऽग्निसमारम्भाद्व्यावृत्य संयमानुष्ठाने प्रवर्त्तते । इदानीं गतप्रत्यागतलक्षणेनाविनाभावित्वप्रदर्शनार्थं विपर्ययेण सूत्रावयवपरामर्शं करोति—'जे असत्थस्से' त्यादि, यश्चाशस्त्रे-संयमे निपुणः स खलु दीर्घलोकशस्त्रस्य–अग्नेः क्षेत्रज्ञः खेदज्ञो वा, संयमपूर्वकं ह्यग्निविषयखेदज्ञत्वम्, अग्निविषयखेदज्ञतापूर्वकं च संयमानुष्ठानम्, अन्यथा तदसम्भव एवेत्येतद्गतप्रत्यागतफलमाविर्भावितं भवति ॥ कैः पुनरिदमेवमुपलब्धमित्यत आह—'वीरेही' त्यादि, अथवा सद्वक्तृप्रसिद्धौ सत्यां वाक्यप्रसिद्धिर्भवतीत्यत उपदिश्यते—

वीरेहिं एयं अभिभूय दिट्ठं, संजएहिं सया जत्तेहिं सया अप्पमत्तेहिं (सू० ३३)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[३३]

दीप
अनुक्रम
[३४]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)
॥ ५३ ॥

अध्ययनं १
उद्देशकः ४

घनघातिकर्मसङ्घातविदारणानन्तरप्राप्तातुलकेवलश्रिया विराजन्त इति वीराः–तीर्थकरास्तैर्वीरैरर्थतो दृष्टमेतद्गणधरैश्च सूत्रतोऽग्निशस्त्रं दृष्टम् अशस्त्रं संयमस्वरूपं चेति । किं पुनरनुष्ठायेदं तैरुपलब्धमिति, अत्रोच्यते, 'अभिभूये'ति अभिभवो नामादिश्चतुर्द्धा, द्रव्याभिभवो–रिपुसेनादिपराजयः आदित्यतेजसा वा चन्द्रग्रहनक्षत्रादितेजोऽभिभवः, भावाभिभवस्तु परीषहोपसर्गानीकज्ञानदर्शनावरणमोहान्तरायकर्म्मनिर्द्दलनं, परीषहोपसर्गादिसेनाविजयाद्धिमलं चरणं, चरणशुद्धेर्ज्ञानावरणादिकर्मक्षयः, तत्क्षयान्निरावरणमप्रतिहतमशेषज्ञेयग्राहि केवलज्ञानमुपजायते, इदमुक्तं भवति–परीषहोपसर्गज्ञानदर्शनावरणीयमोहान्तरायाण्यभिभूय केवलमुत्पाद्य तैरुपलब्धमिति । यथाभूतैस्तैरिदमुपलब्धं तद्दर्शयति—'संजएहिं' सम्यग् यताः संयताः प्राणातिपातादिभ्यस्तैः, तथा 'सदा' सर्वकालं चरणप्रतिपत्तौ मूलोत्तरगुणभेदायां निरतिचारत्वाद्यत्नवन्तस्तैः, तथा 'सदा' सर्वकालं न विद्यते प्रमादो–मद्यविषयकषायविकथानिद्राख्यो येषां तेऽप्रमत्तास्तैः, एवंभूतैर्महावीरैः केवलज्ञानचक्षुषेदं दीर्घलोकशस्त्रम् अशस्त्रं च संयमो दृष्टम्–उपलब्धमिति । अत्र च यत्नग्रहणादीर्यासमित्यादयो गुणा गृह्यन्ते, अप्रमादग्रहणात्तु मद्यादिनिवृत्तिरिति । तदेवमेतत्प्रधानपुरुषप्रतिपादितमग्निशस्त्रमपायदर्शनादप्रमत्तैः साधुभिः परिहार्यमिति ॥ एवं प्रत्यक्षीकृतानेकदोषजालमप्यग्निशस्त्रमुपभोगलोभात्प्रमादवशगा ये न परिहरन्ति तानुद्दिश्य विपाकदर्शनायाह—

जे पमत्ते गुणट्ठीए से हु दंडेत्ति पवुच्चइ (सू० ३४)

॥ ५३ ॥

यो हि प्रमत्तो भवति मद्यविषयादिप्रमादैरसंयतो 'गुणार्थी' रन्धनपचनप्रकाशातापनाद्यग्निगुणप्रयोजनवान् स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४]

दीप अनुक्रम [३५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायोऽग्निशस्त्रसमारम्भकतया प्राणिनां दण्डहेतुत्वाद्दण्डः प्रकर्षेणोच्यते प्रोच्यते, आयुर्घृतादिव्यपदेशवदिति ॥ यतश्चैवं ततः किं कर्त्तव्यमित्यत आह—

तं परिण्णाय मेहावी इयाणिं णो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं (सू० ३५)

'तम्' अग्निकायसमारम्भं दण्डफलं परिज्ञाय-ज्ञपरिज्ञाप्रत्याख्यानपरिज्ञाभ्यां 'मेधावी' मर्यादाव्यवस्थितो वक्ष्यमाणप्रकारेण व्यवच्छेदमात्मन्याचिनोतीति । तमेव प्रकारं दर्शयितुमाह—'इयाणी' त्यादि, यमहमग्निसमारम्भं विषयप्रमादेनाकुलीकृतान्तःकरणः सन् पूर्वमकार्षं तमिदानीं जिनवचनोपलब्धाग्निसमारम्भदण्डतत्त्वः नो करोमीति ॥ अन्ये त्वन्यथावादिनोऽन्यथाकारिण इति दर्शयितुमाह—

लज्जमाणा पुढो पास-अणगारा मोत्ति एगे पवदमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं अगणिकम्मसमारम्भेणं अगणिसत्थं समारभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसंति । तत्थ खलु भगवता परिण्णा पवेदिता, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव अगणिसत्थं समारभइ अण्णेहिं वा अगणिसत्थं समारंभावेइ अण्णे वा अगणिसत्थं समारभमाणे समणुजा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३६]

दीप अनुक्रम [३७]

णइ, तं से अहियाए तं से अबोहियाए से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोच्चा भगवओ अणगाराणं इहमेगेसिं णायं भवति-एस खलु गंथे एस खलु मोहे एस खलु मारे एस खलु णरए, इच्चत्थं गड्ढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं अगणिकम्मसमारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ (सू० ३६)

अस्य ग्रन्थस्योक्तार्थस्यायमर्थो लेशतः प्रदर्श्यते—'लज्जमानाः' स्वागमोक्तानुष्ठानं कुर्वाणाः सावद्यानुष्ठानेन वा लज्जां कुर्वाणाः 'पृथग्' विभिन्नाः शाक्यादयः 'पश्ये'ति संयमानुष्ठाने स्थिरीकरणार्थं शिष्यस्य चोदना, अनगारा वयमित्येके प्रवदमानाः, किं तैर्विरूपमाचरितं येनैवं प्रदर्श्यन्त इति दर्शयति—यदिदं विरूपरूपैः शस्त्रैरग्निकर्मसमारम्भेण अग्निशस्त्रं समारभमाणः सन्नन्याननेकरूपान् प्राणिनो विहिनस्ति, तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता, यथाऽस्यैव परिफल्गुजीवितस्य परिवन्दनमाननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातहेतुं यत्करोति तद्दर्शयति—'स' परिवन्दनाद्यर्थी स्वत एवाग्निशस्त्रं समारभते तथा अन्यैश्चाग्निशस्त्रं समारम्भयति तथाऽन्यांश्च अग्निशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानीते, तच्चाग्नेः समारम्भणं 'से' तस्य सुखलिप्सोरमुत्रान्यत्र चाहिताय भवति, तथा तदेव च तस्याबोधिलाभाय भवति, 'स' इति यस्यैतदसदाचरणं प्रदर्शितं, स तु शिष्यस्तदग्निसमारम्भणं पापायेत्येवं सम्बुध्यमान 'आदानीयं' ग्राह्यं सम्यग्दर्शनादि 'सम्यगुत्थाय' अभ्युपगम्य श्रुत्वा भगवदन्तिकेऽनगाराणां वा इहैकेषां साधूनां ज्ञातं भवति, किम्?, तद्दर्शयति—'एष'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३६]

दीप अनुक्रम [३८]

अग्निसमारम्भः ग्रन्थः–कर्महेतुत्वाद् एष एव मोह एष एव मार एष एव नरकस्तद्धेतुत्वादिति भावः, इत्येवमर्थं च गृद्धो लोको यत्करोति तद्दर्शयति—यदिदं विरूपरूपैः शस्त्रैरग्निकर्म समारभते तदारम्भेण चाग्निशस्त्रं समारभते तच्चारभमाणोऽन्याननेकरूपान् प्राणिनो विहिनस्तीति ॥ कथं पुनरग्निसमारम्भप्रवृत्ता नानाविधान् प्राणिनो विहिंसन्तीति दर्शयितुमाह—

से बेमि–संति पाणा पुढवीनिस्सिया तणणिस्सिया पत्तणिस्सिया कट्ठनिस्सिया गोमयणिस्सिया कयवरणिस्सिया, संति संपातिमा पाणा आहच्च संपयंति, अगणिं च खलु पुट्ठा एगे संघायमावज्जंति, जे तत्थ संघायमावज्जंति ते तत्थ परियावज्जंति, जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उद्दायंति (सू० ३७)

तदहं ब्रवीमि यथा नानाविधजीवहिंसनमग्निकायसमारम्भेण भवतीति। यथाप्रतिज्ञातार्थं दर्शयति—'सन्ति' विद्यन्ते 'प्राणा' जन्तवः, पृथिवीकायनिश्रिताः पृथिवीकायत्वेन परिणता इत्यर्थः, तदाश्रिता वा कृमिकुन्थुपिपीलिकागण्डूपदाहिमण्डूकवृश्चिककर्कटकादयः, तथा वृक्षगुल्मलतावितानादयः, तथा तृणपत्रनिश्रिताः पतङ्गेलिकादयः, तथा काष्ठनिश्रिता–घुणोद्देहिकापिपीलिकाऽण्डादयः, गोमयनिश्रिताः–कुन्थुपनकादयः, कचवरः–पत्रतृणधूलिसमुदायस्तन्निश्रिताः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३७]

दीप अनुक्रम [३८]

कृमिकीटपतङ्गादयः। तथा 'सन्ति' विद्यन्ते सम्पतितुमुत्प्लुत्योत्प्लुत्य गन्तुमागन्तुं वा शीलं येषां ते सम्पातिनः प्राणिनो –जीवा मक्षिकाभ्रमरपतङ्गमशकपक्षिवातादयः, एते च सम्पातिनः 'आहत्य' उपेत्य स्वत एव, यदिवा अत्यर्थं कदाचिद्वा अग्निशिखायां सम्पतन्ति च। तदेवं पृथिव्यादिनिश्रितानां जीवानां यद्भवति तद्दर्शयितुमाह—'अगणिं चे'त्यादि, रन्धनपचनतापनाद्यग्निगुणार्थिभिरवश्यमग्निसमारम्भो विधेयः, तत्समारम्भे च पृथिव्यादिनिश्रितानां जीवानामेता वक्ष्यमाणा अवस्था भवन्ति, छान्दसत्वात् तृतीयार्थे द्वितीया, ततश्चायमर्थः–अग्निना 'स्पृष्टाः'छुप्ता एके केचन सङ्घातम्– अधिकं गात्रसङ्कोचनं मयूरपिच्छवदापद्यन्ते, चशब्दस्याधिक्यार्थत्वात्, खलुशब्दोऽवधारणे, अग्नेरेवायं प्रतापो नापरस्येति, यदिवा सप्तम्यर्थे द्वितीया स्पृष्टशब्दश्च पतितवचनः, ततश्चायमर्थो भवति-अग्नावेव स्पृष्टाः–पतिता 'एके'शलभादयः 'सङ्घातं' समेकीभावेनाधिकं गात्रसङ्कोचनम् 'आपद्यन्ते' प्राप्नुवन्ति, ये च 'तत्र'अग्नौ पतिताः सङ्घातमापद्यन्ते ते प्राणिनः 'तत्र'अग्नौ पर्यापद्यन्ते, पर्यापत्तिः–सम्मूर्छनम्, ऊष्माभिभूता मूर्छामापद्यन्ते इत्यर्थः। अथ किमर्थं सूत्रकृता विभक्तिपरिणामोऽकारीति, उच्यते, मागधदेशीसमनुवृत्तेः व्याख्याविकल्पप्रदर्शनार्थं वा, अध्याहारादयोऽपि व्याख्याङ्गानीत्यनेन शिष्यो ज्ञापितो भवति। अथ के पुनस्तेऽध्याहारादय इति?, उच्यन्ते, अध्याहारो विपरिणामो व्यवहितकल्पना गुणकल्पना लक्षणा वाक्यभेदश्चेति, इह च द्वितीयाविभक्तेः सप्तमीपरिणामः कृत इति। ये च 'तत्र'अग्नौ पर्यापद्यन्ते ते प्राणिनः कृमिपिपीलिकाभ्रमरनकुलादयस्तत्राग्नावपद्रावन्ति-प्राणान् मुञ्चन्तीत्यर्थः, तदेवमग्निसमारम्भे सति न केवलमग्निजन्तूनां विनाशः किं त्वन्येषामपि पृथिवीतृणपत्रकाष्ठगोमयकचवराश्रितानां सम्पातिनां च व्यापत्तिरवश्य- ॥ ५५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३७]

दीप अनुक्रम [३८]

म्भाविनीति, अत एव च भगवत्यां भगवतोक्तम्—"दो पुरिसा सरिसवया अन्नमन्नेहिं सद्धिं अगणिकायं समारंभंति, तत्थ णं एगे पुरिसे अगणिकायं समुज्जालेति, एगे विज्झवेति, तत्थ णं के पुरिसे महाकम्मयराए? के पुरिसे अप्पकम्मयराए?, गोयमा! जे उज्जालेति से महाकम्मयराए, जे विज्झवेति से अप्पकम्मयराए" ॥ तदेवं प्रभूतसत्त्वोपमर्दनकरमग्न्यारम्भं विज्ञाय मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमतिभिश्च तत्परिहारः कार्य इति दर्शयितुमाह—

एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं अगणिसत्थं समारंभे नेवऽण्णेहिं अगणिसत्थं समारंभावेज्जा अगणिसत्थं समारंभमाणे अण्णे न समणुजाणेज्जा, जस्सेते अगणिकम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे (सू० ३८) त्ति बेमि ॥ इति चतुर्थ उद्देशकः ॥

'अत्र' अग्निकाये 'शस्त्रं' स्वकायपरकायभेदभिन्नं 'समारभभाणस्य' व्यापारयत इत्येते आरम्भाः पचनपाचनादयो बन्धहेतुत्वेनापरिज्ञाता भवन्ति, तथा अत्रैवाग्निकाये शस्त्रमसमारभमाणस्यैते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, यस्यैते अग्नि-

१ द्वौ पुरुषौ सदृशवयसौ अन्योऽन्यं समकमग्निकायं समारम्भयतः, तत्रैकः पुरुषोऽग्निकायं समुज्ज्वलयति, एको विध्यापयति, तत्र कः पुरुषो महाकर्मा कः पुरुषोऽल्पकर्मा?, गौतम! य उज्ज्वलयति स महाकर्मा यो विध्यापयति सोऽल्पकर्मा.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३८]

दीप अनुक्रम [३९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ५६ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः ५

कायसमारम्भा ज्ञपरिज्ञया ज्ञाता भवन्ति प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति स एव मुनिः परमार्थतः परिज्ञातकर्म्मेति ब्रवीमीति पूर्ववत्। इति शस्त्रपरिज्ञायां चतुर्थोद्देशकटीका समाप्ता ॥

उक्तश्चतुर्थोद्देशकः, साम्प्रतं पञ्चमः समारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–इहानन्तरोद्देशके तेजस्कायः प्रतिपादितः, तदनन्तरमविकलसुसाधुगुणप्रतिपत्तये क्रमायातवायुकायप्रतिपादनावसरे वनस्पतिकायजीवस्वरूपमाविर्भाव्यते, किं पुनः क्रमोल्लङ्घनकारणमिति, उच्यते, एष हि वायुरचाक्षुषत्वाद्दुःश्रद्धानः, अतः समधिगताशेषपृथिव्याद्येकेन्द्रियप्राणिगणस्वरूपः शिष्यः सुखमेव वायुजीवस्वरूपं प्रतिपत्स्यते, स एव च क्रमो येन शिष्याः जीवादितत्त्वं प्रति प्रोत्सहन्ते यथावत्प्रतिपत्तुमिति, वनस्पतिकायस्तु समस्तलोकप्रत्यक्षपरिस्फुटजीवलिङ्गकलापोपेतः, अतः स एव तावत्प्रतिपाद्यते, इत्यनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि वाच्यानि यावन्नामनिष्पन्ने निक्षेपे वनस्पत्युद्देशकः, तत्र वनस्पतेः स्वभेदकलापप्रतिपादनाय पूर्वप्रसिद्धार्थातिदेशद्वारेण निर्युक्तिकृदाह—

पुढवीए जे दारा वणसइकाएऽवि हुंति ते चेव। नाणत्ती उ विहाणे परिमाणुवभोगसत्थे य ॥ १२६ ॥

यानि पृथवीकायसमधिगतये द्वाराण्युक्तानि तान्येव वनस्पतौ द्रष्टव्यानि, नानात्वं तु प्ररूपणापरिमाणोपभोगशस्त्रेषु चशब्दाल्लक्षणे च द्रष्टव्यमिति ॥ तत्रादौ प्ररूपणास्वरूपनिर्ज्ञापनायाह— ॥ ५६ ॥

दुविह वणस्सइजीवा सुहुमा तह बायरा य लोगंमि। सुहुमा य सव्वलोए दो चेव य बायरविहाणा ॥१२७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययने पंचम उद्देशक: 'वनस्पतिकाय:' आरब्ध:,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३८]

दीप अनुक्रम [३९]

वनस्पतयो द्विविधाः—सूक्ष्मा बादराश्च, सूक्ष्माः सर्वलोकापन्नाश्चक्षुर्ग्राह्याश्च न भवन्त्येकाकारा एव, बादराणां पुनर्द्वे विधाने ॥ के पुनस्ते बादरविधाने इत्यत आह—

पत्तेया साहारण बायरजीवा समासओ दुविहा । बारसविहऽणेगविहा समासओ छव्विहा हुंति ॥ १२८ ॥

बादराः समासतः द्विविधाः—प्रत्येकाः साधारणाश्च, तत्र पत्रपुष्पमूलफलस्कन्धादीन् प्रति प्रत्येको जीवो येषां ते प्रत्येकजीवाः, साधारणास्तु परस्परानुविद्धानन्तजीवसङ्घातरूपशरीरावस्थानाः, तत्र प्रत्येकशरीरा द्वादशविधानाः, साधारणास्त्वनेकभेदाः, सर्वेऽप्येते समासतः षोढा प्रत्येतव्याः ॥ तत्र प्रत्येकतरुद्वादशभेदप्रत्यायनायाह—

रुक्खा गुच्छा गुम्मा लया य वल्ली य पव्वगा चेव । तणवलयहरियओसहिजलरुहकुहणा य बोद्धव्वा ॥१२९॥

वृक्ष्यन्त इति वृक्षाः, ते द्विविधाः—एकास्थिका बहुबीजकाश्च, तत्रैकास्थिकाः—पिचुमन्दाम्रकोशम्बशालाङ्कोल्लपीलुशल्लक्यादयः, बहुबीजकास्तु—उदुम्बरकपित्थास्तिकतिन्दुकबिल्वामलकपनसदाडिममातुलिङ्गादयः, गुच्छास्तु—वृन्ताकीकर्पासीजपाआढकीतुलसीकुसुम्भरीपिप्पलीनील्यादयः, गुल्मानि तु—नवमालिकासेरियककोरण्टकबन्धुजीवकबाणकरवीरसिन्दुवारविचकिलजातियूथिकादयः, लतास्तु—पद्मनागाशोकचम्पकचूतवासन्तीअतिमुक्तककुन्दलताद्याः, वल्ल्यस्तु—कुष्माण्डीकालिङ्गीत्रपुषीतुम्बीवालुङ्कीएलालुकीपटोल्यादयः, पर्वगाः पुनः—इक्षुवीरणशुण्ठशरवेत्रशतपर्ववंशनलवेणुकादयः, तृणानि तु—श्वेतिकाकुशदर्भपर्वकार्ज्जुनसुरभिकुरुविन्दादीनि, वलयानि च—तालतमालतक्कलीशालसरलाकेतकीकदलीक-

१ शतपत्री. प्र. २ वर्चका. प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३८]

दीप अनुक्रम [३९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ५७ ॥ | अध्ययनं १ उद्देशकः ५

न्दल्यादीनि, हरितानि–तन्दुलीयकाधूयारुहवस्तुलबदरकमार्जारपादिकाचिल्लीपालक्यादीनि, औषध्यस्तु–शालीव्रीहिगोधूमयवकलममसूरतिलमुद्गमाषनिष्पावकुलत्थातसीकुसुम्भकोद्रवकङ्ग्वादयः, जलरुहा–उदकावकपनकशैवलकलम्बुकापावककशेरुकउत्पलपद्मकुमुदनलिनपुण्डरीकादयः, कुहुणास्तु–भूमिस्फोटकाभिधानाः आयकायकुहुणकुण्डुक्कोद्देहलिकाशलाकासर्प्पच्छत्रादयः, एषां हि प्रत्येकजीवानां वृक्षाणां मूलस्कन्धकन्दत्वक्शालप्रवालादिष्वसंख्येयाः प्रत्येकं जीवाः, पत्राणि पुष्पाणि चैकजीवानि मन्तव्यानि, साधारणास्त्वनेकविधाः, तद्यथा–लोहीनिहुस्तुभायिकाअश्वकर्णीसिंहकर्णीशृङ्गबेरमालुकामूलककृष्णकन्दसूरणकन्दकाकोलीक्षीरकाकोलीप्रभृतयः ॥ 'सर्वेऽप्येते संक्षेपात् षोढा भवन्ती'त्युक्तं, के पुनस्ते भेदा इत्याह—

अग्गबीया मूलबीया खंधबीया चेव पोरबीया य। बीयरुहा समुच्छिम समासओ वणसईजीवा ॥ १३० ॥

तत्र कोरिण्टकादयोऽग्रबीजाः, कदल्यादयो मूलबीजाः, निहुशल्लकयरणिकादयः स्कन्धबीजाः, इक्षुवंशवेत्रादयः पर्वबीजाः, बीजरुहाः शालिव्रीह्यादयः, सम्मूर्च्छनजाः पद्मिनीशृङ्गाटकपाठशैवलादयः, एवमेते समासात्तरुजीवाः षोढा कथिताः, नान्ये सन्तीति प्रतिपत्तव्यं ॥ किंलक्षणाः पुनः प्रत्येकतरवो भवन्तीत्यत आह—

जह सगलसरिसवाणं सिलेसमिस्साण वत्तिया वट्टी। पत्तेयसरीराणं तह हुंति सरीरसंघाया ॥ १३१ ॥

यथेति दृष्टान्तोपन्यासार्थः, यथा सकलसर्षपाणां श्लेषयतीति श्लेषः–सर्जरसादिस्तेन मिश्रितानां 'वर्त्तिता' वलिता वर्तिः ॥ ५७ ॥

१ ०त्रिल्लरी० प्र. २ ०पावाक० प्र. ३ कुहणेति नि०. ४ ०बेरा० प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३८]

दीप अनुक्रम [३९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

तस्यां च वर्तौ प्रत्येकप्रदेशाः क्रमेण सिद्धार्थकाः स्थिताः, नान्योऽन्यानुवेधेन, चूर्णितास्तु कदाचिदन्योऽन्यानुवेधभाजोऽपि स्युरित्यतः सकलग्रहणं, यथाऽसौ वर्त्तिस्तथा प्रत्येकतरुशरीरसङ्घातः, यथा च सर्षपास्तथा तदधिष्ठायिनो जीवाः, यथा श्लेषविमिश्रितास्तथा रागद्वेषप्रचितकर्मपुद्गलोदयमिश्रिताः जीवाः, पश्चिमार्द्धेन गाथाया उपन्यस्तदृष्टान्तेन सह साम्यं प्रतिपादितं, तथेति शब्दोपादानादिति ॥ अस्मिन्नेवार्थे दृष्टान्तान्तरमाह—

जह वा तिलसकुलिया बहुएहिं तिलेहिँ मेलिया संती । पत्तेयसरीराणं तह हुंति सरीरसंघाया ॥ १३२ ॥

यथा वा तिलशष्कुलिका–तिलप्रधाना पिष्टमयपोलिका बहुभिस्तिलैर्निष्पादिता सती भवति, तथा प्रत्येकशरीराणां तरूणां शरीरसङ्घाता भवन्तीति द्रष्टव्यमिति ॥ साम्प्रतं प्रत्येकशरीरजीवानामेकानेकाधिष्ठितत्वप्रतिपिपादयिषयाऽऽह—

नाणाविहसंठाणा दीसंती एगजीविया पत्ता । खंधावि एगजीवा तालसरलनालिएरीणं ॥ १३३ ॥

नानाविधं–भिन्नं संस्थानं येषां तानि नानाविधसंस्थानानि पत्राणि यानि चैवंभूतानि दृश्यन्ते तान्येकजीवाधिष्ठितान्यवगन्तव्यानि, तथा स्कन्धा अप्येकजीवाधिष्ठितास्तालसरलनालिकेर्यादीनां, नात्रानेकजीवाधिष्ठितत्वं सम्भवतीति, अवशिष्टानां त्वनेकजीवाधिष्ठितत्वं सामर्थ्यात्प्रतिपादितं भवति ॥ साम्प्रतं प्रत्येकतरुजीवराशिपरिमाणाभिधित्सयाऽऽह—

पत्तेया पज्जत्ता सेढीऍ असंखभागमित्ता ते । लोगासंखप्पज्जत्तगाण साहारणाणंता ॥ १३४ ॥

प्रत्येकतरुजीवाः पर्याप्तकाः संवर्त्तितचतुरस्रीकृतलोकश्रेण्यसंख्येयभागवर्त्त्याकाशप्रदेशराशितुल्यप्रमाणाः, एते च पुन-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३८]

दीप अनुक्रम [३९]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ५८ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः५

बादरतेजस्कायपर्याप्तकराशेरसङ्ख्येयगुणाः, ये पुनरपर्याप्तकाः प्रत्येकतरुजन्तवः ते ह्यसङ्ख्येयानां लोकानां यावन्तः प्रदेशास्तावन्त इति, एतेऽप्यपर्याप्तका बादरतेजस्कायजीवराशेरसङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मास्तु वनस्पतयः प्रत्येकशरीरिणः पर्याप्तका अपर्याप्तका वा न सन्त्येव, साधारणास्त्वनन्ता इति विशेषानुपादानात्?, साधारणाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकभेदेन चतुर्विधा अपि पृथक् पृथगनन्तानां लोकानां यावन्तः प्रदेशास्तावन्त इति, अयं तु विशेषः–साधारणबादरपर्याप्तकेभ्यो बादरा अपर्याप्तका असंख्येयगुणाः बादरापर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्माः अपर्याप्तका असङ्ख्येयगुणास्तेभ्योऽपि सूक्ष्माः पर्याप्तकाः असङ्ख्येयगुणा इति ॥ सम्प्रत्येषां तरूणां यो जीवत्वं नेच्छति तं प्रति जीवत्वप्रतिपादनेच्छया निर्युक्तिकृदाह—

एएहिं सरीरेहिं पचक्खं ते परूविया जीवा । सेसा आणागिज्झा चक्खुणा जे न दीसंति ॥ १३५ ॥

'एतैः' पूर्वप्रतिपादितैस्तरुशरीरैः प्रत्यक्षप्रमाणविषयैः 'प्रत्यक्षं' साक्षात् 'ते' वनस्पतिजीवाः 'प्ररूपिताः' प्रसाधिताः, तथाहि—न ह्येतानि शरीराणि जीवव्यापारमन्तरेणैवंविधाकारभाञ्जि भवन्ति, तथा च प्रयोगः–जीवशरीराणि वृक्षाः, अक्षाद्युपलब्धिभावात्, पाण्यादिसङ्घातवत्, तथा कदाचित् सचित्ता अपि वृक्षाः, जीवशरीरत्वात्, पाण्यादिसङ्घातवदेव, तथा मन्दविज्ञानसुखादिमन्तस्तरवः, अव्यक्तचेतनानुगतत्वात्, सुप्तादिपुरुषवत्, तथा चोक्तम्—"वृक्षादयोऽक्षाद्युपलब्धिभावात्पाण्यादिसङ्घातवदेव देहाः । तद्वत्सजीवा अपि देहतायाः, सुप्तादिवत् ज्ञानसुखादिमन्तः ॥ १ ॥" 'शेषा' इति सूक्ष्मास्ते च चक्षुषा नोपलभ्यन्त इत्याज्ञया ग्राह्या इति, आज्ञा च भगवद्वचनमवितथमरक्तद्विष्टप्रणीतमिति श्रद्धातव्यमिति ॥ साम्प्रतं साधारणलक्षणमभिधित्सुराह—

॥ ५८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३८]

दीप अनुक्रम [३९]

साहारणमाहारो साहारण आणपाणगहणं च । साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं एयं ॥ १३६ ॥

समानम्-एकं धारणम्-अङ्गीकरणं शरीराहारादेर्येषां ते साधारणाः तेषां साधारणानाम्-अनन्तकायानां जीवानां 'साधारणं' सामान्यमेकमाहारग्रहणं तथा प्राणापानग्रहणं च साधारणमेव, एतत्साधारणलक्षणम्, एतदुक्तं भवति-एकस्मिन्नाहारितवति सर्वेऽप्याहारितवन्तस्तथैकस्मिन्नुच्छ्वसिते निःश्वसिते वा सर्वेऽप्युच्छ्वसिता निःश्वसिता वेति ॥ अमुमेवार्थं स्पष्टयितुमाह—

एगस्स उ जं गहणं बहूण साहारणाण ते चेव । जं बहुयाणं गहणं समासओ तंपि एगस्स ॥ १३७ ॥

एको यदुच्छ्वासनिःश्वासयोग्यपुद्गलोपादानं विधत्ते बहूनामपि साधारणजीवानां तदेव भवति, तथा यच्च बहवो ग्रहणमकार्षुरेकस्यापि तदेवेति ॥ अथ ये बीजात्प्ररोहन्ति वनस्पतयस्तेषां कथमाविर्भाव इत्यत आह—

जोणिब्भूए बीए जीवो वक्कमइ सो व अन्नो वा । जोऽवि य मूले जीवो सो चिय पत्ते पढमयाए ॥ १३८ ॥

अत्र भूतशब्दोऽवस्थावचनः, योन्यवस्थे बीजे योनिपरिणाममजहतीत्यर्थः, बीजस्य हि द्विविधावस्था-योन्यवस्था अयोन्यवस्था च, यदा योन्यवस्थां न जहाति बीजमुज्झितं च जन्तुना तदा योनिभूतमुच्यते, योनिस्तु जन्तोरुत्पत्तिस्थानमविनष्टमिति, तस्मिन् बीजे योनिभूते जीवो 'व्युत्क्रामति' उत्पद्यते, स एव पूर्वको बीजजीवोऽन्यो वाऽऽगत्य तत्रोत्पद्यते, एतदुक्तं भवति-यदा जीवेनायुषः क्षयाद्बीजपरित्यागः कृतो भवति, तस्य च यदा बीजस्य क्षित्युदकादिसंयोगस्तदा कदाचित्स एव प्राक्तनो जीवस्तत्रागत्य परिणमते कदाचिदन्य इति, यश्च मूलतया जीवः परिणमते स एव प्रथम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३८]

दीप अनुक्रम [३९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ५९ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः ५

पत्रतयाऽपीति, एकजीवकर्तृके मूलपत्रे इतियावत्, प्रथमपत्रकं च याऽसौ बीजस्य समुच्छूनावस्था भूजलकालापेक्षा सैवोच्यत इति, नियमप्रदर्शनमेतत्, शेषं तु किशलयादि सकलं न मूलजीवपरिणामाविर्भावितमेवेत्यवगन्तव्यमिति ॥ यत उक्तम्—"सव्वोऽवि किसलओ खलु उग्गममाणो अणन्तओ भणिओ"[1]इत्यादि ॥ तथाऽपरं साधारणलक्षणमभिधित्सुराह—

चक्कागं भज्जमाणस्स गंठी चुण्णघणो भवे। पुढविसरिसभेएणं अणंतजीवं वियाणेहि ॥ १३९ ॥

यस्य मूलकन्दत्वक्पत्रपुष्पफलादेर्भज्यमानस्य चक्रकं भवति, चक्राकारः समच्छेदो भङ्गो भवतीतियावत्, यस्य च ग्रन्थिः-पर्व भङ्गस्थानं वा 'चूर्णेन' रजसा 'घनो' व्याप्तो भवति, यो वा भिद्यमानो वनस्पतिः पृथिवीसदृशेन भेदेन केदारोपरिशुष्कतरिकावत् पुटभेदेन भिद्यते, तमनन्तकायं विजानीहि ॥ तथा लक्षणान्तरमाह—

गूढसिरागं पत्तं सच्छीरं जं च होइ निच्छीरं। जं पुण पणट्ठसंधिय अणंतजीवं वियाणाहि ॥ १४० ॥

स्पष्टार्थो ॥ एवं साधारणजीवान् लक्षणतः प्रतिपाद्य सम्प्रति नामग्राहमनन्तान् वनस्पतीन् दर्शयितुमाह—

सेवालकत्थभाणियअवए पणए य किंनए य हढे। एए अणंतजीवा भणिया अण्णे अणेगविहा ॥ १४१ ॥

सेवालकत्थभाणिकाऽवकपनककिण्वहठादयोऽनन्तजीवा गदिता अनेकप्रकाराश्चान्येऽपीत्थमवगन्तव्या इति ॥ सम्प्रति प्रत्येकतरूणामेकादिजीवपरिगृहीतशरीरदृश्यत्वं प्रतिपिपादयिषयाह—

एगस्स दुण्ह तिण्ह व संखिज्जाण व तहा असंखाणं। पत्तेयसरीराणं दीसंति सरीरसंघाया ॥ १४२ ॥ ॥ ५९ ॥

[1] सर्वोऽपि किशलयः खलूद्गच्छन्ननन्तको भणितः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[३८]

दीप
अनुक्रम
[३९]

एकजीवपरिगृहीतशरीरं तालसरलनालिकेर्यादिस्कन्धः, स च चक्षुर्ग्राह्यः, तथा बिसमृणालकर्णिकाकुणककटाहानामेकजीवपरिगृहीतत्वं चक्षुर्दृश्यत्वं च, द्वित्रिसङ्ख्येयासङ्ख्येयजीवपरिगृहीतत्वमप्येवं दृश्यतया भावनीयमिति ॥ किमनन्तानामप्येवं ?, नेत्यत आह—

इक्कस्स दुण्ह तिण्ह व संखिज्जाण व न पासिउं सक्का। दीसंति सरीराइं निओयजीवाणऽणंताणं ॥ १४२ ॥

नैकादीनामसङ्ख्येयावसानानामनन्ततरुजीवानां शरीराण्युपलभ्यन्ते, कुतः ?, अभावात्, न ह्येकादिजीवपरिगृहीतान्यनन्तानां शरीराणि सन्ति, अनन्तजीवपिण्डत्वादेव, कथं तर्ह्युपलभ्यास्ते भवन्तीति दर्शयति–दृश्यन्ते शरीराणि बादरनिगोदानामनन्तजीवानां, सूक्ष्मनिगोदानां तु नोपलभ्यन्ते, अनन्तजीवसङ्घातत्वे सत्यप्यतिसूक्ष्मत्वादिति भावः, निगोदास्तु नियमत एवानन्तजीवसङ्घाता भवन्तीति, उक्तं च—"गोला य असंखेज्जा हुंति णिओआ असङ्ख्या गोले। एक्केको य निओए अणंतजीवो मुणेयव्वो ॥ १ ॥" एवं वनस्पतीनां वृक्षादिप्रत्येकादिभेदात्तथा वर्णगन्धरसस्पर्शभेदात् सहस्राग्रशो विधानानि सङ्ख्येयानि योनिप्रमुखानि शतसहस्राणि भेदानामवसेयानीति, तथाहि-वनस्पतीनां संवृता योनिः, सा च सचित्ताचित्तमिश्रभेदात् त्रिधा, तथा शीतोष्णमिश्रभेदाच्च, तथा प्रत्येकतरूणां दश लक्षा योनिभेदानां, साधारणानां च चतुर्दश, कुलकोटीनां, द्वयोरपि पञ्चविंशतिकोटिशतसहस्राणीति ॥ उक्तं विधानद्वारम्, इदानीं परिमाणमभिधीयते–तत्र प्रथमं सूक्ष्मानन्तजीवानां दर्शयितुमाह—

१ गोलाश्चासङ्ख्येया भवन्ति निगोदा असङ्ख्येया गोले। एकैकश्च निगोदोऽनन्तजीवो मुणितव्यः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३८]

दीप अनुक्रम [३९]

पत्थेण व कुडवेण व जह कोइ मिणिज्ज सव्वधन्नाइं । एवं मविज्जमाणा हवंति लोया अणंता उ ॥ १४४ ॥

प्रस्थकुडवादिना यथा कश्चित्सर्वधान्यानि प्रमिणुयात्, मित्वा चान्यत्र प्रक्षिपेद्, एवं यदि नाम कश्चित्साधारणजीवराशिं लोककुडवेन मित्वाऽन्यत्र प्रक्षिपेत् तत एवं मीयमाना अनन्ता लोका भवन्तीति ॥ इदानीं बादरनिगोदपरिमाणाभिधित्सयाऽऽह—

जे बायरपज्जत्ता पयरस्स असंखभागमित्ता ते । सेसा असंखलोया तिन्निवि साहारणाणंता ॥ १४५ ॥

ये पर्याप्तकबादरनिगोदास्ते संवर्त्तितचतुरश्रीकृतसकललोकप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्तिप्रदेशराशिपरिमाणा भवन्ति, एते पुनः प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिपर्याप्तकजीवेभ्योऽसङ्ख्येयगुणाः, शेषास्त्रयोऽपि राशयः प्रत्येकमसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणाः, के पुनस्त्रय इति?, उच्यन्ते, अपर्याप्तकबादरनिगोदा अपर्याप्तकसूक्ष्मनिगोदाः पर्याप्तकसूक्ष्मनिगोदाः, एते च क्रमशो बहुतरका द्रष्टव्या इति, साधारणजीवास्तेभ्योऽनन्तगुणाः, एतच्च जीवपरिमाणं, प्राक्तनं तु राशिचतुष्टयं निगोदपरिमाणमिति ॥ परिमाणद्वारानन्तरमुपभोगद्वारमभिधित्सुराह—

आहारे उवगरणे सयणासण जाण जुग्गकरणे य । आवरण पहरणेसु अ सत्थविहाणेसु अ बहुसुं ॥१४६॥

आहारः—फलपत्रकिशलयमूलकन्दत्वगादिनिर्वर्त्त्यः, उपकरणं व्यजनकटककवलकार्गलादि, शयनं—खट्वाफलकादि, आसनम्—आसन्दकादि, यानं—शिबिकादि, युग्यं—गन्त्रिकादि, आवरणम्—फलकादि, प्रहरणं—लकुटमुसुण्ढ्यादि, शस्त्रविधानानि च बहूनि तन्निर्वर्त्त्यानि, शरदात्रखड्गक्षुरिकादिगण्डोपयोगित्वादिति ॥ तथाऽपरोऽपि परिभोगविधिः, तद्दर्शनायाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३८]

दीप अनुक्रम [३९]

आउज्ज कट्ठकम्मे गंधंगे वत्थ मल्ल जोए य। झावणवियावणेसु अ तिल्लविहाणे अ उज्जोए ॥ १४७ ॥

आतोद्यानि--पटहभेरीवंशवीणाझल्लर्यादीनि, काष्ठकर्म्म--प्रतिमास्तम्भद्वारशाखादि, गन्धाङ्गानि--वालकप्रियङ्गुपत्रकदमनकत्वक्कन्दनोशीरदेववदार्वादीनि, वस्त्राणि--वल्कलकार्पासमयादीनि, माल्ययोगा--नवमालिकाबकुलचम्पकपुन्नागाशोकमालतीविचकिलादयः, ध्मापनं--दाहो भस्मसात्करणमिन्धनैः, वितापनं--शीताभ्यर्दितस्य शीतापनयनाय काष्ठप्रज्वालनात्, तैलविधानं--तिलातसीसर्षपेङ्गुदीज्योतिष्मतीकरञ्जादिभिः, उद्योतो--वर्त्तितृणचूडाकाष्ठादिभिरिति ॥ एवमेतान्युपभोगस्थानानि प्रतिपाद्य तदुपसञ्जिहीर्षुराह--

एएहिं कारणेहिं हिंसंति वणस्सई बहू जीवे। सायं गवेसमाणा परस्स दुक्खं उदीरंति ॥ १४८ ॥

‘एतैः’ गाथाद्वयोपात्तैः ‘कारणैः’ प्रयोजनैः ‘हिंसन्ति’ व्यापादयन्ति प्रत्येकसाधारणवनस्पतिजीवान् बहून् वनस्पतिसमारम्भिणः पुरुषाः, किंभूतास्त इति दर्शयति--‘सातं’ सुखं तदन्वेषिणः ‘परस्य’ वनस्पत्याद्येकेन्द्रियादेः ‘दुःखं’ बाधामुत्पादयन्ति ॥ साम्प्रतं शस्त्रमुच्यते--तच्च द्विधा-द्रव्यभावभेदात्, द्रव्यशस्त्रमपि समासविभागभेदात् द्विधैव, तत्र समासद्रव्यशस्त्राभिधित्सयाऽऽह--

कप्पणिकुहाणिअसियगदत्तियकुद्दालवासिपरसू अ। सत्थं वणस्सईए हत्था पाया मुहं अग्गी ॥ १४९ ॥

कल्प्यते--छिद्यते यया सा कल्पनी--शस्त्रविशेषः, कुठारी प्रसिद्धैव, असियगं--दात्रं, दात्रिका--प्रसिद्धा, कुद्दालकवा-
आ. सू. ११ सिपरशवश्च, एते वनस्पतेः शस्त्रं, तथा हस्तपादमुखाग्नयश्च इत्येतत्सामान्यशस्त्रमिति ॥ विभागशस्त्राभिधित्सयाऽऽह--

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [३९]

दीप अनुक्रम [४०]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ६१ ॥ | अध्ययनं १ उद्देशकः ५

किंची सकायसत्थं किंची परकाय तदुभयं किंचि। एयं तु दव्वसत्थं भावे य असंजमो सत्थं ॥ १५० ॥

किञ्चित् स्वकायशस्त्रं–लकुटादि किञ्चिच्च परकायशस्त्रं–पाषाणाद्यादि तथोभयशस्त्रं–दात्रदात्रिकाकुठारादि, एतद् द्रव्यशस्त्रं, भावशस्त्रं पुनरसंयमः दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायलक्षण इति ॥ सकलनिर्युक्त्यर्थपरिसमाप्तिप्रचिकटयिषयाऽऽह—

सेसाइं दाराइं ताइं जाइं हवंति पुढवीए। एवं वणस्सईए निज्जुत्ती कित्तिया एसा ॥ १५१ ॥

उक्तव्यतिरिक्तशेषाणि तान्येव द्वाराणि यानि पृथिव्यामभिहितानि ततस्तद्द्वाराभिधानाद्वनस्पतौ निर्युक्तिः 'कीर्त्तिता' व्यावर्णितेति ॥ साम्प्रतं सूत्रानुगमे अस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं, तच्चेदम्—

तं णो करिस्सामि समुट्ठाए, मत्ता मइमं, अभयं विदित्ता, तं जे णो करए, एसोवरए, एत्थोवरए, एस अणगारेत्ति पवुच्चई (सू० ३९)

अस्य चानन्तरपरम्परादिसूत्रैः सम्बन्धः प्राग्वद्वाच्यः, उक्तं प्राक् 'सातान्वेषिणो हि वनस्पतिजन्तूनां दुःखमुदीरयन्ति, ततश्च तन्मूलमेव दुःखगहने संसारसागरे भ्राम्यन्ति सत्त्वाः' इत्येवं विदितकटुकविपाकः समस्तवनस्पतिसत्त्वविषयविमर्दनिवृत्तिमात्यन्तिकीमात्मनि दर्शयन्नाह—'तत्' वनस्पतीनां दुःखमहं दृष्टप्रत्यपायो न करिष्ये, यदिवा तद्दुःखोत्पत्तिनिमित्तभूतं वनस्पतावारम्भं–छेदनभेदनादिरूपं नो करिष्ये मनोवाक्कायैः, तथाऽपरैर्न कारयिष्ये, तथा कुर्वे- ॥ ६१ ॥
तश्चान्यान्नानुमंस्ये, किं कृत्वेति दर्शयति–सर्वज्ञोपदिष्टमार्गानुसृत्या सम्यक् प्रव्रज्योत्थानेनोत्थाय समुत्थाय, प्रव्रज्यां

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[३९]

दीप
अनुक्रम
[४०]

प्रतिपद्येत्यर्थः, तदेवं वर्जितसकलसावद्यारम्भकलापः संस्तद्वनस्पतिदुःखं तदारम्भं वा नो करिष्यामीति, अनेन च संयमक्रिया दर्शिता, न च क्रियात एव मोक्षावाप्तिः, किं तर्हि ?, ज्ञानक्रियाभ्यां, तदुक्तम्—"नाणं किरियारहियं किरियामेत्तं च दोऽवि एगन्ता । न समत्था दाउं जे जम्ममरणदुक्खदाहाइं ॥ १ ॥" यत एवमतो विशिष्टमोक्षकारणभूतज्ञानप्रतिपिपादयिषयाऽऽह—'मत्ता मइमं' मत्वा–ज्ञात्वा अवबुध्य यथावत् जीवान्, मतिरस्यास्तीति मतिमान्, मतिमानेवोपदेशार्हो भवतीत्यतस्तद्द्वारेणैव शिष्यामन्त्रणं हे मतिमन् ! प्रव्रज्यां प्रतिपद्य जीवादिपदार्थांश्च ज्ञात्वा मोक्षमवाप्नोतीति, सम्यग्ज्ञानपूर्विका हि क्रिया फलवतीति दर्शितं भवति । पुनरत्रैवाह—'अभयं विदित्ता' अविद्यमानं भयमस्मिन्सत्त्वानामित्यभयः–संयमः, स च सप्तदशविधानस्तं चाभयं–सर्वभूतपरिपालनात्मकं संसारसागरान्निर्वाहकं विदित्वा वनस्पत्यारम्भान्निवृत्तिर्विधेयेति । एतदेव दर्शयितुमाह—'तं जे नो करए' इत्यादि, 'तं' वनस्पत्यारम्भं 'यो' विदिततदारम्भकटुकविपाकः नो कुर्यात्, तस्य प्रतिविशिष्टेष्टफलावाप्तिर्नान्यस्यान्धमूढ्या प्रवर्त्तमानस्य, अभिलषितविप्रकृष्टस्थानप्राप्तिप्रवृत्तान्धक्रियाव्याघातवदिति मन्तव्यं, ज्ञानमपि क्रियाहीनं न मोक्षाय, गृहान्तर्दह्यमाननिनङ्क्षुपङ्गुचक्षुर्ज्ञानवदिति, एवं ज्ञात्वाऽभ्युपेत्य च तत्परिहारः कर्त्तव्य इति दर्शितं भवति । एवं यः सम्यग्ज्ञानपूर्विकां निवृत्तिं करोति स एव समस्तारम्भनिवृत्त इति दर्शयति—'एसोवरए'त्ति एष एव सर्वस्मादारम्भाद्वनस्पतिविषयादुपरतो यो यथावत् ज्ञात्वाऽऽरम्भं न करोतीति, स पुनरेवंविधनिवृत्तिभाक्किं शाक्यादिष्वपि सम्भवत्युतेहैव प्रवचन इति दर्शयति—'एत्थोव-

१ ज्ञानं क्रियारहितं क्रियामात्रं च द्वे अप्येकान्तात् । न समर्थे दातुं यानि जन्ममरणदुःखदाहकानि ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [३९]

दीप अनुक्रम [४०]

रए'त्ति एतस्मिन्नेव जैनेन्द्रे प्रवचने परमार्थत उपरतो नान्यत्र, यथाप्रतिज्ञातनिरवद्यानुष्ठायित्वादुपरतव्यपदेशभाग् भवति न शेषाः शाक्यादयः, तद्विपरीतत्वाद्, एष एव च सम्पूर्णानगारव्यपदेशमश्नुते इति दर्शयति—'एस अणगारेत्ति पवुच्चई' 'एषः' अतिक्रान्तसूत्रार्थव्यवस्थितोऽविद्यमानागारोऽनगारः प्रकर्षेण उच्यते प्रोच्यते इति, किंकृतः प्रकर्षः ?, अनगारव्यपदेशकारणभूतगुणकलापसम्बन्धकृतः प्रकर्षः, इतिशब्दोऽनगारव्यपदेशकारणपरिसमाप्तिद्योती, एतावदनगारलक्षणं नान्यदिति, ये पुनः प्रोज्झितपारमार्थिकानगारगुणाः शब्दादीन्विषयानङ्गीकृत्य प्रवर्त्तन्ते ते तु नापेक्षन्ते वनस्पतीन् जीवान्, यतो भूयांसः शब्दादयो गुणा वनस्पतिभ्य एव निष्पद्यन्ते, शब्दादिगुणेष्वेव वर्त्तमाना रागद्वेषविषमविषविघूर्णमानलोललोचना नरकादिचतुर्विधगत्यन्तःपातिनो बोद्धव्याः, तदन्तःपातिन एव च शब्दादिविषयाभिष्वङ्गिणो भवन्तीति ॥ अस्यार्थस्य प्रसिद्धये गतप्रत्यागतलक्षणमितरेतरावधारणफलं सूत्रमाह—

जे गुणे से आवट्टे जे आवट्टे से गुणे (सू० ४०)

यो 'गुणः' शब्दादिकः स आवर्त्तः, आवर्त्तन्ते-परिभ्रमन्ति प्राणिनो यत्र स आवर्त्तः-संसारः, इह च कारणमेव कार्यत्वेन व्यपदिश्यते यथा नड्वलोदकं पादरोगः, एवं य एते शब्दादयो गुणाः स आवर्त्तः, तत्कारणत्वात्, अथवैकवचनोपादानात्पुरुषोऽभिसम्बध्यते, यः शब्दादिगुणे वर्त्तते स आवर्त्ते वर्त्तते, यश्चावर्त्ते वर्त्तते स गुणे वर्तत इति, अत्र कश्चिच्चोद्यचञ्चुराह-यो गुणेषु वर्त्तते स आवर्त्ते वर्त्तत इति साधु, यः पुनरावर्त्ते वर्त्तते नासौ नियमत एव गुणेषु वर्त्तते, यस्मात्साधवो वर्त्तन्त आवर्त्ते न गुणेषु तदेतत्कथमिति, अत्रोच्यते, सत्यम्, आवर्त्ते यतयो वर्त्तन्ते न गुणेषु, ॥ ६२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[४०]

दीप
अनुक्रम
[४१]

किन्तु रागद्वेषपूर्वकं गुणेषु वर्तनमिहाधिक्रियते, तच्च साधूनां न सम्भवति, तदभावात्, आवर्त्तोऽपि संसरणरूपो दुःखात्मको न सम्भवति, सामान्यतस्तु संसारान्तःपातित्वं सामान्यशब्दादिगुणोपलब्धिश्च सम्भवत्येवातो नोपलब्धिः प्रतिषिध्यते, रागपरिणामो द्वेषपरिणामो वा यस्तत्र स प्रतिषिध्यते, तथा चोक्तम्—“कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं पेम्मं नाभिनिवेसए” इत्यादि, तथा—“न शक्यं रूपमद्रष्टुं, चक्षुर्गोचरमागतम्। रागद्वेषौ तु यौ तत्र, तौ बुधः परिवर्जयेत् ॥ १ ॥” कथं पुनर्गुणभूयस्त्वं वनस्पतिभ्य इति प्रदर्श्यते–वेणुवीणापटहमुकुन्दादीनामातोद्यविशेषाणां वनस्पतेरुत्पत्तिः, ततश्च मनोहराः शब्दा निष्पद्यन्ते, प्राधान्यमत्र वनस्पतेर्विवक्षितं, अन्यथा तु तन्त्रीचर्मपाण्यादिसंयोगाच्छब्दनिष्पत्तिरिति, रूपं पुनः काष्ठकर्मस्त्रीप्रतिमादिषु गृहतोरणवेदिकास्तम्भादिषु च चक्षूरमणीयं, गन्धा अपि हि कर्पूरपाटलालवलीलवङ्गकेतकीसरसचन्दनागुरुकक्कोलकेलाजातिफलपत्रिकाकेसरमांसीत्वक्पत्रादीनां सुरभयो गन्धेन्द्रियाह्लादकारिणः प्रादुर्भवन्ति, रसास्तु बिसमृणालमूलकन्दपुष्पफलपत्रकण्टकमञ्जरीत्वगङ्कुरकिसलयारविन्दकेसरादीनां जिह्वेन्द्रियप्रह्लादिनो निष्पद्यन्ते अतिबहव इति, तथा स्पर्शाः पद्मिनीपत्रकमलदलमृणालवल्कलदुकूलशाटकोपधानतूलिकप्रच्छादनपटादीनां स्पर्शनेन्द्रियसुखाः प्रादुष्ष्यन्ति, एवमेतेषु वनस्पतिनिष्पन्नेषु शब्दादिगुणेषु यो वर्त्तते स आवर्त्ते वर्त्तते, यश्च आवर्त्तवर्त्ती स रागद्वेषात्मकत्वात् गुणेषु वर्त्तत इति, स चावर्त्तो नामादिभेदाच्चतुर्द्धा, नामस्थापने क्षुण्णे, द्रव्यावर्त्तः स्वामित्वकरणाधिकरणेषु यथासम्भवं योज्यः, स्वामित्वे नद्यादीनां क्वचित्प्रविभागे जलपरिभ्रमणं द्रव्यस्यावर्त्तः,

१ कर्णसौख्येषु शब्देषु प्रेम नाभिनिवेशयेत्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४०]

दीप अनुक्रम [४१]

द्रव्याणां वा हंसकारण्डवचक्रवाकादीनां व्योम्नि क्रीडतामावर्त्तनादावर्त्तः, करणे तु तेनैव जलद्रव्येण भ्रमता यदन्यदावर्त्तते तृणकलिञ्चादि स द्रव्येणावर्त्तः, तथा त्रपुसीसकलोहरजतसुवर्णैरावर्त्यमानैर्यदन्यत्तदन्तःपात्यावर्त्यते स द्रव्यैरावर्त्तत इति, अधिकरणविवक्षायामेकस्मिन् जलद्रव्ये आवर्त्तस्तथा रजतसुवर्णरीतिकात्रपुसीसकेष्वेकस्थीकृतेषु बहुषु द्रव्येष्वावर्त्तः, भावावर्त्तो नामान्योऽन्यभावसङ्क्रान्तिः, औदयिकभावोदयाद्वा नरकादिगतिचतुष्टयेऽसुमानावर्त्तते, इह च भावावर्त्तेनाधिकारो न शेषैरिति ॥ अथ य एते गुणाः संसारावर्त्तकारणभूताः शब्दादयो वनस्पतेरभिनिर्वृत्तास्ते किं नियतदिग्देशभाजः उत सर्व्वदिक्षु इत्यत आह—

उड्ढं अहं तिरियं पाईणं पासमाणे रूवाइं पासति, सुणमाणे सद्दाइं सुणेति, उड्ढं अहं पाईणं मुच्छमाणे रूवेसु मुच्छति, सद्देसु आवि (सू० ४१)

प्रज्ञापकदिगङ्गीकरणादूर्द्ध्वदिग्व्यवस्थितं रूपगुणं पश्यति प्रासादतलहर्म्यादिषु, 'अध'मित्यवाङ् अधस्तात् गिरिशिखरप्रासादाधिरूढोऽधोव्यवस्थितं रूपगुणं पश्यति, अधःशब्दार्थे अवाङित्ययं वर्त्तते, गृहभित्त्यादिव्यवस्थितं रूपगुणं तिर्यक् पश्यति, तिर्यक्शब्देन चात्र दिशोऽनुदिशश्च परिगृह्यन्ते, ताश्चेमाः—'प्राचीन'मिति पूर्वा दिग्, एतच्चोपलक्षणम्, अन्या अप्येतदाद्यास्तिर्यग्दिशो द्रष्टव्या इति, एतासु दिक्षु पश्यन् चक्षुर्ज्ञानपरिणतो रूपादिद्रव्याणि चक्षुर्ग्राह्यतया परिणतानि पश्यति–उपलभत इत्यर्थः, तथा तासु च शृण्वन् शृणोति शब्दानुपयुक्तः श्रोत्रेण नान्यथेति ॥ अत्रोपलब्धिमात्रं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४१]

दीप अनुक्रम [४२]

प्रतिपादितं, न चोपलब्धिमात्रात्संसारप्रपातः, किन्तु यदि मूर्च्छां रूपादिषु करोति, ततोऽस्य बन्ध इति दर्शयितुमाह— 'उड्ढ'मित्यादि पुनरूर्ध्वादेर्मूर्छासम्बन्धनार्थमुपादानं, मूर्छन् रूपेषु मूर्छति, रागपरिणामं यान् रज्यते रूपादिष्वित्यर्थः, एवं शब्देष्वपि मूर्छति, अपिशब्दः सम्भावनायां समुच्चये वा, रूपशब्दविषयग्रहणाच्च शेषा अपि गन्धरसस्पर्शा गृहीता भवन्ति, 'एकग्रहणे तज्जातीयानां ग्रहणाद्, आद्यन्तग्रहणाद्वा तन्मध्यग्रहणमवसेयमिति ॥ एवं विषयलोकमाख्याय विवक्षितमाह—

एस लोए वियाहिए एत्थ अगुत्ते अणाणाए (सू० ४२)

'एष' इति रूपरसगन्धस्पर्शशब्दविषयाख्यो लोको व्याख्यातः, लोक्यते परिच्छिद्यते इतिकृत्वा, एतस्मिंश्च प्रस्तुते शब्दादिगुणलोकेऽगुप्तो यो मनोवाक्कायैः मनसा द्वेष्टि रज्यते वा वाचा प्रार्थनं शब्दादीनां करोति कायेन शब्दादिविषयदेशमभिसर्पति, एवं यो ह्यगुप्तो भवति सोऽनाज्ञायां वर्त्तते, न भगवत्प्रणीतवचनानुसारीतियावदिति ॥ एवंगुणश्च यत्कुर्यात्तदाह—

पुणो पुणो गुणासाए, वंकसमायारे (सू० ४३)

ततश्चासावसकृच्छब्दादिगुणलुब्धो न शक्नोत्यात्मानं शब्दादिगृद्धेर्निवर्त्तयितुम्, अनिवर्त्तमानश्च पुनः पुनर्गुणास्वादो भवति, क्रियासातत्येन शब्दादिगुणानास्वादयतीत्यर्थः, तथा च यादृशो भवति तद्दर्शयति-वक्रः–असंयमः कुटिलो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३]

दीप अनुक्रम [४४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ६४ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः५

नरकादिगत्याभिमुख्यप्रवणत्वात्, समाचरणं समाचारः—अनुष्ठानं, वक्रः समाचारो यस्यासौ वक्रसमाचारः, असंयमानुष्ठायीत्यर्थः, अवश्यमेव शब्दादिविषयाभिलाषी भूतोपमर्दकारीत्यतो वक्रसमाचारः, प्राक् शब्दादिविषयलवसमास्वादनाद्गृद्धः पुनरात्मानमाचारयितुमसमर्थत्वादपथ्याम्रफलभोजिराजवद्विनाशमाशु संश्रयत इति ॥ एवं चासौ नितरां जितः शब्दादिविषयसमास्वादनात् 'खंतपुत्तोव्व' इदमाचरति—

पमत्तेऽगारमावसे (सू० ४४)

प्रमत्तो विषयविषमूर्छितः 'अगारं' गृहमावसति, योऽपि द्रव्यलिङ्गसमन्वितः शब्दादिविषयप्रमादवान् असावपि विरतिरूपभावलिङ्गरहितत्वात् गृहस्थ एवेति ॥ अन्यतीर्थिकाः पुनः सर्वदा सर्वथाऽन्यथावादिनोऽन्यथाकारिण इति दर्शयितुमाह—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मोत्ति एगे पवदमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइकम्मसमारंभेणं वणस्सइसत्थं समारभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसंति, तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेदिता, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जातीमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव वणस्सइसत्थं समारंभइ अण्णेहिं वा वणस्सइसत्थं समारंभावेइ अण्णे वा वणस्सइसत्थं समारभमाणे ॥ ६४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४५]

दीप अनुक्रम [४६]

समणुजाणइ, तं से अहियाए तं से अबोहीए, से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवति—एस खलु गंथे एस खलु मोहे एस खलु मारे एस खलु णरए, इच्चत्थं गड्ढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइकम्मसमारंभेणं वणस्सइसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसंति (सू० ४५)

प्राग्वत् ज्ञेयं, नवरं वनस्पत्यालापो विधेय इति ॥ साम्प्रतं वनस्पतिजीवास्तित्वे लिङ्गमाह—

से बेमि इमंपि जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं इमंपि बुड्ढिधम्मयं एयंपि बुड्ढिधम्मयं इमंपि चित्तमंतयं एयंपि चित्तमंतयं इमंपि छिण्णं मिलाइ एयंपि छिण्णं मिलाइ इमंपि आहारगं एयंपि आहारगं इमंपि अणिच्चयं एयंपि अणिच्चयं इमंपि असासयं एयंपि असासयं इमंपि चओवचइयं एयंपि चओवचइयं इमंपि विपरिणामधम्मयं एयंपि विपरिणामधम्मयं (सू० ४६)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४६]

दीप अनुक्रम [४७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ६५ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः ५

सोऽहमुपलब्धतत्त्वो ब्रवीमि, अथवा वनस्पतिचैतन्यं प्रत्यक्षप्रमाणसमधिगम्यमानस्वरूपं यत्तदहं ब्रवीमि, यथा-प्रतिज्ञातमर्थं दर्शयति—'इमंपि जाइधम्मयं'ति इहोपदेशदानाय सूत्रारम्भस्तद्योग्यश्च पुरुषो भवत्यतस्तस्य सामर्थ्येन सन्निहितत्वात्तच्छरीरं प्रत्यक्षासन्नवाचिनेदमा परामृशति, इदमपि—मनुष्यशरीरं, जननं-जातिरुत्पत्तिस्तद्धर्मकम्, एतदपि वनस्पतिशरीरं तद्धर्म्मकं—तत्स्वभावमेव, इतिपूर्वकोऽपिशब्दः सर्वत्र यथाशब्दार्थे द्वितीयस्तु समुच्चये व्याख्येयः, ततश्चायमर्थः—यथा मनुष्यशरीरं बालकुमारयुववृद्धतापरिणामविशेषवत् चेतनावत्सदाधिष्ठितं प्रस्पष्टचेतनाकमुपलभ्यते, तथेदमपि वनस्पतिशरीरं, यतो जातः केतकतरुर्बालको युवा वृद्धश्च संवृत्त इति, अतस्तुल्यत्वादेतदपि जातिधर्मकं, न च कश्चिद्विशेषोऽस्ति, येन सत्यपि जातिधर्मत्वे मनुष्यादिशरीरमेव सचेतनं न वनस्पतिशरीरमिति, ननु च जातिधर्मत्वं केशनखदन्तादिष्वप्यस्ति, अव्यभिचारि च लक्षणं भवत्यस्ति च व्यभिचारः, तस्मादयुक्तं कल्पयितुं जातिधर्मत्वं जीवलिङ्गमिति, उच्यते, सत्यमस्ति जननमात्रं, किन्तु मनुष्यशरीरप्रसिद्धबालकुमाराद्यवस्थानामसम्भवः केशादिष्वस्ति स्फुटः, तस्मादसमञ्जसमेतद् , अपि च-केशनखं चेतनावत्पदार्थाधिष्ठितशरीरस्थं जातमित्युच्यते, वर्द्धते इति वा, न पुनस्त्वयैवं तरवोऽपि चेतनावत्पदार्थाधारस्था इष्यन्ते, त्वन्मते भुवोऽचेतनत्वात्तस्मादयुक्तमिति । अथवा जातिधर्मत्वादीनि समुदितानि सूत्रोक्तान्येक एव हेतुः, न पृथक् हेतुता, न च समुदायहेतुः केशादिष्वस्ति तस्माददोष इति । तथा यथेदं मनुष्यशरीरकमनवरतं बालकुमाराद्यवस्थाविशेषैर्वर्द्धते, तथैतदपि वनस्पतिशरीरमङ्कुर-किशलयशाखाप्रशाखादिभिर्विशेषैर्वर्द्धत इति, तथा यथेदं मनुष्यशरीरं चित्तवदेवं वनस्पतिशरीरमपि चित्तवत्, ॥ ६५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४६]

दीप अनुक्रम [४७]

कथम् ?, चेतयति येन तच्चित्तं-ज्ञानं, ततश्च यथा मनुष्यशरीरं ज्ञानेनानुगतमेवं वनस्पतिशरीरमपि, यतो धात्रीप्रपुन्नाटादीनां स्वापविबोधसद्भावः तथाऽधोनिखातद्रविणराशेः स्वप्ररोहेणावेष्टनं प्रावृड्जलधरनिनादशिशिरवायुसंस्पर्शादङ्कुरोद्भेदः, तथा मदमदनसङ्गस्खलद्गतिविघूर्णमानलोललोचनविलासिनीसन्नूपुरसुकुमारचरणताडनादशोकतरोः पल्लवकुसुमोद्गमः, तथा सुरभिसुरागण्डूषसेकाद्बकुलस्य स्पृष्टप्ररोहिकादीनां च हस्तादिसंस्पर्शात्सङ्कोचादिका परिस्फुटा क्रियोपलब्धिः, न चैतदभिहिततरुसम्बन्धि क्रियाजालं ज्ञानमन्तरेण घटते, तस्मात्सिद्धं चित्तवत्त्वं वनस्पतेः इति । तथा यथेदं छिन्नं म्लायति तथैतदपि छिन्नं म्लायति, मनुष्यशरीरं हि हस्तादि छिन्नं म्लायति-शुष्यति, तथा तरुशरीरमपि पल्लवफलकुसुमादि छिन्नं शोषमुपगच्छत् दृष्टं, न चाचेतनानामयं धर्म्म इति । तथा यथेदं मनुष्यशरीरं स्तनक्षीरव्यञ्जनौदनाद्याहाराभ्यवहारादाहारकं तथैतदपि वनस्पतिशरीरं भूजलाद्याहाराभ्यवहारकं, न चैतदाहारकत्वमचेतनानां दृष्टम्, अतस्तद्भावात्सचेतनत्वमिति । तथा यथेदं मनुष्यशरीरमनित्यकं-न सर्वदाऽवस्थायि तथैतदपि वनस्पतिशरीरमनित्यं नियतायुष्कत्वात्, तथाहि-अस्य दश वर्षसहस्राणि उत्कृष्टमायुः । तथा यथेदं मनुष्यशरीरमशाश्वतं-प्रतिक्षणमावीचीमरणेन मरणात् तथैतदपि वनस्पतिशरीरमिति । तथा यथेदमिष्टानिष्टाहारादिप्राप्त्या 'चयापचयिकं' वृद्धिहान्यात्मकं तथैतदपि इति । तथा यथेदं मनुष्यशरीरं विविधपरिणामः-तत्तद्रोगसम्पर्कात् पाण्डुत्वोदरवृद्धिशोफकृशत्वाङ्गुलिनासिकाप्रवेशादिरूपो बालादिरूपो वा, तथा रसायनस्नेहाद्युपयोगाद्विशिष्टकान्तिबलोपचयादिरूपो विपरिणामः तद्धर्म्मकं-तत्स्वभावकं तथैतदपि वनस्पतिशरीरं तथाविधरोगोद्भवात्पुष्पपत्रफलत्वगाद्यन्यथाभवनात् तथा विशिष्टदौहृदप्रदानेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४६]

दीप अनुक्रम [४७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ६६ ॥

अध्ययन १ उद्देशकः ५

पुष्पफलाद्युपचयाद्विपरिणामधर्मकम् । एवमनन्तरोक्तधर्मकलापसद्भावादसंशयं गृहाणैतत्–सचेतनास्तरव इति ॥ एवं वनस्पतेश्चैतन्यं प्रदर्श्य तदारम्भे बन्धं तत्परिहाररूपविरत्यासेवनेन च मुनित्वं प्रतिपादयन्नुपसञ्जिहीर्षुराह—

एत्थ सत्थं समारभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाता भवंति, एत्थ सत्थं असमारभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वणस्सइसत्थं समारंभेज्जा णेवण्णेहिं वणस्सइसत्थं समारंभावेज्जा णेवण्णे वणस्सइसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा, जस्सेते वणस्सतिसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे (सू० ४७) त्ति बेमि ॥ पञ्चम उद्देशकः समाप्तः ॥

'एतस्मिन्' वनस्पतौ शस्त्रं द्रव्यभावाख्यमारभमाणस्येत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता–अप्रत्याख्याता भवन्ति, एतस्मिंश्च वनस्पतौ शस्त्रमसमारभमाणस्येत्येते आरम्भाः परिज्ञाताः–प्रत्याख्याता भवन्तीति पूर्ववच्चर्चः, यावत् स एव मुनिः परिज्ञातकर्मेति ब्रवीमि पूर्ववदिति । शस्त्रपरिज्ञाध्ययने पञ्चमोद्देशकटीका परिसमाप्तेति ।

उक्तः पञ्चमोद्देशकः, साम्प्रतं षष्ठः समारभ्यते–अस्य चायमभिसम्बन्धः–इहानन्तरोद्देशके वनस्पतिकायः प्रतिपादितः, ॥ ६६ ॥
तदनन्तरं च त्रसकायस्यागमे परिपठितत्वात् तत्स्वरूपाधिगमायायमुद्देशकः समारभ्यते, तस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययने षष्ठम् उद्देशकः 'त्रसकायः' आरब्धः,

प्रत
सूत्रांक
[४७]

दीप
अनुक्रम
[४८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

नुयोगद्वाराणि वाच्यानि, यावन्नामनिष्पन्ने निक्षेपे त्रसकायोद्देशकः, तत्र त्रसकायस्य पूर्व्वप्रसिद्धद्वारक्रमातिदेशाय तद्विभिन्नलक्षणद्वाराभिधानाय च निर्युक्तिकृदाह—

तसकाए दाराइं ताइं जाइं हवंति पुढवीए। नाणत्ती उ विहाणे परिमाणुवभोगसत्थे य ॥ १५२ ॥

त्रस्यन्तीति त्रसास्तेषां कायस्त्रसकायस्तस्मिंस्तान्येव द्वाराणि भवन्ति यानि पृथिव्यां प्रतिपादितानि, नानात्वं तु विधानपरिमाणोपभोगशस्त्रद्वारेषु, चशब्दाल्लक्षणे च प्रतिपत्तव्यमिति ॥ तत्र विधानद्वारमाह—

दुविहा खलु तसजीवा लद्धितसा चेव गइतसा चेव। लद्धीय तेउवाऊ तेणऽहिगारो इहं नत्थि ॥ १५३ ॥

'द्विविधा' द्विभेदाः, खलुरवधारणे, त्रसत्वं प्रति द्विभेदत्वमेव, त्रसनात्–स्पन्दनात् त्रसाः, जीवनात्प्राणधारणाज्जीवाः, त्रसा एव जीवास्त्रसजीवाः, लब्धित्रसा गतित्रसाश्च, लब्ध्या तेजोवायू त्रसौ, लब्धिस्तच्छक्तिमात्रं, लब्धित्रसाभ्यामिहाधिकारो नास्ति, तेजसोऽभिहितत्वाद्वायोश्चाभिधास्यमानत्वाद्, अतः सामर्थ्याद्गतित्रसा एवाधिक्रियन्ते ॥ के पुनस्ते कियद्भेदा वेत्यत आह—

नेरइयतिरियमणुया सुरा य गइओ चउव्विहा चेव। पज्जत्ताऽपज्जत्ता नेरइयाई अ नायव्वा ॥ १५४ ॥

नारका–रत्नप्रभादिमहातमःपृथ्वीपर्यन्तनरकावासिनः सप्तभेदाः, तिर्यञ्चोऽपि द्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियाः, मनुष्याः सम्मूर्छनजाः गर्भव्युत्क्रान्तयश्च, सुरा भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकाः, एते गतित्रसाश्चतुर्विधाः, नामकर्मोदया-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [४८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ६७ ॥

अध्ययनं १ उद्देशकः ६

भिनिर्वृत्तगतिलाभाद्गतित्रसत्वम्, एते च नारकादयः पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्विविधा ज्ञातव्याः, तत्र पर्याप्तिः पूर्वोक्तैव षोढा, तया यथासम्भवं निष्पन्नाः पर्याप्ताः, तद्विपरीतास्त्वपर्याप्तका अन्तर्मुहुर्त्तकालमिति ॥ इदानीमुत्तरभेदानाह—

तिविहा तिविहा जोणी अंडापोअअजराउआ चेव । बेइंदिय तेइन्दिय चउरो पंचिंदिया चेव ॥१५५॥ दारं ॥

अत्र हि शीतोष्णमिश्रभेदात्तथा सचित्ताचित्तमिश्रभेदात्तथा संवृतविवृततदुभयभेदात्तथा स्त्रीपुंनपुंसकभेदाच्चेत्यादीनि बहूनि योनीनां त्रिकाणि सम्भवन्ति, तेषां सर्वेषां सङ्ग्रहार्थं त्रिविधा त्रिविधेति वीप्सानिर्देशः, तत्र नारकाणामाद्यासु तिसृषु भूमिषु शीतैव योनिः चतुर्थ्यामुपरितननरकेषु शीता अधस्तननरकेषूष्णा पञ्चमीषष्ठीसप्तमीषूष्णैव नेतरे, गर्भव्युत्क्रान्तिकतिर्यङ्मनुष्याणामशेषदेवानां च शीतोष्णा योनिर्नेतरे, द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियसंमूर्छनजतिर्यङ्मनुष्याणां त्रिविधाऽपि योनिः शीता उष्णा शीतोष्णा चेति, तथा नारकदेवानामचित्ता नेतरे, द्वीन्द्रियादिसम्मूर्छनजपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां त्रिविधाऽपि योनिः सचित्ताचित्ता मिश्रा च, गर्भव्युत्क्रान्तिकतिर्यङ्मनुष्याणां मिश्रा योनिर्नेतरे, तथा देवनारकाणां संवृता योनिर्नेतरे, द्वित्रिचतुरिन्द्रियसम्मूर्छनजपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां विवृता योनिर्नेतरे, गर्भव्युत्क्रान्तिकतिर्यग्मनुष्याणां संवृतविवृता योनिर्नेतरे, तथा नारका नपुंसकयोनय एव, तिर्यञ्चस्त्रिविधाः—स्त्रीपुंनपुंसकयोनयोऽपि, मनुष्या अप्येवं त्रैविध्यभाजः, देवाः स्त्रीपुंयोनय एव, तथाऽपरं मनुष्ययोनेस्त्रैविध्यं, तद्यथा—कूर्मोन्नता, तस्यां चार्हत्चक्रवर्त्त्या- ॥ ६७ ॥

१ शीता शीतोष्णेति । तत्र नारकाणामाद्यासु तिसृषु भूमिषूष्णैव योनिः चतुर्थ्यामुपरितननरकेषूष्णाऽधस्तननरकेषु शीता पञ्चमीषष्ठीसप्तमीषु शीतैव नेतरे इति पा., मतान्तराभिप्रायकश्चायं पाठः, अस्ति सङ्ग्रहणीवृत्तावेवं मतद्वयमपि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [४८]

दिसत्पुरुषाणामुत्पत्तिः, तथा शङ्खावर्त्ता, सा च स्त्रीरत्नस्यैव, तस्यां च प्राणिनां सम्भवोऽस्ति न निष्पत्तिः, तथा वंशीपत्रा, सा च प्राकृतजनस्येति, तथाऽपरं त्रैविध्यं निर्युक्तिकृद्दर्शयति–तद्यथा–अण्डजाः पोतजाः जरायुजाश्चेति, तत्राण्डजाः पक्ष्यादयः, पोतजाः वल्गुलीगजकलभकादयः, जरायुजा गोमहिषीमनुष्यादयः, तथा द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदाच्च भिद्यन्ते, एवमेते त्रसास्त्रिविधयोन्यादिभेदेन प्ररूपिताः, एतद्योनिसङ्ग्राहिण्यौ च गाथे—'पुढविदगअगणिमारुयपत्तेयनिओयजीवजोणीणं । सत्तग सत्तग सत्तग सत्तग दस चोद्दस य लक्खा ॥ १ ॥ विगलिंदिएसु दो दो चउरो चउरो य नारयसुरेसु । तिरियाण होन्ति चउरो चोद्दस मणुआण लक्खाइं ॥ २ ॥' एवमेते चतुरशीतियोनिलक्षा भवन्ति, तथा कुलपरिमाणं 'कुलकोडिसयसहस्सा बत्तीसट्ठठनव य पणवीसा[३] । एगिंदियबितिइंदियचउरिंदियहरियकायाणं ॥ १ ॥ अद्धत्तेरस बारस दस दस नव चेव कोडिलक्खाइं । जलयरपक्खिचउप्पयउरभुयपरिसप्पजीवाणं ॥ २ ॥ पणुवीसं छव्वीसं च सयसहस्साइं नारयसुराणं । बारस य सयसहस्सा कुलकोडीणं मणुस्साणं ॥ ३ ॥ एगा कोडाकोडी सत्ताणउतिं च सयसहस्साइं । पञ्चासं च सहस्सा कुलकोडीणं मुणेयव्वा ॥ ४ ॥ अङ्कतोऽपि १९७ ५०००००००००० सकलकुलसङ्ग्रहोऽयं बोद्धव्य इति ॥ उक्ता परूपणा, तदनन्तरं लक्षणद्वारमाह—

१ पृथ्व्युदकाग्निमारुतप्रत्येकनिगोदजीवयोनीनाम् । सप्त सप्त सप्त सप्त दश चतुर्दश च लक्षाः ॥ १ ॥ विकलेन्द्रियेषु द्वे द्वे चतस्रश्चतस्रश्च नारकसुरयोः । तिरश्चां भवन्ति चतस्रश्चतुर्दश मनुष्याणां लक्षाः ॥ २ ॥ २ कुलकोटिशतसहस्राणि द्वात्रिंशत् अष्टाष्टनव च पञ्चविंशतिः । एकेन्द्रियद्वित्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियहरितकायानाम् ॥ १ ॥ अर्धत्रयोदश द्वादश दश दश नव चैव कोटीलक्षाः । जलचरपक्षिचतुष्पदोरोभुजपरिसर्पजीवानाम् ॥२॥ पञ्चविंशतिः षड्विंशतिश्च शतसहस्राणि नारकसुरयोः । द्वादश च शतसहस्राणि कुलकोटीनां मनुष्याणाम् ॥ ३ ॥ एका कोटीकोटी सप्तनवतिश्च शतसहस्राणि । पञ्चाशच्च सहस्राणि कुलकोटीनां मुणितव्यानि ॥ ४ ॥
३ सत्तट्ठ य नव य अट्ठवीसं च । बेइन्दियतेइन्दिय. प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [४८]

दंसणनाणचरित्ते चरियाचरिए अ दाणलाभे अ। उवभोगभोगवीरिय इंदियविसए य लद्धी य ॥ १५६ ॥
उवओगजोगअज्झवसाणे वीसुं च लद्धि ओदइया(णं उदया)। अट्ठविहोदय लेसा सन्नुसासे कसाए अ १५७

'दर्शनं' सामान्योपलब्धिरूपं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलाख्यं, मत्यादीनि ज्ञानानि स्वपरपरिच्छेदिनो जीवस्य परिणामाः ज्ञानावरणविगमव्यक्तास्तत्त्वार्थपरिच्छेदाः, सामायिकच्छेदोपस्थाप्यपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसम्परायथाख्यातानि चारित्रं, चारित्राचारित्रं देशविरतिः स्थूलप्राणातिपातादिनिवृत्तिलक्षणं श्रावकाणां, तथा दानलाभभोगोपभोगवीर्यश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनाख्याः दश लब्धयः जीवद्रव्याव्यभिचारिण्यो लक्षणं भवन्ति, तथोपयोगः—साकारोऽनाकारश्चाष्टचतुर्भेदः, योगो मनोवाक्कायाख्यस्त्रिधा, अध्यवसायाश्चानेकविधाः सूक्ष्माः मनःपरिणामसमुत्थाः, विष्वग्—पृथग् लब्धीनामुदयाः—प्रादुर्भावाः क्षीरमध्वास्रवादयः, ज्ञानावरणाद्यन्तरायावसानकर्माष्टकस्य स्वशक्तिपरिणाम उदयः, लेश्याः—कृष्णादिभेदा अशुभाः शुभाश्च कषाययोगपरिणामविशेषसमुत्थाः, संज्ञास्त्वाहारभयपरिग्रहमैथुनाख्याः, अथवा दशभेदाः—अनन्तरोक्ताश्चतस्रः क्रोधाद्याश्च चतस्रस्तथौघसंज्ञा लोकसंज्ञा च, उच्छ्वासनिःश्वासौ प्राणापानौ, कषायाः कषः—संसारस्तस्यायाः क्रोधादयोऽनन्तानुबन्ध्यादिभेदात् षोडशविधाः। एतानि गाथाद्वयोपन्यस्तानि द्वीन्द्रियादीनां लक्षणानि यथासम्भवमवगन्तव्यानीति, न चैवंविधलक्षणकलापसमुच्चयो घटादिष्वस्ति, तस्मात्तत्राचैतन्यमध्यवस्यन्ति विद्वांसः॥ अभिहितलक्षणकलापोपसञ्जिहीर्षया तथा परिमाणप्रतिपादनार्थं गाथामाह—

लक्खणमेवं चेव उ पयरस्स असंखभागमित्ता उ। निक्खमणे य पवेसे एगाईयावि एमेव ॥ १५८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [४८]

तुशब्दः पर्याप्तिवचनः, द्वीन्द्रियादिजीवानां लक्षणं–लिङ्गमेतावदेव दर्शनादि परिपूर्णं, नातोऽन्यदधिकमस्तीति। परिमाणं पुनः क्षेत्रतः संवर्त्तितलोकप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्तिप्रदेशराशिपरिमाणास्त्रसकायपर्याप्तकाः, एते च बादरतेजस्कायपर्याप्तकेभ्योऽसङ्ख्येयगुणाः, त्रसकायपर्याप्तकेभ्यस्त्रसकायिकापर्याप्तकाः असङ्ख्येयगुणाः, तथा कालतः प्रत्युत्पन्नत्रसकायिकाः सागरोपमलक्षपृथक्त्वसमयराशिपरिमाणा जघन्यपदे, उत्कृष्टपदेऽपि सागरोपमलक्षपृथक्त्वपरिमाणा एवेति, तथा चागमः—"पडुप्पन्नतसकाइया केवतिकालस्स निल्लेवा सिया?, गोयमा! जहन्नपए सागरोवमसयसहस्सपुहुत्तस्स उक्कोसपदेऽवि सागरोवमसयसहस्सपुहुत्तस्स"। उद्वर्त्तनोपपातौ गाथाशकलेनाभिदधाति–निष्क्रमणम्–उद्वर्त्तनं प्रवेशः–उपपातः जघन्येनैको द्वौ त्रयो वा उत्कृष्टतस्तु 'एवमेवे'ति प्रतरस्यासङ्ख्येयभागप्रदेशपरिमाणा एवेत्यर्थः॥ साम्प्रतमविरहितप्रवेशनिर्गमाभ्यां परिमाणविशेषमाह—

निक्खमपवेसकालो समयाई इत्थ आवलीभागो। अंतोमुहुत्तऽविरहो उदहिसहस्साहिए दोन्नि ॥१५९॥ दारं॥

जघन्येन अविरहिता संतता त्रसेषु उत्पत्तिर्निष्क्रमो वा जीवानामेकं समयं द्वौ त्रीन् वेत्यादि, उत्कृष्टेनात्रावलिकाऽसङ्ख्येयभागमात्रं कालं सततमेव निष्क्रमः प्रवेशो वा, एकजीवाङ्गीकरणेनाविरहश्चिन्त्यते गाथापश्चिमार्द्धेन–अविरहः सातत्येनावस्थानम्, एकजीवो हि त्रसभावेन जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमासित्वा पुनः पृथिव्याद्येकेन्द्रियेषूत्पद्यते, प्रकर्षेणाधिकं सागरोपमसहस्रद्वयं च त्रसभावेनावतिष्ठते सन्ततमिति॥ उक्तं प्रमाणद्वारं, साम्प्रतमुपभोगशस्त्रवेदनाद्वारत्रयप्रतिपादनायाह—

१ प्रत्युत्पन्नत्रसकायिकाः कियता कालेन निर्लेपाः स्युः?, गौतम! जघन्यपदे सागरोपमशतसहस्रपृथक्त्वेन उत्कृष्टपदेऽपि सागरोपमशतसहस्रपृथक्त्वेन।

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४७]

दीप अनुक्रम [४८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

मंसाईपरिभोगो सत्थं सत्थाइयं अणेगविहं । सारीरमाणसा वेयणा य दुविहा बहुविहा य ॥ १६० ॥ दारं ॥

मांसचर्मकेशरोमनखपिच्छदन्तस्नाय्वस्थिविषाणादिभिस्त्रसजीवसम्बन्धिभिरुपभोगो भवति, शस्त्रं पुनः 'शस्त्रादिकमिति' (शस्त्रं) खड्गतोमरक्षुरिकादि तदादिर्यस्य जलानलादेस्तच्छस्त्रादिकमनेकविधं–स्वकायपरकायोभयद्रव्यभावभेदभिन्नमनेकप्रकारं त्रसकायस्येति, वेदना चात्र प्रसङ्गेनोच्यते–सा च शरीरसमुत्था मनःसमुत्था च द्विविधा यथासम्भवं, तत्राद्या शल्यशलाकादिभेदजनिता, इतरा प्रियविप्रयोगाप्रियसम्प्रयोगादिकृता, बहुविधा च ज्वरातीसारकासश्वासभगन्दरशिरोरोगशूलगुदकीलकादिसमुत्था तीव्रेति ॥ पुनरप्युपभोगप्रपञ्चाभिधित्सयाऽऽह—

मंसस्स केइ अट्ठा केइ चम्मस्स केइ रोमाणं । पिच्छाणं पुच्छाणं दंताणऽट्ठा वहिज्जंति ॥ १६१ ॥

केई वहंति अट्ठा केइ अणट्ठा पसंगदोसेणं । कम्मपसंगपसत्ता बंधंति वहंति मारंति ॥ १६२ ॥

मांसार्थं मृगशूकरादयो वध्यन्ते, चर्मार्थं चित्रकादयः, रोमार्थं मूषिकादयः, पिच्छार्थं मयूरगृद्धकपिञ्जुरुदुकादयः, पुच्छार्थं चमर्यादयः, दन्तार्थं वारणवराहादयः, वध्यन्त इति सर्वत्र सम्बध्यते इति ॥ तत्र केचन पूर्वोक्तप्रयोजनमुद्दिश्य घ्नन्ति, केचित्तु प्रयोजनमन्तरेणापि क्रीडया घ्नन्ति, तथा परे प्रसङ्गदोषात् मृगलक्षक्षिप्तेषुलेलुकादिना तदन्तरालव्यवस्थिता अनेके कपोतकपिञ्जलशुकसारिकादयो हन्यन्ते, तथा कर्म–कृष्याद्यनेकप्रकारं तस्य प्रसङ्गः–अनुष्ठानं तत्र प्रसक्ताः–सन्निष्ठाः सन्तस्त्रसकायिकान् बहून् घ्नन्ति रज्ज्वादिना, घ्नन्ति–कशलकुटादिभिः ताडयन्ति, मारयन्ति–प्राणैर्वियोजयन्तीति ॥ एवं विधानादिद्वारकलापमुपवर्ण्य सकलनिर्युक्त्यर्थोपसंहारायाह—

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [४८]

दीप अनुक्रम [४९]

सेसाइं दाराइं ताइं जाइं हवंति पुढवीए। एवं तसकायंमी निज्जुत्ती कित्तिया एसा ॥ १६३ ॥

उक्तव्यतिरिक्तानि शेषाणि द्वाराणि तान्येव वाच्यानि यानि पृथ्वीस्वरूपसमधिगमे निरूपितानि, अत एवमशेषद्वाराभिधानात्त्रसकाये निर्युक्तिः कीर्त्तितैषा सकला भवतीत्यवगन्तव्येति ॥ साम्प्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं, तच्चेदम्—

से बेमि संतिमे तसा पाणा, तंजहा—अंडया पोयया जराउआ रसया संसेयया संमुच्छिमा उब्भियया उववाइया, एस संसारेत्ति पवुच्चई (सू० ४८)

अस्य चानन्तरपरम्परादिसूत्रसम्बन्धः प्राग्वद्वाच्यः, सोऽहं ब्रवीमि येन मया भगवद्वदनारविन्दविनिसृतार्थजातावधारणात् यथावदुपलब्धं तत्त्वमिति, 'सन्ति' विद्यन्ते त्रस्यन्तीति त्रसाः—प्राणिनो द्वीन्द्रियादयः, ते च कियद्भेदाः किंप्रकाराश्चेति दर्शयति—'तद्यथे'ति वाक्योपन्यासार्थः, यदिवा 'तत्' प्रकारान्तरमर्थतो यथा भगवताऽभिहितं तथाऽहं भणामीति, अण्डाज्जाताः अण्डजाः—पक्षिगृहकोकिलादयः, पोता एव जायन्ते पोतजाः 'अन्येष्वपि दृश्यते' (पा-३-२-१०१) इति जनेर्डप्रत्ययः, ते च हस्तिवल्गुलीचर्मजलूकादयः, जरायुवेष्टिता जायन्त इति जरायुजाः, पूर्ववत् डप्रत्ययः, गोमहिष्यजाविकमनुष्यादयः, रसाज्जाता रसजाः—तक्रारनालदधितीम्मनादिषु पायुकृम्याकृतयोऽतिसूक्ष्मा भवन्ति, संस्वेदाज्जाताः संस्वेदजाः—मत्कुणयूकाशतपदिकादयः, सम्मूर्छनाज्जाताः सम्मूर्छनजाः—शलभपिपीलिकामक्षिकाशालिकादयः, उद्भेदनमुद्भित्ततो जाता उद्भिजाः, पृषोदरादित्वाद्दलोपः, पतङ्गखञ्जरीटपारीप्लवादयः, उपपाताज्जाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [४८]

दीप अनुक्रम [४९]

उपपातजाः, अथवा उपपाते भवा औपपातिकाः–देवा नारकाश्च, एवमष्टविधं जन्म यथासम्भवं संसारिणो नातिवर्तन्ते, एतदेव शास्त्रान्तरे त्रिविधमुपन्यस्तं "सम्मूर्छनगर्भोपपाता जन्म" (तत्त्वार्थ०अ० २ सू० ३२) रसस्वेदजोद्भिज्जानां सम्मूर्छनजान्तःपातित्वात् अण्डजपोतजजरायुजानां गर्भजान्तःपातित्वात् देवनारकाणामौपपातिकान्तःपातित्वात् इति त्रिविधं जन्मेति, इह चाष्टविधं सोत्तरभेदत्वादिति । एवमेतस्मिन्नष्टविधे जन्मनि सर्वे त्रसजन्तवः संसारिणो निपतन्ति, नैतद्व्यतिरेकेणान्ये सन्ति, एते चाष्टविधयोनिभाजोऽपि सर्वलोकप्रतीता बालाङ्गनादिजनप्रत्यक्षप्रमाणसमधिगम्याः, 'सन्ति च' अनेन शब्देन त्रैकालिकमस्तित्वं प्रतिपाद्यते त्रसानां, न कदाचिदेतैर्विरहितः संसारः सम्भवतीति, एतदेव दर्शयति—'एस संसारोत्ति पवुच्चति' एषः–अण्डजादिप्राणिकलापः संसारः प्रोच्यते, नातोऽन्यस्त्रसानामुत्पत्तिप्रकारोऽस्तीत्युक्तं भवति ॥ कस्य पुनरत्राष्टविधभूतग्रामे उत्पत्तिर्भवतीत्याह—

मंदस्सावियाणओ (सू० ४९)

मन्दो द्विधा–द्रव्यभावभेदात्, तत्र द्रव्यमन्दोऽतिस्थूलोऽतिकृशो वा, भावमन्दोऽप्यनुपचितबुद्धिर्बालः कुशास्त्रवासितबुद्धिर्वा, अयमपि सद्बुद्धेरभावाद्बाल एव, इह भावमन्देनाधिकारः, 'मन्दस्ये'ति बालस्याविशिष्टबुद्धेः अत एव अविजानतो–हिताहितप्राप्तिपरिहारशून्यमनसः इत्येषोऽनन्तरोक्तः संसारो भवतीति ॥ यद्येवं ततः किमित्याह— ॥ ७० ॥

निज्झाइत्ता पडिलेहित्ता पत्तेयं परिनिव्वाणं सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[५०]

दीप
अनुक्रम
[५१]

जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं अस्सायं अपरिनिव्वाणं महब्भयं दुक्खं तिबेमि, तसंति पाणा पदिसो दिसासु य (सू० ५०)

एवमिमं त्रसकायमागोपालाङ्गनादिप्रसिद्धं निश्चयेन ध्यात्वा निर्ध्याय चिन्तयित्वेत्यर्थः, क्त्वाप्रत्ययस्योत्तरक्रियापेक्षत्वाद् ब्रवीमीत्युत्तरक्रिया सर्व्वत्र योजनीयेति । पूर्व्वं च मनसाऽऽलोच्य ततः प्रत्युपेक्षणं भवतीति दर्शयति–'पडिलेहेत्त'त्ति प्रत्युपेक्ष्य–दृष्ट्वा यथावदुपलभ्येत्यर्थः, किं तदिति दर्शयति—'प्रत्येक'मित्येकमेकं त्रसकायं प्रति परिनिर्वाणं–सुखं प्रत्येकसुखभाजः सर्वेऽपि प्राणिनः, नान्यदीयमन्य उपभुङ्क्ते सुखमित्यर्थः, एष च सर्व्वप्राणिधर्म्म इति दर्शयति–सर्वेषां प्राणिनां–द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां, तथा सर्व्वेषां भूतानां–प्रत्येकसाधारणसूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकतरूणामिति, तथा सर्व्वेषां जीवानां–गर्भव्युत्क्रान्तिकसम्मूर्च्छनजौपपातिकपञ्चेन्द्रियाणां, तथा सर्व्वेषां सत्त्वानां–पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणामिति, इह च प्राणादिशब्दानां यद्यपि परमार्थतोऽभेदस्तथापि उक्तन्यायेन भेदो द्रष्टव्यः, उक्तं च—'प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ताः, भूतास्तु तरवः स्मृताः । जीवाः पञ्चेन्द्रियाः प्रोक्ताः, शेषाः सत्त्वा उदीरिताः ॥ १ ॥" इति, यदिवा-शब्दव्युत्पत्तिद्वारेण समभिरूढनयमतेन भेदो द्रष्टव्यः, तद्यथा–सततप्राणधारणात्प्राणाः कालत्रयभवनाद् भूताः त्रिकालजीवनात् जीवाः सदाऽस्तित्वात्सत्त्वा इति, तदेवं विचिन्त्य प्रत्युपेक्ष्य च यथा सर्वेषां जीवानां प्रत्येकं परिनिर्वाणं–सुखं तथा प्रत्येकमसातम्–अपरिनिर्वाणं महाभयं दुःखमहं ब्रवीमि, तत्र दुःखयतीति दुःखं, तद्विशिष्यते–किं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५०]

दीप अनुक्रम [५१]

विशिष्टम् ?–'असातम्' असद्वेद्यकर्मांशविपाकजमित्यर्थः, तथा 'अपरिनिर्वाण'मिति समन्तात् सुखं परिनिर्वाणं न परिनिर्वाणमपरिनिर्वाणं समन्तात् शरीरमनःपीडाकरमित्यर्थः, तथा 'महाभय'मिति महच्च तद्भयं च महाभयं, नातः परमन्यद् भयमस्तीति महाभयं, तथाहि–सर्व्वेऽपि शारीरान्मानसाच्च दुःखादुद्विजन्ते प्राणिन इति, इति शब्दएवमर्थे, एवमहं ब्रवीमि सम्यगुपलब्धतत्त्वो यत्नागुक्तमिति । एतच्च ब्रवीमीत्याह–'तसंती' त्यादि, एवंविधेन च असातादिविशेषणविशिष्टेन दुःखेनाभिभूतास्त्रस्यन्ति–उद्विजन्ति प्राणा इति प्राणिनः, कुतः पुनरुद्विजन्तीति दर्शयति–प्रगता दिक् प्रदिग्विदिक् इत्यर्थः, ततः प्रदिशः सकाशादुद्विजन्ति, तथा प्राच्यादिषु च दिक्षु व्यवस्थितास्त्रस्यन्ति, एताश्च प्रज्ञापकविधिविभक्ता दिशोऽनुदिशश्च गृह्यन्ते, जीवव्यवस्थानश्रवणात्, ततश्चायमर्थः प्रतिपादितो भवति काक्का–न काचिद्दिगनुदिग्वा यस्यां न सन्ति त्रसाः त्रस्यन्ति वा यस्यां स्थिताः कोशिकारकीटवत्, कोशिकारकीटो हि सर्वदिग्भ्योऽनुदिग्भ्यश्च बिभ्यदात्मसंरक्षणार्थं वेष्टनं करोति शरीरस्येति, भावदिगपि न काचित्ताहृश्यस्ति यस्यां वर्त्तमानो जन्तुर्न त्रस्येत्, शारीरमानसाभ्यां दुःखाभ्यां सर्वत्र नरकादिषु जंघन्यन्ते प्राणिनोऽतस्त्रासपरिगतमनसः सर्वदाऽवगन्तव्याः ॥ एवं सर्वत्र दिक्ष्वनुदिक्षु च त्रसाः सन्तीति गृह्णीमः, दिग्विदिग्व्यवस्थितास्त्रसास्त्रस्यन्तीत्युक्तं, कुतः पुनस्त्रस्यन्ति ?–यस्मात्तदारम्भवद्भिस्ते व्यापाद्यन्ते, किं पुनः कारणं ?, ते तानारम्भन्त इत्यत आह–

तत्थ तत्थ पुढो पास आतुरा परितावंति, संति पाणा पुढो सिया (सू० ५१)

'तत्र तत्र' तेषु तेषु कारणेषूत्पन्नेषु वक्ष्यमाणेषु अर्चाजिनशोणितादिषु च पृथग्विभिन्नेषु प्रयोजनेषु, पश्येति शिष्य-

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[५१]

दीप
अनुक्रम
[५२]

चोदना, किं तत्पश्येति दर्शयति—'मांसभक्षणादिगृद्धा आतुराः–अस्वस्थमनसः परि–समन्तात्तापयन्ति–पीडयन्ति नानाविधवेदनोत्पादनेन प्राणिव्यापादनेन वा तदारम्भिणस्त्रसानिति, येन केनचिदारम्भेण प्राणिनां सन्तापनं भवतीति दर्शयन्नाह—'संती'त्यादि, 'सन्ति' विद्यन्ते प्रायः सर्वत्रैव प्राणाः–प्राणिनः 'पृथक्' विभिन्नाः द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाः 'श्रिताः' पृथिव्यादिश्रिताः, एतच्च ज्ञात्वा निरवद्यानुष्ठायिना भवितव्यमित्यभिप्रायः ॥ अन्ये पुनरन्यथावादिनोऽन्यथाकारिण इति दर्शयन्नाह—

लज्जमाणा पुढो पास अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकायसमारंभेण तसकायसत्थं समारभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति, तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाईमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव तसकायसत्थं समारभति अण्णेहिं वा तसकायसत्थं समारंभावेइ अण्णे वा तसकायसत्थं समारभमाणे समणुजाणइ, तं से अहियाए तं से अबोहीए, से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोच्चा भगवओ अणगाराणं अंतिए इहमेगेसिं णायं भवति-एस खलु गंथे एस खलु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [५२]

दीप अनुक्रम [५३]

मोहे एस खलु मारे एस खलु णरए, इच्चत्थं गड्ढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकायसमारंभेण तसकायसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति (सू० ५२)

॥ ७२ ॥ पूर्ववत् व्याख्येयं, यावत् 'अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ'त्ति ॥ यानि कानिचित्कारणान्युद्दिश्य त्रसवधः क्रियते तानि दर्शयितुमाह—

से बेमि अप्पेगे अच्चाए हणंति, अप्पेगे अजिणाए वहंति, अप्पेगे मंसाए वहंति, अप्पेगे सोणियाए वहंति, एवं हिययाए पित्ताए वसाए पिच्छाए पुच्छाए वालाए सिंगाए विसाणाए दंताए दाढाए णहाए ण्हारुणीए अट्ठीए अट्ठिमिंजाए अट्ठाए अणट्ठाए, अप्पेगे हिंसिंसु मेत्ति वा वहंति अप्पेगे हिंसंति मेत्ति वा वहंति अप्पेगे हिंसिस्संति मेत्ति वा वहंति (सू० ५३)

तदहं ब्रवीमि यदर्थं प्राणिनस्तदारम्भप्रवृत्तैर्व्यापाद्यन्त इति, अप्येकेऽर्चायै घ्नन्ति, अपिरुत्तरापेक्षया समुच्चयार्थः, ॥ ७२ ॥
'एके' केचन तदर्थित्वेनातुराः, अर्च्यतेऽसावाहारालङ्कारविधानैरित्यर्चा-देहस्तदर्थं व्यापादयन्ति, तथाहि—लक्षणवत्पुरु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५३]

दीप अनुक्रम [५४]

षमक्षतमव्यङ्गं व्यापाद्य तच्छरीरेण विद्यामन्त्रसाधनानि कुर्व्वन्ति उपयाचितं वा यच्छन्ति दुर्गादीनामग्रतः, अथवा विषं येन भक्षितं स हस्तिनं मारयित्वा तच्छरीरे प्रक्षिप्यते पश्चाद्विषं जीर्यति, तथा अजिनार्थ–चित्रकव्याघ्रादीन् व्यापादयन्ति, एवं मांसशोणितहृदयपित्तवसापिच्छपुच्छवालशृङ्गविषाणदन्तदंष्ट्रानखस्नाय्वस्थ्यस्थिमिञ्जादिष्वपि वाच्यं, मांसार्थं सूकरादयः, त्रिशूलालेखार्थं शोणितं गृह्णन्ति, हृदयानि साधका गृहीत्वा मश्नन्ति, पित्तार्थं मयूरादयः, वसार्थं व्याघ्रमकरवराहादयः, पिच्छार्थं मयूरगृध्रादयः, पुच्छार्थं रोझादयः, वालार्थं चमर्यादयः, शृङ्गार्थं रुरुखड्गादयः, तत्किल शृङ्गं पवित्रमिति याज्ञिका गृहूणन्ति, विषाणार्थं हस्त्यादयः, दन्तार्थं शृगालादयः[1] तिमिरापहत्वात्तद्दन्तानां, दंष्ट्रार्थं वराहादयः, नखार्थं व्याघ्रादयः, स्नाय्वर्थं गोमहिष्यादयः, अस्थ्यर्थं शङ्खशुक्त्यादयः, अस्थिमिञ्जार्थं महिषवराहादयः, एवमेके यथोपदिष्टप्रयोजनकलापापेक्षया घ्नन्ति, अपरे तु कृकलासगृहकोकिलादीन् विना प्रयोजनेन व्यापादयन्ति, अन्ये पुनः 'हिंसिसु मेत्ति' हिंसितवानेषोऽस्मत्स्वजनान्सिंहः सर्पोऽरिर्वाऽतो घ्नन्ति, मम वा पीडां कृतवन्त इत्यतो हन्ति, तथा अन्ये वर्त्तमानकाल एव हिनस्ति अस्मान् सिंहोऽन्यो वेति घ्नन्ति, तथाऽन्येऽस्मानयं हिंसिष्यतीत्यनागतमेव सर्पादिकं व्यापादयन्ति ॥ एवमनेकप्रयोजनोपन्यासेन हननं त्रसविषयं प्रदर्श्य उद्देशकार्थमुपसञ्जिहीर्षुराह—

एत्थ सत्थं समारभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति, एत्थ सत्थं असमारभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवन्ति, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं तस-

१ विषाणार्थं शृगालादयः, दन्तार्थं हस्त्यादयः इति प्र०, परं 'विषाणं तु शृङ्गे कोलेभदन्तयोः' इत्यनेकार्थवचनान्नायमसुन्दरः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[५४]

दीप
अनुक्रम
[५५]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ ७२ ॥

शस्त्र.परि१
उद्देशकः ७

कायसत्थं समारंभेज्जा णेवऽण्णेहिं तसकायसत्थं समारंभावेज्जा णेवऽण्णे तसकायसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा, जस्सेते तसकायसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे (सू० ५४) त्तिबेमि ॥ इति षष्ठ उद्देशकः ॥

प्राग्वद्व्याख्येयं, यावत्स एव मुनिस्त्रसकायसमारम्भविरतत्वात् परिज्ञातकर्म्मत्वात्प्रत्याख्यातपापकर्म्मत्वादिति ब्रवीमि भगवतः त्रिलोकबन्धोः परमकेवलालोकसाक्षात्कृतसकलभुवनप्रपञ्चस्योपदेशादिति षष्ठोद्देशकः समाप्तः ॥

उक्तः षष्ठोद्देशकः, साम्प्रतं सप्तमः समारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–अभिनवधर्म्माणां दुःश्रद्धानत्वादल्पपरिभोगत्वादुत्क्रमायातस्योक्तशेषस्य वायोः स्वरूपनिरूपणार्थमिदमुपक्रम्यते–तदनेन सम्बन्धेनायातस्यास्योद्देशकस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि वाच्यानि यावन्नामनिष्पन्ने निक्षेपे वायूद्देशक इति, तत्र वायोः स्वरूपनिरूपणाय कतिचिद्द्वारातिदेशगर्भां निर्युक्तिकृद्गाथामाह—

वाउस्सऽवि दाराइं ताइं जाइं हवंति पुढवीए । नाणत्ती उ विहाणे परिमाणुवभोगसत्थेय ॥ १६४ ॥

वातीति वायुस्तस्य वायोरपि तान्येव द्वाराणि यानि पृथिव्यां प्रतिपादितानि, नानात्वं–भेदः, तच्च विधानपरिमाणोपभोगशस्त्रेषु, चशब्दाल्लक्षणे च द्रष्टव्यमिति ॥ तत्र विधानप्रतिपादनायाह— ॥ ७२ ॥

१ वद्धावनीयं प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययने सप्तमं उद्देशक: 'वायुकाय:' आरब्ध:,

प्रत सूत्रांक [५४]

दीप अनुक्रम [५५]

दुविहा उ वाउजीवा सुहुमा तह बायरा उ लोगंमि । सुहुमा य सव्वलोए पंचेव य बायरविहाणा ॥१६५॥

वायुरेव जीवा वायुजीवाः, ते च द्विविधाः–सूक्ष्मबादरनामकर्मोदयात् सूक्ष्मा बादराश्च, तत्र सूक्ष्माः सकललोकव्यापितया अवतिष्ठन्ते, दत्तकपाटसकलवातायनद्वारगेहान्तर्द्धूमवत् व्याप्या स्थिताः, बादरभेदास्तु पञ्चैवानन्तरगाथया वक्ष्यमाणा इति ॥ बादरभेदप्रतिपादनायाह—

उक्कलिया मंडलिया गुंजा घणवाय सुद्धवाया य । बायरवाउविहाणा पंचविहा वण्णिया एए ॥ १६६ ॥

स्थित्वा स्थित्वोत्कलिकाभिर्यो वाति स उत्कलिकावातः, मण्डलिकावातस्तु वातोलीरूपः, गुञ्जा–भम्भा तद्वत् गुञ्जन् यो वाति स गुञ्जावातः, घनवातोऽत्यन्तघनः पृथिव्याद्याधारतया व्यवस्थितो हिमपटलकल्पो, मन्दस्तिमितः शीतकालादिषु शुद्धवातः, ये त्वन्ये प्रज्ञापनादौ प्राच्यादिवाता अभिहितास्तेषामेष्वेव यथायोगमन्तर्भावो द्रष्टव्य इति, एवमित्येते बादरवायुविधानानि–भेदाः 'पञ्चविधाः' पञ्चप्रकारा व्यावर्णिता इति ॥ लक्षणद्वाराभिधित्सयाऽऽह—

जह देवस्स सरीरं अंतद्धाणं व अंजणाईसुं । एओवम आएसो वाएऽसंतेऽवि रूवंमि ॥ १६७ ॥

यथा देवस्य शरीरं चक्षुषाऽनुपलभ्यमानमपि विद्यते चेतनावच्चाध्यवसीयते, देवाः स्वशक्तिप्रभावात्तथाभूतं रूपं कुर्वन्ति यच्चक्षुषा नोपलभ्यते, न चैतद्वक्तुं शक्यते-नास्त्यचेतनं चेति, तद्वद्वायुरपि चक्षुषो विषयो न भवति, अस्ति च चित्तवांश्चेति, यथा वाऽन्तर्द्धानमञ्जनविद्यामन्त्रैर्भवति मनुष्याणां, न च नास्तित्वमचेतनत्वं चेति, [1]एतदुपमानो वायावपि भवति

१ एतदुपमानेन प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५४]

दीप अनुक्रम [५५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ७४ ॥ | शस्त्र.परि१ उद्देशकः ७

'आदेशो' व्यपदेशोऽसत्यपि रूप इति, अत्र चासच्छब्दो नाभाववचनः, किं त्वसद्रूपं वायोरिति चक्षुर्ग्राह्यं तद्रूपं न भवति, सूक्ष्मपरिणामात्, परमाणोरिव, रूपरसस्पर्शात्मकश्च वायुरिष्यते, न यथाऽन्येषां वायुः स्पर्शवानेवेति, प्रयोगार्थश्च गाथया प्रदर्शितः, प्रयोगश्चायं–चेतनावान् वायुः, अपरप्रेरिततिर्यगनियमितगतिमत्त्वात्, गवाश्वादिवत्, तिर्यगेव गमननियमाभावात् अनियमितविशेषणोपादानाच्च परमाणुनाऽनेकान्तिकासंभवः, तस्य नियमितगतिमत्त्वात्, जीवपुद्गलयोः 'अनुश्रेणिगति' (तत्त्वा० अ० २ सू० २७) रिति वचनात्, एवमेष वायुः–घनशुद्धवातादिभेदोऽशस्त्रोपहतश्चेतनावानवगन्तव्य इति ॥ परिमाणद्वारमाह—

जे बायरपज्जत्ता पयरस्स असंखभागमित्ता ते । सेसा तिन्निवि रासी वीसुं लोगा असंखिज्जा ॥ १६८ ॥ (दारं)

ये बादरपर्याप्तका वायवस्ते संवर्त्तितलोकप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्तिप्रदेशराशिपरिमाणाः, शेषास्त्रयोऽपि राशयो विष्वक्–पृथगसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणा भवन्ति, विशेषश्चायमत्रावगन्तव्यः–बादराप्कायपर्याप्तकेभ्यो बादरवायुपर्याप्तका असङ्ख्येयगुणाः बादराप्कायापर्याप्तकेभ्यो बादरवायुकायापर्याप्तका असङ्ख्येयगुणाः सूक्ष्माप्कायापर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मवाय्वपर्याप्तका विशेषाधिकाः सूक्ष्माप्कायपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मवायुपर्याप्तका विशेषाधिकाः ॥ उपभोगद्वारमाह—

वियणधमणाभिधारण उस्सिंचणफुसणआणुपाणू अ । बायरवाउक्काए उवभोगगुणा मणुस्साणं ॥ १६९ ॥

व्यजनभस्त्राध्माताभिधारणोत्सिञ्चनफूत्कारप्राणापानादिभिर्बादरवायुकायेन उपभोग एव गुण उपभोगगुणो मनुष्याणामिति ॥ शस्त्रद्वाराभिधित्सयाऽऽह, तत्र शस्त्रं द्रव्यभावभेदाद्विविधं, द्रव्यशस्त्राभिधित्सयाऽऽह— ॥ ७४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५४]

दीप अनुक्रम [५५]

विअणे अ तालवंटे सुप्पसियपत्त चेलकण्णे य । अभिधारणा य बाहिं गंधग्गी वाउसत्थाइं ॥ १७० ॥

व्यजनं-तालवृन्तं सूर्पसितपत्रचेलकर्णादयः द्रव्यशस्त्रमिति, तत्र सितमिति चामरं, प्रस्विन्नो यद्बहिरवतिष्ठते वातागमनमार्गे साऽभिधारणा, तथा गन्धाः—चन्दनोशीरादीनां अग्निर्ज्वाला प्रतापश्च, तथा प्रतिपक्षवातश्च शीतोष्णादिकः, प्रतिपक्षवायुग्रहणेन स्वकायादिशस्त्रं सूचितमिति, एवं भावशस्त्रमपि दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायलक्षणमत्रगन्तव्यमिति ॥ अधुना सकलनिर्युक्त्यर्थोपसञ्जिहीर्षुराह—

सेसाइं दारारं ताइं जाइं हवंति पुढवीए । एवं वाउद्देसे निज्जुत्ती कित्तिया एसा ॥ १७१ ॥

'शेषाणि' उक्तव्यतिरिक्तानि तान्येव द्वाराणि पृथिवीसमधिगमे यान्यभिहितानीति, एवं सकलद्वारकलापव्यावर्णनाद् वायुकायोद्देशके निर्युक्तिः कीर्त्तितैषाऽवगन्तव्येति ॥ गतो नामनिष्पन्नो निक्षेपः, साम्प्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं, तच्चेदम्—'पहू एजस्स दुगुंछणाए'त्ति, अस्य चायमभिसम्बन्धः—इहानन्तरोद्देशके पर्यन्तसूत्रे त्रसकायपरिज्ञानं तदारम्भवर्जनं च मुनित्वकारणमभिहितम्, इहापि तदेव द्वयं वायुकायविषयं मुनित्वकारणमेवोच्यते, तथा परम्परसूत्रसम्बन्धः 'इहमेगेसिं णो णायं भवइ'त्ति, किं तत् ज्ञातं भवति ?, 'पहु एजस्स दुगुंछणाए'त्ति, तथा आदिसूत्रसम्बन्धश्च 'सुयं मे आउसंतेण' मित्यादि, किं तत् श्रुतं ?, यत्प्रागुपदिष्टं, तथैतच्च—

पहू एजस्स दुगुंछणाए (सू० ५५)

'दुगुञ्छण'त्ति जुगुप्सा प्रभवतीति प्रभुः-समर्थः योग्यो वा, कस्य वस्तुनः समर्थ इति ?, 'एजृ कम्पने' एजतीत्येजो–

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [५५]

दीप अनुक्रम [५६]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ७५ ॥

शस्त्र.परि१ उद्देशकः७

वायुः कम्पनशीलत्वात् तस्यैजस्य जुगुप्सा–निन्दा तदासेवनपरिहारो निवृत्तिरितियावत् तस्या–तद्विषये प्रभुर्भवति, वायुकायसमारम्भनिवृत्तौ शक्तो भवतीतियावत्, पाठान्तरं वा 'पहू य एगस्स दुगुंछणाए' उद्रेकावस्थावर्त्तिनैकेन गुणेन स्पर्शाख्येनोपलक्षित इत्येको–वायुस्तस्यैकस्य एकगुणोपलक्षितस्य वायोर्जुगुप्सायां प्रभुः, चशब्दात् श्रद्धाने च प्रभुर्भवतीति, अर्थात् यदि श्रद्धाय जीवतया जुगुप्सते ततः ॥ योऽसौ वायुकायसमारम्भनिवृत्तौ प्रभुरुक्तस्तं दर्शयति—

आयंकदंसी अहियंति णच्चा, जे अज्झत्थं जाणइ से बहिया जाणइ, जे बहिया जाणइ से अज्झत्थं जाणइ, एयं तुलमन्नेसिं (सू० ५६)

'तकि कृच्छ्रजीवन' इत्यातङ्कनमातङ्कः–कृच्छ्रजीवनं–दुःखं, तच्च द्विविधं–शारीरं मानसं च, तत्राद्यं कण्टकक्षारशस्त्रगण्डलूतादिसमुत्थं, मानसं प्रियविप्रयोगाप्रियसम्प्रयोगेप्सितालाभदारिद्र्यदौर्मनस्यादिकृतम्, एतदुभयमातङ्कः, एनमातङ्कं पश्यति तच्छीलश्चेत्यातङ्कदर्शी, अवश्यमेतदुभयमपि दुःखमापतति मय्यनिवृत्तवायुकायसमारम्भे, ततश्चैतद्वायुकायसमारम्भणमातङ्कहेतुभूतमहितमिति ज्ञात्वैतस्मान्निवर्त्तने प्रभुर्भवतीति । यदिवाऽऽतङ्को द्वेधा–द्रव्यभावभेदात्, तत्र द्रव्यातङ्के इदमुदाहरणम्—जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासंमि अत्थि सुपसिद्धं । बहुणयरगुणसमिद्धं रायगिहं णाम णयरंति ॥ १ ॥ तत्थासि गरुयदरियारिमद्दणो भुयणनिग्गयपयावो । अभिगयजीवाजीवो राया णामेण जियसत्तू ॥ २ ॥ अण-

॥ ७५ ॥

१ ०मापतितमध्यनिवृत्त० प्र. अत्रायीति सम्बोधनेऽन्यस्याश्चर्ये वा. २ जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षेऽस्ति सुप्रसिद्धम् । बहुनगरगुणसमृद्धं राजगृहं नाम नगरमिति ॥ १ ॥ तत्रासीत् गुरुदृप्तारिमर्दनो भुवननिर्गतप्रतापः । अभिगतजीवाजीवो राजा नाम्ना जितशत्रुः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५६]

दीप अनुक्रम [५७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

वरयगरुयसंवेगभाविओ धम्मघोसपामूले । सो अन्नया कयाई पमाइणं पासए सेहं ॥ ३ ॥ चोइज्जंतमभिक्खं अवराहं तं पुणोऽवि कुणमाणं । तस्स हियट्ठं राया सेसाण य रक्खणट्ठाए ॥ ४ ॥ आयरिणाणुण्णाए आणावइ सो उ णियपुरिसेहिं । तिव्वुक्कडदव्वेहिं संधियपुव्वं तहिं खारं ॥ ५ ॥ पक्खित्तो जत्थ णरो णवरं गोदोहमेत्तकालेणं । णिज्जिण्णमंससोणिय अट्ठियसेसत्तणमुवेइ ॥ ६ ॥ दो ताहे पुव्वमए पुरिसे आणावए तहिं राया । एगं गिहत्थवेसं बीयं पासंडिणेवत्थं ॥ ७ ॥ पुव्वं चिय सिक्खविए ते पुरिसे पुच्छए तहिं राया । को अवराहो एसिं? भणंति आणं अइक्कमइ ॥ ८ ॥ पासंडिओ जहुत्ते ण वट्टइ अत्तणो य आयारे । पक्खिवह खारमज्झे खित्ता गोदोहमेत्तस्स ॥ ९ ॥ दट्ठूणऽट्ठिवसेसे ते पुरिसे अलियरोसरत्तच्छो । सेहं आलोयंतो राया तो भणइ आयरियं ॥ १० ॥ तुम्हवि कोऽवि पमादी? सासेमि य तंपि णत्थि भणइ गुरू । जइ होही तो साहे तुम्हे च्चिय तस्स जाणिहिह ॥११॥ सेहो गए णिवंमी भणई ते साहुणो उ ण पुणत्ति । होहं पमायसीलो तुम्हं सरणागओ धणियं ॥ १२ ॥ जइ पुण होज्ज पमाओ पुणो ममं सब्भावरहियस्स । तुम्ह गुणेहिं

१ अनवरतगुरुसंवेगभावितो धर्मघोषपादमूले । सोऽन्यदा कदाचित्प्रमादिनं पश्यति शिष्यम् ॥ ३ ॥ चोद्यमानमभीक्ष्णमपराधं तं पुनरपि कुर्वन्तम् । तस्य हितार्थं राजा शेषाणां च रक्षणार्थाय ॥ ४ ॥ आचार्यानुज्ञया आनयति स तु निजपुरुषैः । तीव्रोत्कटद्रव्यैः संयुक्तपूर्वं तत्र क्षारम् ॥ ५ ॥ प्रक्षिप्तो यत्र नरो नवरं गोदोहमात्रकालेन । निर्जीर्णमांसशोणितोऽस्थिशेषत्वमुपैति ॥ ६ ॥ द्वौ तदा पूर्वमृतौ पुरुषावानयति तत्र राजा । एकं गृहस्थवेषं द्वितीयं पाषण्डिनेपथ्यम् ॥ ७ ॥ पूर्वमेव शिक्षितान् तान् पुरुषान् पृच्छति तत्र राजा । कोऽपराधोऽनयोः? भणन्ति आज्ञामतिक्रामति ॥८॥ पाखण्डिको यथोक्ते न वर्त्तते आत्मनश्चाचारे । प्रक्षिपत क्षारमध्ये क्षिप्तौ गोदोहमात्रेण ॥ ९ ॥ दृष्ट्वाऽस्थ्यवशेषौ तौ पुरुषौ अलिकरोषरक्ताक्षः । शैक्षकमालोकयन् राजा ततो भणत्याचार्यम् ॥ १० ॥ युष्माकमपि कोऽपि प्रमादी?, शासयामि च तमपि नास्ति भणति गुरुः । यदि भविष्यति तदा कथयिष्यामि यूयमेव तं ज्ञास्यथ ॥ ११ ॥ शैक्षको गते नृपे भणति तान् साधूंस्तु न पुनरिति । भविष्यामि प्रमादशीलो युष्माकं शरणागतोऽत्यर्थम् ॥ १२ ॥ यदि पुनर्भवेत्प्रमादः पुनर्मम शठ(श्राद्ध) भावरहितस्य । युष्माकं गुणैः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[५६]

दीप
अनुक्रम
[५७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ७६ ॥

शस्त्र-परि१ उद्देशकः७

सुंविहिय! तो सावगरक्खसा मुच्चे ॥ १३ ॥ आयंकभओविग्गो ताहे सो णिच्चउज्जुओ जाओ। कोवियमती य समए रण्णा मरिसाविओ पच्छा ॥ १४ ॥ दव्वायंकादंसी अत्ताणं सव्वहा णियत्तेइ । अहियारंभाउ सया जह सीसो धम्मघोसस्स ॥ १५ ॥ भावातङ्कादर्शी तु नरकतिर्यङ्मनुष्यामरभवेषु प्रियविप्रयोगादिशारीरमानसातङ्कभीत्या न प्रवर्त्तते वायुसमारम्भे, अपि त्वहितमेतद्वायुसमारम्भणमिति मत्वा परिहरति, अतो य आतङ्कदर्शी भवति विमलविवेकभावात् स वायुसमारम्भस्य जुगुप्सायां प्रभुः, हिताहितप्राप्तिपरिहारानुष्ठानप्रवृत्तेः, तदन्यैवंविधपुरुषवदिति । वायुकायसमारम्भनिवृत्तेः कारणमाह—'जे अज्झत्थ'मित्यादि, आत्मानमधिकृत्य यद्वर्त्तते तदध्यात्मं, तच्च सुखदुःखादि, तद्यो जानाति–अवबुध्यते स्वरूपतोऽवगच्छतीत्यर्थः, स बहिरपि प्राणिगणं वायुकायादिकं जानाति, यथैषोऽपि हि सुखाभिलाषी दुःखाच्चोद्विजते, यथा मयि दुःखमापतितमतिकटुकमसद्वेद्यकर्मोदयादशुभफलं स्वानुभवसिद्धं एवं यो वेत्ति स्वात्मनि सुखं च सद्वेद्यकर्मोदयात् शुभफलमेवं च योऽवगच्छति स खल्वध्यात्मं जानाति, एवं च योऽध्यात्मवेदी स बहिर्व्यवस्थितवायुकायादिप्राणिगणस्यापि नानाविधोपक्रमजनितं स्वपरसमुत्थं च शरीरमनःसमाश्रयं दुःखं सुखं वा वेत्ति, स्वप्रत्यक्षतया परत्राप्यनुमीयते, यस्य पुनः स्वात्मन्येव विज्ञानमेवंविधं न समस्ति कुतस्तस्य बहिर्व्यवस्थितवायुकायादिष्वपेक्षा?, यश्च बहिर्जानाति सोऽध्यात्मं यथावदवैति, इतैरतराव्यभिचारादिति । परात्मपरिज्ञानाच्च यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह—'एयं

॥ ७६ ॥

१ सुविहिताः ततः श्रावकराक्षसात् मुच्येयम् ॥ १३ ॥ आतङ्कभयोद्विग्नस्तदा स नित्यमुद्युक्तो जातः । कोविदमतिश्च समये राज्ञा क्षमितः पश्चात् ॥ १४ ॥ द्रव्यातङ्कादर्शी आत्मानं सर्वथा निवर्त्तयति । अहितारम्भात् सदा यथा शिष्यो धर्मघोषस्य ॥ १५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [५६]

दीप अनुक्रम [५७]

तुलमन्नेसि'मित्यादि, एतां तुलां यथोक्तलक्षणाम् अन्वेषयेद्–गवेषयेदिति, का पुनरसौ तुला ?, यथाऽऽत्मानं सर्व्वथा सुखाभिलाषितया रक्षसि तथाऽपरमपि रक्ष, यथा परं तथाऽऽत्मानमित्येतां तुलां तुलितस्वपरसुखदुःखानुभवोऽन्वेषयेद्–एवं कुर्यादित्यर्थः, उक्तं च—"कट्ठेणं कंटएण व पाए विद्धस्स वेयणट्टस्स । जह होइ अनिव्वाणी सव्वत्थ जिएसु तं जाण ॥ १ ॥" तथा "मरिष्यामीति यद् दुःखं, पुरुषस्योपजायते । शक्यस्तेनानुमानेन, परोऽपि परिरक्षितुम् ॥ १ ॥"॥ अतश्च यथाऽभिहिततुलातुलितस्वपरा नराः स्थावरजङ्गमजन्तुसङ्घातरक्षणायैव प्रवर्त्तन्ते, कथमिति दर्शयति—

इह संतिगया दविया णावकंखंति जीविउं (सू० ५७)

'इह' एतस्मिन् दयैकरसे जिनप्रवचने शमनं शान्तिः–उपशमः प्रशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणसम्यग्दर्शनज्ञानचरणकलापः शान्तिरुच्यते, निराबाधमोक्षाख्यशान्तिप्राप्तिकारणत्वात्, तामेवंविधां शान्तिं गताः–प्राप्ताः शान्तिगताः, शान्तौ वा स्थिताः शान्तिगताः, द्रविका नाम रागद्वेषविनिर्मुक्ताः, द्रवः–संयमः सप्तदशविधानः कर्म्मकाठिन्यद्रवणकारित्वाद्–विलयहेतुत्वात् स येषां विद्यते ते द्रविकाः, नावकाङ्क्षन्ति–न वाञ्छन्ति नाभिलषन्तीत्यर्थः, किं नावकाङ्क्षन्ति ?–'जीवितुं' प्राणान् धारयितुं, केनोपायेन जीवितुं नाभिकाङ्क्षन्ति ?, वायुजीवोपमर्दनेनेत्यर्थः, शेषपृथिव्यादिजीवकायसंरक्षणं तु पूर्वोक्तमेव, समुदायार्थस्त्वयम्–इहैव जैने प्रवचने यः संयमस्तद्व्यवस्थिता एवोन्मूलितातितुङ्गरा-

१ काष्ठेन कण्टकेन वा पादे विद्धस्य वेदनार्त्तस्य । यथा भवत्यनिर्वाणी (असाता) सर्वत्र जीवेषु तां जानीहि ॥ १ ॥ २ खपरान्तराः. प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [५७]

दीप अनुक्रम [५८]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ७७ ॥

शस्त्र.परि१ उद्देशकः ७

गद्वेषद्रुमाः परभूतोपमर्दनिष्पन्नसुखजीविकानिरभिलाषाः साधवो, नान्यत्र, एवंविधक्रियावबोधाभावादिति ॥ एवं व्यवस्थिते सति—

लज्जमाणे पुढो पास अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्मसमारंभेणं वाउसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति । तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया । इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाईमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव वाउसत्थं समारभति अण्णेहिं वा वाउसत्थं समारंभावेइ अण्णे वाउसत्थं समारंभंते समणुजाणति, तं से अहियाए तं से अबोहीए, से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए सोच्चा भगवओ अणगाराणं अंतिए इहमेगेसिं णायं भवति—एस खलु गंथे एस खलु मोहे एस खलु मारे एस खलु णिरए, इच्चत्थं गड्डिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्मसमारंभेणं वाउसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति (सू० ५८)

॥ ७७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५९]

दीप अनुक्रम [६०]

से बेमि संति संपाइमा पाणा आहच्च संपयंति य फरिसं च खलु पुट्ठा एगे संघायमावज्जंति, जे तत्थ संघायमावज्जंति ते तत्थ परियावज्जंति, जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उद्दायंति, एत्थ सत्थं समारभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति, एत्थ सत्थं असमारभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वाउसत्थं समारंभेज्जा णेवऽण्णेहिं वाउसत्थं समारंभावेज्जा णेवऽण्णे वाउसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा, जस्सेते वाउसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे (सू० ५९) त्तिबेमि

पूर्ववन्नेयं ॥ सम्प्रति षड्जीवनिकायविषयवधकारिणामपायदिदर्शयिषया तन्निवृत्तिकारिणां च सम्पूर्णमुनिभावप्रदर्शनाय सूत्राणि प्रक्रम्यन्ते—

एत्थंपि जाणे उवादीयमाणा, जे आयारे ण रमंति, आरंभमाणा विणयं वयंति, छंदोवणीया अज्झोववण्णा, आरंभसत्ता पकरंति संगं (सू० ६०)

एतस्मिन्नपि—प्रस्तुते वायुकाये, अपिशब्दात् पृथिव्यादिषु च समाश्रितमारम्भं ये कुर्व्वन्ति ते उपादीयन्ते—कर्म्मणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[६०]

दीप
अनुक्रम
[६१]

बध्यन्त इत्यर्थः, एकस्मिन् जीवनिकाये वधप्रवृत्तः शेषनिकायवधजनितेन कर्मणा बध्यते, किमिति ?–यतो न ह्येकजीवनिकायविषय आरम्भः शेषजीवनिकायोपमर्दमन्तरेण कर्तुं शक्यत इत्यतस्त्वमेवं जानीहि, श्रोतुरनेन परामर्शः, अत्र च द्वितीयार्थे प्रथमा, ततश्चैवमन्वयो लगयितव्यः–पृथिव्याद्यारम्भिणः शेषकायारम्भकर्मणा उपादीयमानान् जानीहि, के पुनः पृथिव्याद्यारम्भिणः शेषकायारम्भकर्म्मणोपादीयन्ते ? इति, आह—'जे आयारे ण रमंति' ये ह्यविदितपरमार्था ज्ञानदर्शनचरणतपोवीर्याख्ये पञ्चप्रकाराचारे 'न रमन्ते'न धृतिं कुर्व्वन्ति, तद्धृत्या च पृथिव्याद्यारम्भिणः, तान् कर्म्मभिरुपादीयमानान् जानीहि, के पुनराचारे न रमन्ते ?, शाक्यदिगम्बरपार्श्वस्थादयः । किमिति ?, यत आह—'आरंभमाणा विणयं वयंति' आरम्भमाणा अपि पृथिव्यादीन् जीवान् विनयं–संयममेव भाषन्ते, कर्माष्टकविनयनाद्विनयः–संयमः, शाक्यादयो हि वयमपि विनयव्यवस्थिता इत्येवं भाषन्ते, न च पृथिव्यादिजीवाभ्युपगमं कुर्व्वन्ति, तदभ्युपगमे वा तदाश्रितारम्भित्वात् ज्ञानाद्याचारविकलत्वेन नष्टशीला इति । किं पुनः कारणं ?, येनैवं ते दुष्टशीला अपि विनयव्यवस्थितमात्मानं भाषन्ते इत्यत आह—'छन्दोवणीया अज्झोववण्णा' छन्दः–स्वाभिप्रायः इच्छामात्रमनालोचितपूर्वापरं विषयाभिलाषो वा, तेन छन्दसा उपनीताः–प्रापिता आरम्भमार्गमविनीता अपि विनयं भाषन्ते, अधिकमत्यर्थमुपपन्ना तच्चित्तास्तदात्मकाः अध्युपपन्नाः–विषयपरिभोगायत्तजीविता इत्यर्थः, य एवं विषयाशाकर्षितचेतसस्ते किं कुर्युरित्याह—'आरंभसत्ता पकरंति संगं'आरम्भणमारम्भः–सावद्यानुष्ठानं तस्मिन् सक्ताः–तत्पराः प्रकर्षेण कुर्व्वन्ति, सज्यन्ते

१ छन्देनोपनीताः प्र. 'अभिप्रायवशौ छन्दौ' इत्यमरोक्तेः 'छन्दो वशेऽभिप्राये च' इति सकारान्तेऽनेकार्थोक्तेर्नायमसाधुः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६०]

दीप अनुक्रम [६१]

येन संसारे जीवाः स सङ्गः–अष्टविधं कर्म्म विषयसङ्गो वा तं सङ्गं प्रकुर्व्वन्ति, सङ्गाच्च पुनरपि संसारः, आजवंजवीभावरूपः, एवंप्रकारमपायमवाप्नोति षड्जीवनिकायघातकारीति ॥ अथ यो निवृत्तस्तदारम्भात्स किंविशिष्टो भवतीत्यत आह—

से वसुमं सव्वसमण्णागयपण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं णो अण्णेसिं, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभेज्जा णेवऽण्णेहिं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभावेज्जा णेवऽण्णे छज्जीवनिकायसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा, जस्सेते छज्जीवनिकायसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे (सू० ६१) त्तिबेमि ॥ इति सप्तमोद्देशकः । इति प्रथममध्ययनम् ॥

'से' इति पृथिव्युद्देशकाद्यभिहितनिवृत्तिगुणभाक् षड्जीवनिकायहनननिवृत्तो 'वसुमान्' वसूनि द्रव्यभावभेदाद्विधा–द्रव्यवसूनि–मरकतेन्द्रनीलवज्रादीनि भाववसूनि–सम्यक्त्वादीनि तानि यस्य यस्मिन्वा सन्ति स वसुमान् द्रव्यवानित्यर्थः, इह च भाववसुभिर्वसुमत्त्वमङ्गीक्रियते, प्रज्ञायन्ते यैस्तानि प्रज्ञानानि–यथावस्थितविषयग्राहीणि ज्ञानानि, सर्वाणि समन्वागतानि प्रज्ञानानि यस्यात्मनः स सर्वसमन्वागतप्रज्ञानः–सर्वावबोधविशेषानुगतः सर्वेन्द्रियज्ञानैः पटुभिर्यथावस्थितविषयग्राहिभिरविपरीतैरनुगत इतियावत्, तेन सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेनात्मना, अथवा सर्वेषु द्रव्यपर्यायेषु सम्यगनुगतं प्रज्ञानं

१ इतः प्राक् 'पुनः पुनस्तत्रैवोत्पत्तिः' इति प्र. न च युक्तः. २ पुनः पुनस्तत्रैव सङ्गः कर्मोत्पत्तिरूपः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

यस्यात्मनः स सर्वसमन्वागतप्रज्ञान आत्मा, भगवद्वचनप्रामाण्यादेवमेतत् द्रव्यपर्यायजातं नान्यथेति सामान्यविशेषपरिच्छेदान्निश्चिताशेषज्ञेयप्रपञ्चस्वरूपः सर्वसमन्वागतप्रज्ञान आत्मेत्युच्यते, अथवा–शुभाशुभफलसकलकलापपरिज्ञानान्नरकतिर्यङ्नरामरमोक्षसुखस्वरूपपरिज्ञानाच्चापरितुष्यन्नैकान्तिकादिगुणयुक्ते संसारसुखे मोक्षानुष्ठानमाविष्कुर्व्वन् सर्वसमन्वागतप्रज्ञान आत्माऽभिधीयते, तेनैवंविधेनात्मना ‘अकरणीयम्’ अकर्त्तव्यमिहपरलोकविरुद्धत्वादकार्यमिति मत्वा नान्वेषयेत्–न तदुपादानाय यत्नं कुर्यादित्यर्थः, किं पुनः तदकरणीयं नान्वेषणीयमिति ?, उच्यते, ‘पापं कर्म’ अधःपतनकारित्वात्पापं क्रियत इति कर्म, तच्चाष्टादशविधं प्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहक्रोधमानमायालोभप्रेमद्वेषकलहाभ्याख्यानपैशून्यपरपरिवादरत्यरतिमायामृषामिथ्यादर्शनशल्याख्यमिति, एवमेतत् पापमष्टादशभेदं नान्वेषयेत्–न कुर्यात् स्वयं न चान्यं कारयेत् न कुर्वाणमन्यमनुमोदेत। एतदेवाह–‘तं परिण्णाय मेहावी’त्यादि ‘तत्’ पापमष्टादशप्रकारं परिः–समन्तात् ज्ञात्वा मेधावी–मर्यादावान् नैव स्वयं षड्जीवनिकायशस्त्रं स्वकायपरकायादिभेदं समारभेत नैवान्यैः समारम्भयेत् न चान्यान् समारभमाणान् समनुजानीयात्, एवं यस्यैते सुपरीक्ष्यकारिणः षड्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः तद्विषयाः पापकर्म्मविशेषाः परिज्ञाता ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया च, स एव मुनिः प्रत्याख्यातकर्म्मत्वात्–प्रत्याख्याताशेषपापागमत्वात्, तदन्यैवंविधपुरुषवदिति। इतिशब्दोऽध्ययनपरिसमाप्तिप्रदर्शनाय, ब्रवीमीति सुधर्मस्वाम्याह स्वमनीषिकाव्यावृत्तये, भगवतोऽपनीतघनघातिकर्म्मचतुष्टयस्य समासादिताशेषपदार्थाविर्भावकदिव्यज्ञानस्य प्रणताशेषगीर्वाणाधिपतेश्चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वितस्य श्रीवर्द्धमानस्वामिन उपदेशात्सर्वमेतदाख्यातं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

यदतिकान्तं मयेति। उक्तः सूत्रानुगमः निक्षेपश्च ससूत्रस्पर्शनिर्युक्तिः। सम्प्रति नया नैगमादयः, ते चान्यत्र सुविचारिताः, सङ्क्षेपतस्तु सर्वेऽपि एते द्वेधा भवन्ति, ज्ञाननयाश्चरणनयाश्च, तत्र ज्ञाननया ज्ञानमेव प्रधानं मोक्षसाधनमित्यध्यवस्यन्ति, हिताहितप्राप्तिपरिहारकारित्वात् ज्ञानस्य, तत्पूर्वकसकलदुःखप्रहाणाच्च ज्ञानमेव न तु क्रिया, चरणनयास्तु चरणस्य प्राधान्यमभिदधति, अन्वयव्यतिरेकसमधिगम्यत्वात्सकलपदार्थानां, तथाहि—सत्यपि ज्ञाने सकलवस्तुग्राहिणि समुल्लसिते न चरणमन्तरेण भवधारणीयकर्मोच्छेदः, तदनुच्छेदाच्च मोक्षालाभः, तस्मान्न ज्ञानं प्रधानं, चरणे पुनः सति सर्वमूलोत्तरगुणाख्ये घातिकर्मोच्छेदः, तदुच्छेदात् केवलावबोधप्राप्तिः, ततश्च यथाख्यातचारित्रवह्निज्वालाकलापप्रतापितसकलकर्म्मकन्दोच्छेदः, तदुच्छेदादव्याबाधसुखलक्षणमोक्षावाप्तिरिति, तस्माच्चरणं प्रधानमित्यध्यवस्यामः। अत्रोच्यते, उभयमप्येतन्मिथ्यादर्शनं, यत उक्तम्—“[1]हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ किया। पासंतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो य अंधओ ॥ १ ॥” तदेवं सर्वेऽपि नयाः परस्परनिरपेक्षा मिथ्यात्वरूपतया न सम्यग्भावमनुभवन्ति, समुदितास्तु यथावस्थितार्थप्रतिपादनेन सम्यक्त्वं भवन्ति, यत उक्तम्—“[2]एवं सव्वेवि णया मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा। अण्णोण्णणिस्सिया पुण हवंति ते चेव सम्मत्तं ॥ १॥” तस्मादुभयं परस्परसापेक्षं मोक्षप्राप्तये अलं, न प्रत्येकं ज्ञानं चरणं चेति, निर्दोषः खल्वेष पक्ष इति व्यवस्थितं। तथा चोभयप्राधान्यदिदर्शयिषयाह—सव्वेसिंपि णयाणं बहुविधवत्त-

१ हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हताऽज्ञानतः क्रिया। पश्यन् पङ्गुर्दग्धो धावंश्चान्धः ॥ १ ॥ २ एवं सर्वेऽपि नयाः मिथ्यादृष्टयः स्वपक्षप्रतिबद्धाः। अन्योऽन्यनिश्रिताः पुनर्भवन्ति त एव सम्यक्त्वम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ ८० ॥

शस्त्र.परि१ उद्देशकः ७

व्वयं णिसामेत्ता । तं सव्वणयविसुद्धं जं चरणगुणट्ठिओ साहू ॥ १ ॥ चरणं च गुणश्च चरणगुणौ तयोः स्थितश्चरणगुणस्थितः, गुणशब्दोपादानात् ज्ञानमेव परिगृह्यते, यतो न कदाचिदात्मनो गुणिनस्तेन ज्ञानाख्येन गुणेन वियोगोऽस्ति, ततोऽसौ सहभावी गुणः, अतो बहुविधवक्तव्यं नयमार्गमवधार्यापि सङ्क्षेपात् ज्ञानचरणयोरेव स्थातव्यमिति निश्चयो विदुषां, न चाभिलषितप्राप्तिः केवलेन चरणेन, ज्ञानहीनत्वात्, अन्धगमिक्रियाप्रतिविशिष्टप्रदेशप्राप्तिवत्, न च ज्ञानमात्रेणाभीष्टप्राप्तिः, क्रियाहीनत्वात्, चक्षुर्ज्ञानसमन्वितपङ्गुपुरुषअर्धदग्धनगरमध्यावस्थितयथावस्थितदर्शिज्ञानवत्, तस्मादुभयं प्रधानं, नगरदाहनिर्गमे पङ्ग्वन्धसंयोगक्रियाज्ञानवत् ॥ एवमिदमाचाराङ्गसन्दोहभूतं प्रथमाध्ययनं षड्जीवनिकायस्वरूपरक्षणोपायगर्भमादिमध्यावसानेषु दयैकरसमेकान्तहितापत्तिकारि मुमुक्षुणा यदाऽधीतं भवति सूत्रतः शिक्षकेणार्थतश्चावधृतं भवति श्रद्धासंवेगाभ्यां च यथावदात्मीकृतं भवति ततोऽस्य महाव्रतारोपणमुपस्थापनं परीक्ष्य निशीथाद्यभिहितक्रमेण सचित्तपृथिवीमध्यगमनादिना श्रद्दधानस्य सर्वं यथाविधि कार्यम् । कः पुनरुपस्थापने विधिरिति ?, अत्रोच्यते, शोभनेषु तिथिकरणनक्षत्रमुहूर्त्तेषु द्रव्यक्षेत्रभावेषु च भगवतां प्रतिकृतीरभिवन्द्य प्रवर्द्धमानाभिः स्तुतिभिः अथ पादपतितोत्थितः सूरिः सह शिक्षकेण महाव्रतारोपणप्रत्ययं कायोत्सर्गमुत्सार्यैकैकं महाव्रतमादित आरभ्य त्रिरुच्चारयेद् यावन्निशिभुक्तिविरतिरविकला त्रिरुच्चारिता, पश्चादिदं त्रिरुच्चरितव्यम्—'इच्चेइयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए उपसंपज्जित्ता णं विहरामि' पश्चाद्वन्दनकं दत्त्वोत्थितोऽभिधत्ते अवनताङ्ग- ॥ ८० ॥

१ इत्येतानि पञ्च महाव्रतानि रात्रिभोजनविरमणषष्ठानि आत्महितार्थायोपसंपद्य विहरामि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[६१]

दीप
अनुक्रम
[६२]

यष्टिः—'संदिशत किं भणामी'ति ?, सूरिः प्रत्याह—'वन्दित्वाऽभिधत्स्वे'त्येवमुक्तोऽभिवन्द्योत्थितो भणति—'युष्माभिर्मम महाव्रतान्यारोपितानि इच्छाम्यनुशिष्टि'मिति, आचार्योऽपि प्रणिगदति—'निस्तारकपारगो भवाचार्यगुणैर्वर्द्धस्व' वचनविरतिसमनन्तरं च सुरभिवासचूर्णमुष्टिं शिष्यस्य शिरसि किरति, पश्चाद्वन्दनकं दत्त्वा प्रदक्षिणीकरोत्याचार्यं नमस्कारमावर्त्तयन्, पुनरपि वन्दते, तथैव च करोति सकलक्रियानुष्ठानम्, एवं त्रिप्रदक्षिणीकृत्य विरमति शिष्यः, शेषाः साधवश्चास्य मूर्ध्नि युगपद्वासमुष्टिं विमुञ्चन्ति सुरभिपरिमलां यतिजनसुलभकेसराणि वा, पश्चात्कारितकायोत्सर्गः सूरिरभिदधाति-गणस्तव कोटिकः स्थानीयं कुलं वैराख्या शाखा अमुकाभिधान आचार्य उपाध्यायश्च, साध्व्याः प्रवर्तिनी तृतीयोद्देष्टव्या, यथाऽऽसन्नं चोपस्थाप्यमाना रत्नाधिका भवन्ति, पश्चादाचाम्लं निर्विकृतिकं वा स्वगच्छसन्ततिसमायातमाचरन्तीति । एवमेतदध्ययनमादिमध्यान्तकल्याणकलापयोगि भव्यजनतामनःसमाधानाधायि प्रियविप्रयोगादिदुःखावर्त्तबहुलकषायझषादिकुलाकुलविषमसंसृतिसरित्तारणसमर्थममलदयैकरसमसकृदभ्यसितव्यं मुमुक्षुणेति ॥ आचार्यश्रीशीलाङ्कविरचिता शस्त्रपरिज्ञाध्ययनटीका समाप्तेति (ग्रन्थाग्रं श्लोकाः २२२१) ॥

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

इत्याचाराङ्गे शस्त्रपरिज्ञाध्ययनम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

नमः श्रीवर्द्धमानाय, वर्द्धमानाय पर्ययैः । उक्ताचारप्रपञ्चाय, निष्प्रपञ्चाय तायिने ॥ १ ॥

शस्त्रपरिज्ञाविवरणमतिगहनमितीव किल वृतं पूज्यैः । श्रीगन्धहस्तिमिश्रैर्विवृणोमि ततोऽहमवशिष्टम् ॥ २ ॥

उक्तं प्रथमाध्ययनं, साम्प्रतं द्वितीयमारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः-इह हि मिथ्यात्वोपशमक्षयक्षयोपशमान्यतरावाप्तसम्यग्दर्शनज्ञानकार्यस्यात्यन्तिकैकान्तानाबाधपरमानन्दस्वतत्त्वसुखानावरणज्ञानदर्शनलक्षणलक्षितमोक्षकारणस्याश्रवनिरोधनिर्जरारूपस्य मूलोत्तरगुणभेदभिन्नस्य चारित्रस्यापराशेषव्रतवृतिकल्पनिष्पादितनिष्प्रत्यूहसकलप्राणिगणसङ्घट्टनपरितापनापद्रावणनिवृत्तिरूपस्य संसिद्धये मरणाभावप्रसङ्गादभूतगुणात्मधर्म्मज्ञानोपलब्धेर्बार्हस्पत्यमतनिरासेन सामान्यतो जीवास्तित्वं प्रतिपाद्य विशेषतश्च बौद्धादिमतनिरासेनैकेन्द्रियावनिवनानलपवनवनस्पतिभेदांश्च जीवान् प्रकटय्य यथाक्रमं समानजातीयाश्मलताद्युद्भेददर्शनादर्शोमांसाङ्कुरवत् अविकृतभूमिखननोपलब्धेर्म्मण्डूकवत् विशिष्टाहारोपचयापचयशरीराभिवृद्धिक्षयान्वयव्यतिरेकगतेरर्भकशरीरवत् अपरप्रेरिताप्रतिहतानियततिरश्चीनगमनाद्गवाश्वादिवत् सालक्तकनूपुरालङ्कारकामिनीचरणताडनविकाराधिगतेः कामुकवदित्यादिभिः प्रयोगैः तथोच्चैः शिर उद्घाट्य सूक्ष्मबादरद्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियसंज्ञीतरपर्याप्तकअपर्याप्तकभेदांश्च प्रदर्श्य शस्त्रं च स्वकायपरकायभेदभिन्नं तद्वधे बन्धं विरतिं च प्रतिपाद्य पुनरपि तदेव चारित्रं यथा सम्पूर्णभावमनुभवति तथाऽनेनाध्ययनेनोपदिश्यते, तथाहि—अधिगतशस्त्रपरिज्ञासूत्रार्थस्य तत्प्रतिपादितैकेन्द्रियपृथिवीकायादि श्रद्दधानस्य सम्यक् तद्रक्षापरिणामवतः सर्वोपाधिशुद्धस्य तद्योग्यतयाऽऽरोपितपञ्चमहाव्रतभारस्य साधोर्यथा रागादिकषायलोकस्य शब्दादिविषयलोकस्य वा विजयो भवति तथाऽनेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यते ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रण दोषात् अत्र निर्युक्ति-क्रम पुन: लिखितम्, तत् कारणत्वात् मया ‘R’ संज्ञा दत्वा निर्युक्ति: ‘१६३-R’ निर्देशित:

द्वितीयं अध्ययनं “लोकविजय”आरब्ध:,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ८२ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः१

तथा च निर्युक्तिकारेणाध्ययनार्थाधिकारः शस्त्रपरिज्ञायां प्राग्निरदेशि—" लोओ जह बज्झइ जह य तं विजहियव्वं"ति, इत्यनेन सम्बन्धेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि भवन्ति। तत्र सूत्रार्थकथनमनुयोगः, तस्य द्वाराणि उपाया व्याख्याङ्गानीत्यर्थः, तानि चोपक्रमादीनि, तत्रोपक्रमो द्वेधा–शास्त्रानुगतः शास्त्रीयः लोकानुगतो लौकिक इति, निक्षेपस्त्रिधा–ओघनामसूत्रालापकनिष्पन्नभेदात्, अनुगमो द्वेधा–सूत्रानुगमो निर्युक्त्यनुगमश्च, नया–नैगमादयः। तत्र शास्त्रीयोपक्रमान्तर्गतोऽर्थाधिकारो द्वेधा–अध्ययनार्थाधिकार उद्देशार्थाधिकारश्च, तत्राध्ययनार्थाधिकारोऽध्ययनसम्बन्धे शस्त्रपरिज्ञायां प्रागेव निरदेशि, उद्देशार्थाधिकारं तु स्वयमेव निर्युक्तिकारः प्रचिकटयिषुराह—

सयणे य अदढत्तं बीयगंमि माणो अ अत्थसारो अ। भोगेसु लोगनिस्साइ लोगे अममिज्जया चेव ॥ १६१ ॥

तत्र प्रथमोद्देशकार्थाधिकारः 'स्वजने' मातापित्रादिके अभिष्वङ्गोऽधिगतसूत्रार्थेन न कार्य इत्यध्याहारः, तथा च सूत्रम्—'माया मे पिया मे' इत्यादि १, 'अदढत्तं बीयगंमि'त्ति द्वितीय उद्देशके अदृढत्वं संयमे न कार्यमिति शेषः, विषयकषायादौ चादृढत्वं कार्यमिति, वक्ष्यति च—'अरइं आउट्टे मेहावी' २, तृतीय उद्देसके 'माणो अ अत्थसारो अ'त्ति जात्याद्युपेतेन साधुना कर्म्मवशाद्विचित्रतामवगम्य सर्वमदस्थानानां मानो न कार्यः, आह च—'के गोआवादी? के माणावादी'त्यादि, अर्थसारस्य च निस्सारता वर्ण्यते, तथा च—'तिविहेण जाऽवि से तत्थ मत्ता अप्पा वा बहुगा वे'त्यादि ३, चतुर्थे तु 'भोगेसु'त्ति भोगेष्वभिष्वङ्गो न कार्य इति शेषः, यतो भोगिनामपायान् वक्ष्यति, सूत्रं च—'थीहिं लोए पव्वहिए' ४, पञ्चमे तु 'लोगणिस्साए'त्ति त्यक्तस्वजनधनमानभोगेनापि साधुना संयमदेहप्रतिपालनाय स्वार्था- ॥ ८२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रण दोषात् अत्र निर्युक्ति-क्रम पुन: लिखितम्, तत् कारणत्वात् मया 'R' संज्ञा दत्वा निर्युक्ति: '१६३-R' निर्देशित:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[६१]

दीप
अनुक्रम
[६२]

रम्भप्रवृत्तलोकनिश्रया विहर्त्तव्यमिति शेषः, तथा च सूत्रम्—'समुट्ठिए अणगारे' इत्यादि जाव परिव्वए' ५, षष्ठोद्देशके तु—' लोए अममिजया चेव' लोकनिश्रयाऽपि विहरता साधुना तस्मिन् लोके पूर्वापरसंस्तुतेऽसंस्तुते च न ममत्वं कार्यं, पङ्कजवत्तदाधारस्वभावानभिष्वङ्गिणा भाव्यमिति, तथा च सूत्रम्—जे ममाईयमइं जहाति से जहाति ममातियं' गाथातात्पर्यार्थः ॥ नामनिष्पन्ने तु निक्षपे लोकविजय इति द्विपदं नाम, तत्र लोकविजययोर्निक्षेपः कार्यः, सूत्रालापकनिष्पन्ने च निक्षेपे यानि निक्षेपार्हाणि सूत्रपदानि तेषां च निक्षेपः कार्यः, सूत्रपदोपन्यस्तमूलशब्दस्य च कषायाभिधायकत्वात् कषायाश्च निक्षेसव्याः, तदेवं नामनिष्पन्नं भविष्यत्सूत्रालापकनिष्पन्ननिक्षेपोपक्षिप्तं सामर्थ्यायातं च यन्निक्षेसव्यं तन्निर्युक्तिकारो गाथया सम्पिण्ड्याऽऽचष्टे—

लोगस्स य विजयस्स य गुणस्स मूलस्स तह य ठाणस्स। निक्खेवो कायव्वो जंमूलागं च संसारो ॥ १६४ ॥

कण्ठ्या, केवलं 'जंमूलागं च संसार' इति यन्मूलकः संसारस्तस्य च निक्षेपः कार्यः, तच्च मूलं कषायाः, यतः नारकतिर्यङ्नरामरगतिस्कन्धस्य गर्भनिषेककललार्बुदमांसपेश्यादिजन्मजरामरणशाखस्य दारिद्र्याद्यनेकव्यसनोपनिपातपत्रगहनस्य प्रियविप्रयोगाप्रियसम्प्रयोगार्थनाशानेकव्याधिशतपुष्पोपचितस्य शारीरमानसोपचिततीव्रतरदुःखोपनिपातफलस्य संसारतरोर्मूलम्—आद्यं कारणं कषायाः—कषः—संसारस्तस्याऽऽया इतिकृत्वा ॥ तदेवं यान्यत्र नामनिष्पन्ने यानि च सूत्रालापकनिष्पन्ने निक्षेसव्यपदानि सम्भवन्ति तानि निर्युक्तिकारः सुहृद्भूत्वा विवेकेनाऽऽचष्टे—

लोगोत्ति य विजओत्ति य अज्झयणे लक्खणं तु निप्फण्णं। गुणमूलं ठाणंति य सुत्तालावे य निप्फण्णं ॥१६५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ८३ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

कण्ठ्या, तत्र 'यथोद्देशस्तथा निर्देश' इति न्यायाल्लोकविजययोर्निक्षेपमाह—

लोगस्स य निक्खेवो अट्ठविहो छव्विहो उ विजयस्स । भावे कसायलोगो अहिगारो तस्स विजएणं ॥ १६६ ॥

तत्र लोक्यत इति लोकः, 'लोकृ दर्शन' इत्यस्माद्धातोः 'अकर्तरि च कारके संज्ञाया (पा. ३-३-१९) मिति घञ्, स च धर्म्माधर्म्मास्तिकायव्यवच्छिन्नमशेषद्रव्याधारं वैशाखस्थानस्थकटिन्यस्तकरयुग्मपुरुषोपलक्षितमाकाशखण्डं पञ्चास्तिकायात्मको वेति, तस्य निक्षेपोऽष्टधा–नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभवभावपर्यवभेदात्, 'छव्विहो उ विजयस्स'त्ति विजयः अभिभवः पराभवः पराजय इति पर्यायाः, तस्य निक्षेपः षड्विधो वक्ष्यते, तत्राष्टप्रकारे लोके येनात्राधिकारस्तमाह—'भावे कसायलोगो'त्ति भावलोकेनात्राधिकारः, स च भावः षट्प्रकार औदयिकादिः, तत्राप्यौदयिकभावकषायलोकेनाधिकारः, तन्मूलत्वात् संसारस्य, यद्येवं ततः किमत आह–'अहिगारो तस्स विजएणं'ति अधिकारो–व्यापारः, तस्य–औदयिकभावकषायलोकस्य 'विजयेन' पराजयेनेति गाथार्थः ॥ तत्र लोकोऽष्टधा निक्षेपार्थं प्रागुपादेशि विजयश्च षोढा, तन्निक्षेपार्थमाह—

लोगो भणिओ दव्वं खित्तं कालो अ भावविजओ अ । भव लोग भावविजओ पगयं जह बज्झई लोगो १६७

॥ ८३ ॥

तत्र लोकश्चतुर्विंशतिस्तवे विस्तरतोऽभिहितः, ननु च केयं वाचो युक्तिः? 'लोकश्चतुर्विंशतिस्तवेऽभिहित' इति, किमत्रानुपपन्नम्?, उच्यते, इह ह्यपूर्वकरणप्रक्रमाधिरूढक्षपकश्रेणिध्यानाग्निदग्धघातिकर्म्मेन्धनेनोत्पन्ननिरावरणज्ञानेन विपच्यमानतीर्थकरनामाविर्भूतचतुस्त्रिंशदतिशयोपेतेन श्रीवर्द्धमानस्वामिना हेयोपादेयार्थाविर्भावनाय सदेवमनुजायां परिषद्याचा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रण दोषात् अत्र निर्युक्ति-क्रम पुन: लिखितम्, तत् कारणत्वात् मया 'R' संज्ञा दत्वा निर्युक्ति: '१६५-R' निर्देशित:

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

रार्थो बभाषे, गणधरैश्च महामतिभिरचिन्त्यशक्त्युपेतैर्गौतमादिभिः प्रवचनार्थमशेषासुमदुपकाराय स एवाचाराङ्गतया दद्दभे, आवश्यकान्तर्भूतश्चतुर्विंशतिस्तवस्त्वारातीयकालभाविना भद्रबाहुस्वामिनाऽकारि, ततश्चायुक्तः पूर्वकालभाविन्याचाराङ्गे व्याख्यायमाने पश्चात्कालभाविना चतुर्विंशतिस्तवेनातिदेश इति कश्चित् सुकुमारमतिः, अत्राह–नैष दोषो, यतो भद्रबाहुस्वामिनाऽयमतिदेशोऽभ्यधायि, स च पूर्वमावश्यकनिर्युक्तिं विधाय पश्चादाचाराङ्गनिर्युक्तिं चक्रे, तथा चोक्तम्—"आवस्सयस्स दसकालियस्स तह उत्तरज्झमायारे"त्ति सूक्तम् । विजयस्य तु निक्षेपं नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्यादिकमाह—'दव्व'मित्यादिना, द्रव्यविजयो व्यतिरिक्तो द्रव्येण द्रव्यात् द्रव्ये वा विजयः कटुतिक्तकषायादिना श्लेष्मादेर्नृपतिमल्लादेर्वा, क्षेत्रविजयः षट्खण्डभरतादेर्यस्मिन् वा क्षेत्रे विजयः प्ररूप्यते, कालविजय इति कालेन विजयो यथा षष्टिभिर्वर्षसहस्रैर्भरतेन जितं भरतं, कालस्य प्राधान्यात्, भृतककर्मणि वा मासोऽनेन जित इति, यस्मिन् वा काले विजयो व्याख्यायत इति, भावविजय औदयिकादेर्भावस्य भावान्तरेण औपशमिकादिना विजयः । तदेवं लोकविजययोः स्वरूपमुपदर्श्य प्रकृतोपयोग्याह—'भवे'त्यादि, अत्र हि भवलोकग्रहणेन भावलोक एवाभिहितः, छन्दोभङ्गभीत्या ह्रस्व एवोपादायि, तथा चावाचि—"भावे कसायलोगो अहिगारो तस्स विजएणं'ति, तस्य औदयिकभावकषायलोकस्य औपशमिकादिभावलोकेन विजयो यत एतदत्र प्रकृतम्, इदमत्र हृदयम्–अष्टविधलोकषड्विधविजययोः प्रा-

१ आवश्यकस्य दशकालिकस्य तथोत्तराध्ययनेष्वाचारे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रण दोषात् अत्र निर्युक्ति-क्रम पुन: लिखितम्, तत् कारणत्वात् मया 'R' संज्ञा दत्वा निर्युक्ति: '१६७-R' निर्देशित:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ८४ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

ग्व्यावर्णितस्वरूपयोर्भावलोकभावविजयाभ्यामत्रोपयोग इति, यथा चाष्टप्रकारेण कर्म्मणा लोकः–प्राणिगणो बध्यते, बन्धस्योपलक्षणत्वाद्यथा च मुच्यत इत्येतदप्यत्राध्ययने प्रकृतमिति गाथार्थः ॥ तेनैव भावलोकविजयेन किं फलमित्याह—

विजिओ कसायलोगो सेयं खु तओ नियत्तिउं होइ । कामनियत्तमई खलु संसारा मुचई खिप्पं ॥ १६८ ॥

व्याख्या–'विजितः' पराजितः, कोऽसौ ?–कषायलोकः औदयिकभावकषायलोक इतियावत्, विजितकषायलोकः सन् किमवाप्नोतीत्याह–संसारान्मुच्यते क्षिप्रम्, अतस्तस्मान्निवर्त्तितुं श्रेयः, खुर्वाक्यालङ्कारे अवधारणे वा, निवर्त्तितुं श्रेय एव, किं कषायलोकादेव निवृत्तः संसारान्मुच्यते आहोश्विदन्यस्मादपि पापोपादानहेतोरिति दर्शयति—'कामे'त्यादि गाथार्द्धं सुगमम् । गतो नामनिष्पन्नो निक्षेपः, साम्प्रतं सूत्रालापकनिष्पन्ननिक्षेपावसरः, स च सूत्रे सति भवति, तत्रास्खलितादिगुणोपेतं सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारयितव्यं, तच्चेदम्—'जे गुणे से मुलट्ठाणे जे मूलट्ठाणे से गुणे' इत्यादि ॥

अस्य च निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमेन प्रतिपदं निक्षेपः क्रियते, तत्र गुणस्य पञ्चदशधा निक्षेपः–

दव्वे खित्ते काले फल पज्जव गणण करण अब्भासे । गुणअगुणे अगुणगुणे भव सीलगुणे य भावगुणे ॥१६९॥

नामगुणः स्थापनागुणः द्रव्यगुणः क्षेत्रगुणः कालगुणः फलगुणः पर्यवगुणः गणनागुणः करणगुणः अभ्यासगुणः गुणागुणः अगुणगुणः भवगुणः शीलगुणः भावगुणश्चेति गाथासमासार्थः ॥ तदेवं सूत्रानुगमेन सूत्रे समुच्चरिते निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमेन तदवयवे निक्षिप्ते सत्युपोद्घातनिर्युक्तेरवसरः, सा च 'उद्देसे'त्यादिना द्वारगाथाद्वयेनानुगन्तव्या । ॥ ८४ ॥
साम्प्रतं सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तेरवसरः, तत्रापि सुगमनामस्थापनाव्युदासेन द्रव्यादिकमाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रण दोषात् अत्र निर्युक्ति-क्रम पुन: लिखितम्, तत् कारणत्वात् मया 'R' संज्ञा दत्वा निर्युक्ति: '१६७-R' निर्देशित:

प्रत सूत्रांक [६१] दीप अनुक्रम [६२]

दव्वगुणो दव्वं चिय गुणाण जं तंमि संभवो होइ। सचित्ते अचित्ते मीसंमि य होइ दव्वंमि ॥ १७० ॥

तत्र द्रव्यगुणो नाम द्रव्यमेव, किमिति ?, गुणानां यतो गुणिनि तादात्म्येन सम्भवात् (वः), ननु च द्रव्यगुणयोर्लक्षणविधानभेदाद्भेदः, तथाहि–द्रव्यलक्षणं–गुणपर्यायवद् द्रव्यं, विधानमपि–धर्म्माधर्म्माकाशजीवपुद्गलादिकमिति, गुणलक्षणं–द्रव्याश्रयिणः सहवर्त्तिनो निर्गुणा गुणा इति, विधानमपि–ज्ञानेच्छाद्वेषरूपरसगन्धस्पर्शादयः स्वगतभेदभिन्ना इति, नैष दोषो, यतो द्रव्ये सचित्ताचित्तमिश्रभेदभिन्ने स गुणस्तादात्म्येन स्थितः, तत्राचित्तद्रव्यं द्विधा–अरूपि रूपि च, तत्रारूपिद्रव्यं त्रिधा–धर्म्माधर्म्माकाशभेदभिन्नं, तच्च गतिस्थित्यवगाहदानलक्षणं, गुणोऽप्यस्यामूर्त्तत्वागुरुलघुपर्यायलक्षणः, तत्रामूर्त्तत्वं त्रयस्यापि स्वं रूपं न भेदेन व्यवस्थितम्, अगुरुलघुपर्यायोऽपि, तत्पर्यायत्वादेव, मृदो मृत्पिण्डस्थासकोशकुशूलपर्यायवत्, रूपिद्रव्यमपि स्कन्धतद्देशप्रदेशपरमाणुभेदं, तस्य च रूपादयो गुणाः अभेदेन व्यवस्थिताः, भेदेनानुपलब्धेः, संयोगविभागाभावात्, स्वात्मवत्। तथा सचित्तमप्युपयोगलक्षणलक्षितं जीवद्रव्यं, न च तस्माद्भिन्ना ज्ञानादयो गुणाः, तद्भेदे जीवस्याचेतनत्वप्रसङ्गात्, तत्सम्बन्धाद्भविष्यतीति चेत्, अनुपासितगुरोरिदं वचो, यतो न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते, न ह्यन्धः प्रदीपशतसम्बन्धेऽपि रूपावलोकनायालमिति। अनयैव दिशा मिश्रद्रव्येऽप्येकत्वसंयोजना स्वबुद्ध्या कार्येति गाथार्थः ॥ तदेवं द्रव्यगुणयोरेकान्तेनैकत्वे प्रतिपादिते सत्याह शिष्यः–तत्किमिदानीमभेदोऽस्तु ?, नैतदप्यस्ति, यतः सर्वथाऽभेदेऽभ्युपगम्यमाने सत्येकेनैवेन्द्रियेण गुणान्तरस्याप्युपलब्धेरपरेन्द्रियवैफल्यं स्यात्, तथाहि–चूतफलरूपादौ चक्षुराद्युपलभ्यमाने रूपाद्यात्मभूतावयविद्रव्याव्यतिरिक्तरसादेरप्युपलब्धिः स्याद्, रू-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रण दोषात् अत्र निर्युक्ति-क्रम पुन: लिखितम्, तत् कारणत्वात् मया 'R' संज्ञा दत्वा निर्युक्ति: '१७०-R' इति निर्देशित:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ ८५ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

पादिस्वरूपवद्, एवं ह्यभेदः स्याद्-यदि रूपादौ समुपलभ्यमानेऽन्येऽपि समुपलभ्येरन्, अन्यथा विरुद्धधर्म्माध्यासाद्भिद्येरन् घटपटवदिति। तदेवं भेदाभेदोपपत्तिभिर्व्याकुलितमतिः शिष्यः पृच्छति-उभयथाऽपि दोषापत्तिदर्शनात्कथं गृह्णीमः?, आचार्य आह-अत एव भेदाभेदोऽस्तु, तत्राभेदपक्षे द्रव्यं गुणो भेदपक्षे तु भावो गुण इति, तथाहि-गुणगुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः सामान्यविशेषयोरवयवावयविनोर्भेदाभेदव्यवस्थानेनैवात्मभावसद्भावात्, आह हि-"[1]दव्वं पज्जवविजुयं दव्वविउत्ता य पज्जवा णत्थि। उप्पायट्ठिइभंगा हंदि दवियलक्खणं एयं ॥ १ ॥ नयास्तव स्यात्पदलाञ्छिता इमे, रसोपविद्धा इव लोहधातवः। भवन्त्यभिप्रेतफला यतस्ततो, भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः ॥ २ ॥" इत्यादि स्वयूथ्यैरत्र बहु विजृम्भितमित्यलं विस्तरेण। एतदेव निर्युक्तिकारः समस्तद्रव्यप्रधाने जीवद्रव्ये गुणभेदेन व्यवस्थितमाह—

संकुचियवियसियत्तं एसो जीवस्स होइ जीवगुणो। पूरेइ हंदि लोगं बहुप्पएसत्तणगुणेणं ॥ १७१ ॥

जीवो हि सयोगिवीर्यसद्द्रव्यतया प्रदेशसंहारविसर्गाभ्यामाधारवशात् प्रदीपवत् सङ्कुचति विकसति च, एष जीवस्यात्मभूतो गुणो, भेदं विनाऽपि षष्ठ्युपलब्धेः, तद्यथा-राहोः शिरः शिलापुत्रकस्य शरीरमिति, तद्भव एव वा सप्तसमुद्घातवशात् सङ्कुचति विकसति च, सम्यक्-समन्ततः उत्-प्राबल्येन हननम्-इतश्चेतश्चात्मप्रदेशानां प्रक्षेपणं समुद्घातः, स च कषायवेदनामारणान्तिकवैक्रियतैजसाहारककेवलिसमुद्घातभेदात् सप्तधा, तत्र कषायसमुद्घातोऽनन्ता- ॥ ८५ ॥

[1] द्रव्यं पर्यायवियुतं द्रव्यवियुताश्च पर्यवा न सन्ति। उत्पादस्थितिभङ्गा हन्दि द्रव्यलक्षणमेतत् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रण दोषात् अत्र निर्युक्ति-क्रम पुन: लिखितम्, तत् कारणत्वात् मया 'R' संज्ञा दत्वा निर्युक्ति: '१७०-R' इति निर्देशित:

प्रत सूत्रांक [६१] दीप अनुक्रम [६२]	**पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः**

नुबन्धिक्रोधाद्युपहतचेतस आत्मप्रदेशानामितश्चेतश्च प्रक्षेपः, इत्येवं तीव्रतरवेदनोपहतस्यापि वेदनासमुद्घातः, मारणान्तिकसमुद्घातो हि मुमूर्षोरसुमत आदित्सितोत्पत्तिप्रदेशे आलोकान्तादात्मप्रदेशानां भूयो भूयः प्रक्षेपसंहाराविति, वैक्रियसमुद्घातो वैक्रियलब्धिमतो वैक्रियोत्पादनाय बहिरात्मप्रदेशप्रक्षेपः, तैजससमुद्घातस्तैजसशरीरनिमित्तं तेजोलेश्यालब्धिमतस्तेजोलेश्याप्रक्षेपावसरे इति, आहारकसमुद्घातश्चतुर्दशपूर्वविद आहारकलब्धिमतः क्वचित्सन्देहापगमनाय तीर्थङ्करान्तिकगमनार्थमाहारकशरीरं समुपादातुं बहिरात्मप्रदेशप्रक्षेपः, केवलिसमुद्घातं तु समस्तलोकव्यापितयाऽन्तर्नीतान्यसमुद्घातं निर्युक्तिकारः स्वत एवाचष्टे—'पूरयति' व्याप्नोति हन्दीत्युपप्रदर्शने, किम्?—'लोकं' चतुर्दशरज्ज्वात्मकमाकाशखण्डं, कुतो?, बहुप्रदेशगुणत्वात्, तथाहि-उत्पन्नदिव्यज्ञान आयुषोऽल्पत्वमवधार्य वेदनीयस्य च प्राचुर्यं दण्डादिक्रमेण लोकप्रमाणत्वादात्मप्रदेशानां लोकमापूरयति, तदुक्तम्—"दंडं कवाडे मंथंतरे य"त्ति गाथार्थः ॥ गतो द्रव्यगुणः, क्षेत्रादिकमाह—

देवकुरु सुसमसुसमा सिद्धी निब्भय दुगादिया चेव। कल भोअणुज्जु वंके जीवमजीवे य भावंमि ॥ १७२॥

क्षेत्रगुणः देवकुर्वादिः, कालगुणे सुषमसुषमादिः, फलगुणे सिद्धिः, पर्यवगुणे निर्भजना, गणनागुणे द्विकादि, करणगुणे कलाकौशल्यम्, अभ्यासगुणे भोजनादि, गुणागुणे ऋजुता, अगुणगुणे वक्रता, भवगुणशीलगुणयोर्भावगुणार्थमुपात्तेन जीवग्रहणेन गतार्थत्वाद्गाथायां पृथगनुपादानं, भवगुणो जीवस्य नारकादिर्भवः, शीलगुणो जीवः क्षान्त्याद्यु-

१ दण्डः कपाटो मन्था अन्तराणि च.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रण दोषात् अत्र निर्युक्ति-क्रम पुनः लिखितम्, तत् कारणत्वात् मया 'R' संज्ञा दत्वा निर्युक्तिः '१७०-R' निर्देशितः

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ८६ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

पेतो, भावगुणो जीवाजीवयोः, इति संयोज्यैकैको व्याख्यायते–तत्र देवकुरूत्तरकुरुहरिवर्षरम्यकहैमवतहैरण्यवतषट्पञ्चा-
शदन्तरद्वीपकाकर्म्मभूमीनामयं गुणो, यदुत तत्रत्यमनुजा देवकुमारोपमाः सदावस्थितयौवना निरुपक्रमायुषो मनोज्ञश-
ब्दादिविषयोपभोगिनः स्वभावमार्द्दवार्जवप्रकृतिभद्रकगुणासन्नदेवलोकगतयश्च भवन्ति । कालगुणोऽपि भरतैरावतयो-
स्तिसृष्वप्येकान्तसुषमादिषु समासु स एव सदावस्थितयौवनादिरिति । फलमेव गुणः फलगुणः, फलं च क्रियाया भवति,
तस्याश्च क्रियायाः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररहिताया ऐहिकामुष्मिकार्थं प्रवृत्ताया अनात्यन्तिकोऽनैकान्तिको भवन्
फलगुणोऽप्यगुण एव भवति, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रक्रियायास्त्वैकान्तिकात्यन्तिकानाबाधसुखाख्यसिद्धिफलगुणोऽवा-
प्यते, एतदुक्तं भवति–सम्यग्दर्शनादिकैव क्रिया सिद्धिफलगुणेन फलवती, अपरा तु सांसारिकसुखफलाभास एव,
फलाध्यारोपान्निष्फलेत्यर्थः । पर्यायगुणो नाम द्रव्यस्यावस्थाविशेषः पर्यायः स एव गुणः पर्यायगुणः, गुणपर्याययोर्न-
यवादान्तरेणाभेदाभ्युपगमात्, स च निर्भजनारूपो, निश्चिता भजना निर्भजना–निश्चितो भाग इत्यर्थः, तथाहि–स्कन्ध
द्रव्यं देशप्रदेशेन भिद्यमानं परमाण्वन्तं भेदं ददाति, परमाणुरप्येकगुणकृष्णद्विगुणकृष्णादिना अनन्तशोऽपि भिद्यमानो
भेददायीति । गणनागुणो नाम द्विकादिकः, तेन च सुमहतोऽपि राशेर्गणनागुणेनेयत्ताऽवधार्यते । करणगुणो नाम
कलाकौशलं, तथाहि–उदकादौ करणपाटवार्थं गात्रोत्क्षेपादिकां क्रियां कुर्वन्ति । अभ्यासगुणो नाम भोजनादिविषयः,
तद्यथा–तदहर्जातबालकोऽपि भवान्तराभ्यासात् स्तनादिकं मुख एव प्रक्षिपति उपरतरुदितश्च भवति, यदिवाऽभ्यास-
वशात् सन्तमसेऽपि कवलादेर्मुखविवरप्रक्षेपाद्व्या(पो व्या)कुलितचेतसोऽपि च तुदद्गात्रकण्डूयनमिति । गुणागुणो नाम गुण

॥ ८६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[६१]

दीप
अनुक्रम
[६२]

एव कस्यचिदगुणत्वेन विपरिणमते, यथाऽऽर्जवोपेतस्यर्जुत्वाख्यो गुणो मायाविनः प्रत्यगुणो भवति, उक्तं च—"शाठ्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवं, शूरे निर्घृणता ऋजौ विमतिता दैन्यं प्रियाभाषिणि । तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे, तत्को नाम गुणो भवेत् स विदुषां यो दुर्ज्जनैर्नाङ्कितः ? ॥ १ ॥" । अगुणगुणो नामागुण एव च कस्यचित् गुणत्वेन विपरिणमते, स च वक्रविषयो, यथा गौर्गलिरसञ्जातकिणस्कन्धो गोगणस्य मध्ये सुखेनैवास्ते, तथा च—"गुणानामेव दौर्जन्याद्धुरि धुर्यो नियुज्यते । असञ्जातकिणस्कन्धः, सुखं जीवति गौर्गलिः ॥ १ ॥" । भवगुणो नाम भवन्ति—उत्पद्यन्ते तेषु तेषु स्थानेष्विति नारकादिर्भवः, तत्र तस्य वा गुणो भवगुणः, स च जीवविषयः, तद्यथा—नारकास्तीव्रतरवेदनासहिष्णवस्तिलशश्छिन्नसन्धानिनोऽवधिमन्तश्च भवगुणादेव भवन्ति, तिर्यञ्चश्च सदसद्विवेकविकला अपि सन्तो गगनगमनलब्धिमन्तो, गवादीनां च तृणादिकमप्यशनं शुभानुभावेनापद्यते, मनुजानां चाशेषकर्म्मक्षयो, देवानां च सर्वशुभानुभावो भवगुणादेवेति । शीलगुणो नाम परैराक्रुश्यमानोऽपि शीलगुणादेव न क्रोधवशो भवति, अथवा शब्दादिके शोभने अशोभने वा स्वभावादेव विदितवेद्यवन्माध्यस्थ्यमवलम्बते । भावगुणो नाम भावाः—औदयिकादयस्तेषां गुणो भावगुणः, स च जीवाजीवविषयः, तत्र जीवविषय औदयिकादिः षोढा, तत्रौदयिकः प्रशस्तोऽप्रशस्तश्च, तीर्थकराहारकशरीरादिः प्रशस्तः, अप्रशस्तस्तु शब्दादिविषयोपभोगहास्यरत्यरतीत्यादिः, औपशमिक उपशमश्रेण्यन्तर्गतायुष्कक्षयानुत्तरविमानप्राप्तिलक्षणस्तथा सत्कर्म्मानुदयलक्षणश्चेति, क्षायिकभावगुणश्चतुर्द्धा, तद्यथा—क्षीणसप्त-

१ ऽऽर्जवे प्र. २ दौरात्म्यात् प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

कस्य पुनर्मिथ्यात्वागमनं १ क्षीणमोहनीयस्यावश्यंभाविशेषघातिकर्म्मक्षयः २ क्षीणघातिकर्म्मणोऽनावरणज्ञानदर्शनाविर्भावः ३ अपगताशेषकर्म्मणोऽपुनर्भवस्तथाऽऽत्यन्तिकैकान्तिकानाबाधपरमानन्दलक्षणसुखावाप्ति ४ श्चेति, क्षायोपशमिकः क्षायोपशमिकदर्शनाद्यवाप्तिरिति, पारिणामिको भव्यत्वादिरिति, सान्निपातिकस्त्वौदयिकादिपञ्चभावसमकालनिष्पादितः, तद्यथा–मनुष्यगत्युदयादौदयिकः सम्पूर्णपञ्चेन्द्रियत्वावाप्तेः क्षायोपशमिकः दर्शनसप्तकक्षयात् क्षायिकः चारित्रमोहनीयोपशमादौपशमिकः भव्यत्वात्पारिणामिक इति, उक्तो जीवभावगुणः । साम्प्रतमजीवभावगुणः, स चौदयिकपारिणामिकयोरेव सम्भवति, नान्येषां, तत्रौदयिकस्तावद् उदये भव औदयिकः, स चाजीवाश्रयोऽनया विवक्षया, यदुत–काश्चित् प्रकृतयः पुद्गलविपाकिन्य एव भवन्ति, काः पुनस्ताः ?, उच्यन्ते, औदारिकादीनि शरीराणि पञ्च षट् संस्थानानि त्रीण्यङ्गोपाङ्गानि षट् संहननानि वर्णपञ्चकं गन्धद्वयं पञ्च रसा अष्टौ स्पर्शा अगुरुलघुनाम उपघातनाम पराघातनाम उद्योतनाम आतपनाम निर्म्माणनाम प्रत्येकनाम साधारणनाम स्थिरनाम अस्थिरनाम शुभनाम अशुभनाम, एताः सर्वा अपि पुद्गलविपाकिन्यः, सत्यपि जीवसम्बन्धित्वे पुद्गलविपाकित्वादासामिति, पारिणामिकोऽजीवगुणस्तु द्वेधा–अनादिपारिणामिकः सादिपारिणामिकश्चेति, तत्रानादिपारिणामिको धर्म्माधर्म्माकाशानां गतिस्थित्यवगाहलक्षणः, सादिपारिणामिकस्त्वभ्रेन्द्रधनुरादीनां परमाणूनां च वर्णादिगुणान्तरापत्तिरिति गाथातात्पर्यार्थः ॥ उक्तो गुणो, मूलनिक्षेपार्थमाह—

मूले छक्कं दव्वे ओदइउवएस आइमूलं च । खित्ते काले मूलं भावे मूलं भवे तिविहं ॥ १७३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[६१]

दीप
अनुक्रम
[६२]

मूलस्य षोढा निक्षेपो, नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात्, नामस्थापने गतार्थे, द्रव्यमूलं ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं त्रिधा–औदयिकमूलमुपदेशमूलमादिमूलं चेति, तत्रौदयिकद्रव्यमूलं वृक्षादीनां मूलत्वेन परिणतानि यानि द्रव्याणि, उपदेशमूलं यच्चिकित्सको रोगप्रतिघातसमर्थं मूलमुपदिशत्यातुरायेति, तच्च पिप्पलीमूलादिकं, आदिमूलं नाम यद्वृक्षादिमूलोत्पत्तावाद्यं कारणं, तद्यत् स्थावरनामगोत्रप्रकृतिप्रत्ययान्मूलनिर्वर्त्तनोत्तरप्रकृतिप्रत्ययाच्च मूलमुत्पद्यते, एतदुक्तं भवति–तेषामौदारिकशरीरत्वेन मूलनिर्वर्त्तकानां पुद्गलानामुदयिष्यतां कार्म्मणं शरीरमाद्यं कारणं, क्षेत्रमूलं यस्मिन् क्षेत्रे मूलमुत्पद्यते व्याख्यायते वा, एवं कालमूलमपि, यावन्तं वा कालं मूलमास्ते, भावमूलं तु त्रिधेति गाथार्थः ॥ तथाहि—

ओदइयं उवदिट्ठा आइ तिगं मूलभाव ओदइअं। आयरिओ उवदिट्ठा विणयकसायादिओ आई ॥१७४॥

भावमूलं त्रिविधम्–औदयिकभावमूलम् उपदेष्टृमूलम् आदिमूलं चेति, तत्रौदयिकभावमूलं वनस्पतिकायमूलत्वमनुभवन्नामगोत्रकर्म्मोदयात् मूलजीव एव, उपदेष्टृभावमूलं त्वाचार्य उपदेष्टा–यैः कर्म्मभिः प्राणिनो मूलत्वेनोत्पद्यन्ते, तेषामपि मोक्षसंसारयोर्वा यदादिभावमूलं तस्य चोपदेष्टेत्येतदेव दर्शयति—'विणयकसाआइओ आई' तत्र मोक्षस्यादिमूलं ज्ञानदर्शनचारित्रतपऔपचारिकरूपः पञ्चधा विनयः, तन्मूलत्वान्मोक्षावाप्तेः, तथा चाह—"विणंया णाणं णाणाउ दंसणं दंसणाहि चरणं तु। चरणाहिंतो मोक्खो मुक्खे सुक्खं अणाबाहं ॥ १ ॥ विनयफलं शुश्रूषा गुरुशुश्रूषाफलं श्रुतज्ञानम्। ज्ञानस्य फलं विरतिर्विरतिफलं चाश्रवनिरोधः ॥ २ ॥ संवरफलं तपोबलमथ तपसो निर्ज्जरा फलं दृष्टम्।

१ विनयात् ज्ञानं ज्ञानाद्दर्शनं ज्ञानदर्शनाभ्यां चरणं तु। ज्ञानदर्शनचरणेभ्यस्तु मोक्षो मोक्षे सौख्यमनाबाधम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१] दीप अनुक्रम [६२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ८८ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः१

तस्मात्क्रियानिवृत्तिः क्रियानिवृत्तेरयोगित्वम् ॥ ३ ॥ योगनिरोधाद् भवसन्ततिक्षयः सन्ततिक्षयान्मोक्षः । तस्मात्कल्याणानां सर्वेषां भाजनं विनयः ॥ ४ ॥" इत्यादि, संसारस्य त्वादिमूलं विषयकषाया इति ॥ मूलमुक्तमिदानीं स्थानस्य पञ्चदशधा निक्षेपमाह—

णामंठवणादविए खित्तद्धा उड्ढ उवरई वसही । संजम पग्गह जोहे अयल गणण संधणा भावे ॥ १७५ ॥

तत्र द्रव्यस्थानं ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्याणां सचित्ताचित्तमिश्राणां स्थानम्–आश्रयः, क्षेत्रस्थानं भरतादि ऊर्द्धाधस्तिर्यग्लोकादिर्वेति, यत्र वा क्षेत्रे स्थानं व्याख्यायते, अद्धा–कालः तत्स्थानं द्विधा–कायस्थितिभवस्थितिभेदात्, तत्र कायस्थितिः पृथिव्यप्तेजोवायूनामसङ्ख्येया उत्सर्प्पिण्यवसर्पिण्यः, वनस्पतेस्तु ता एवानन्ताः, विकलेन्द्रियाणाम(णां)-सङ्ख्येया वर्षसहस्राः, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुजानां सप्ताष्टौ वा भवाः । भवस्थितिस्तु वायूदकवनस्पतिपृथिवीनां त्रिसप्तदश-द्वाविंशतिवर्षसहस्रात्मिका, तेजसस्त्रीण्यहोरात्राणि, द्वीन्द्रियाणां शङ्खादीनां द्वादश वर्षाणि, त्रीन्द्रियाणां पिपीलिकादीनामेकोनपञ्चाशदहोरात्राणि, चतुरिन्द्रियाणां भ्रमरादीनां षण्मासाः, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्याणां त्रीणि पल्योपमानि, देवानां नारकाणां च कायस्थितेरभावाद्भवस्थितिः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणीति, इयमुत्कृष्टा द्विरूपापि, जघन्या तु सर्वेषामन्तर्मुहूर्त्तात्मिका, नवरं देवनारकयोर्दश वर्षसहस्राणीति, अथवा अद्धास्थानं–समयावलिकामुहूर्त्ताहोरात्रपक्षमासर्त्वयनसंवत्सरयुगपल्योपमसागरोपमोत्सर्प्पिण्यवसर्प्पिणीपुद्गलपरावर्त्तातीतानागतसर्वाद्धारूपमिति । ऊर्द्धस्थानं तु कायोत्सर्गादिकम्, अस्योपलक्षणत्वान्निषण्णाद्यपि गृह्यते । उपरतिः–विरतिः, तत्स्थानं देशे सर्वत्र च श्रावकसाधुविषयं । वसति- ॥ ८८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

स्थानं यो यत्र ग्रामगृहादौ वसति। संयमस्थानं संयमः–सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसम्पराययथाख्यातरूपः, तस्य पञ्चविधस्याप्यसङ्ख्येयानि संयमस्थानानि, कियदसङ्ख्यमिति चेत् अतीन्द्रियत्वादर्थस्य न साक्षान्निर्देष्टुं शक्यते, आगमानुसारोपमया तूच्यते–इहैकसमयेन सूक्ष्माग्निजीवा असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा उत्पद्यन्ते, तेभ्योऽग्निकायत्वेन परिणता असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽपि तत्कायस्थितिरसङ्ख्येयगुणाः, ततोऽप्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानान्यसङ्ख्येयगुणानि, संयमस्थानान्यप्येतावन्त्येवेति सामान्यतः, विशेषतस्तूच्यते–सामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धीनां प्रत्येकमसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशतुल्यानि संयमस्थानानि, सूक्ष्मसम्परायस्य त्वान्तर्मुहूर्त्तिकत्वादन्तर्मुहूर्त्तसमयतुल्यान्यसङ्ख्येयानि संयमस्थानानि, यथाख्यातस्य त्वेकमेवाजघन्योत्कृष्टं संयमस्थानम्, अथवा संयमश्रेण्यन्तर्गतानि संयमस्थानानि ग्राह्याणि, सा चानेन क्रमेण भवति, तद्यथा–अनन्तचारित्रपर्यायनिष्पादितमेकं संयमस्थानम्, असङ्ख्येयसंयमस्थाननिर्वर्त्तितं कण्डकं, तैश्चासङ्ख्येयैर्जनितं षट्स्थानकं, तदसङ्ख्येयात्मिका श्रेणीति। प्रग्रहस्थानं तु प्रकर्षेण गृह्यते वचोऽस्येति प्रग्रहः–ग्राह्यवाक्यो नायक इत्यर्थः, स च लौकिको लोकोत्तरश्च, तस्य स्थानं प्रग्रहस्थानं, लौकिकं तावत्पञ्चविधं, तद्यथा–राजा युवराजो महत्तरः अमात्यः कुमारश्चेति, लोकोत्तरमपि पञ्चविधं, तद्यथा–आचार्योपाध्यायप्रवृत्तिस्थविरगणावच्छेदकभेदादिति। योधस्थानं पञ्चधा, तद्यथा–आलीढप्रत्यालीढवैशाखमण्डलसमपादभेदात्। अचलस्थानं तु चतुर्द्धा–सादिसपर्यवसानादिभेदात्, तद्यथा–सादिसपर्यवसानं परमाण्वादेर्द्रव्यस्यैकप्रदेशादाववस्थानं जघन्यत एकं समयमुत्कृष्टतश्चासङ्ख्येयकालमिति, साद्यपर्यवसानं सिद्धानां भविष्यदद्धारूपम्, अनादिसपर्यवसानमतीताद्धारू-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१] दीप अनुक्रम [६२]

यस्य शैलेश्यवस्थान्त्यसमये कार्म्मणतैजसशरीरभव्यत्वानां चेति, अनाद्यपर्यवसानं धर्म्माधर्म्माकाशानामिति । गणनास्थानमेकद्व्यादिकं शीर्षप्रहेलिकापर्यन्तं । सन्धानस्थानं द्विधा–द्रव्यतो भावतश्च, पुनरप्येकैकं द्विधा–छिन्नाच्छिन्नभेदात्, तत्र द्रव्यच्छिन्नसन्धानं कञ्चुकादेः, अच्छिन्नसन्धानं तु पक्ष्मोत्पद्यमानतन्त्वादेरिति, भावसन्धानमपि प्रशस्ताप्रशस्तभेदात् द्वेधा, तत्र प्रशस्ताच्छिन्नभावसन्धानमुपशमक्षपकश्रेण्यामारोहतो जन्तोरपूर्वसंयमस्थानान्यच्छिन्नान्येव भवन्ति, श्रेणिव्यतिरेकेण वा प्रवर्द्धमानकण्डकस्येति, छिन्नप्रशस्तभावसन्धानं पुनरौपशमिकादिभावादौदयिकादिभावान्तरगतस्य पुनरपि शुद्धपरिणामवतः तत्रैव गमनम्, अप्रशस्ताच्छिन्नभावसन्धानमुपशमश्रेण्याः प्रतिपततोऽविशुद्ध्यमानपरिणामस्यानन्तानुबन्धिमिथ्यात्वोदयं यावत्, उपशमश्रेणिमन्तरेणापि कषायवशात् बन्धाध्यवसायस्थानान्युत्तरोत्तराण्यवगाहमानस्य वा इति, अप्रशस्तच्छिन्नभावसन्धानं पुनरौदयिकभावादौपशमिकादिभावान्तरसङ्क्रान्तौ सत्यां पुनस्तत्रैव गमनमिति । इह द्वारद्वयं यौगपद्येन व्याख्यातं, तत्र सन्धानस्थानं द्रव्यविषयमितरत्तु भावविषयमित्युक्तं स्थानम् ॥ अथवा भावस्थानं कषायाणां यत् स्थानं तदिह परिगृह्यते, तेषामेव जेतव्यत्वेनाधिकृतत्वात्, तेषां किं स्थानं?, यदाश्रित्य च ते भवन्ति, शब्दादिविषयानाश्रित्य च ते भवन्तीति तद्दर्शयति—

पंचसु कामगुणेसु य सद्दप्फरिसरसरूवगंधेसुं । जस्स कसाया वट्टंति मूलट्ठाणं तु संसारे ॥ १७६ ॥ ॥ ८९ ॥

तत्रेच्छानङ्गरूपः कामस्तस्य गुणा यानाश्रित्यासौ चेतसो विकारमादर्शयति, ते च शब्दस्पर्शरसरूपगन्धास्तेषु पञ्चस्वपि व्यस्तेषु समस्तेषु वा विषयभूतेषु 'यस्य' जन्तोर्विषयसुखपिपासोन्मुखस्यापरमार्थदर्शिनः संसाराभिष्वङ्गिणो राग-

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

द्वेषतिमिरोपप्लुतदृष्टेर्मनोज्ञेतरविषयोपलब्धौ सत्वां कषाया 'वर्त्तन्ते' प्रादुर्भवन्ति, तन्मूलश्च संसारपादपः प्रादुर्भवतीत्यतः शब्दादिविषयोद्भूत(ताः)कषायाः 'संसारे' संसारविषयं मूलस्थानमेवेति, एतदुक्तं भवति–रागाद्युपहतचेताः परमार्थमजानानोऽतत्स्वभावेऽपि तत्स्वभावारोपणेनान्धादप्यन्धतमः कामी मोदते, यत आह—"दृश्यं वस्तु परं न पश्यति जगत्यन्धः पुरोऽवस्थितं, रागान्धस्तु यदस्ति तत्परिहरन् यन्नास्ति तत् पश्यति । कुन्देन्दीवरपूर्णचन्द्रकलशश्रीमल्लतापल्लवानारोप्याशुचिराशिषु प्रियतमागात्रेषु यन्मोदते ॥ १ ॥" द्वेषं वा कर्कशशब्दादौ व्रजतीति, ततश्च मनोज्ञेतरशब्दादिविषयाः कषायाणां मूलस्थानं, ते च संसारस्येति गाथातात्पर्यार्थः ॥ यदि नाम शब्दादिविषयाः कषायाः कथं तेभ्यः संसार इति ?, उच्यते, यतः कर्म्मस्थितेः कषाया मूलं, साऽपि संसारस्य, संसारिणश्चावश्यंभाविनः कषाया इति, एतदेवाह—

–जह सव्वपायवाणं भूमीए पइट्ठियाइं मूलाइं । इय कम्मपायवाणं संसारपइट्ठिया मूला ॥ १७७ ॥

यथा सर्वपादपानां भूमौ प्रतिष्ठितानि मूलानि, एवं कर्मपादपानां संसारे कषायरूपाणि मूलानि प्रतिष्ठितानीति गाथार्थः ॥ ननु च कथमेतच्छ्रद्धेयं–कर्म्मणः कषाया मूलमिति?, उच्यते, यतो मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः, तथा चागमः—"जीवे णं भंते! कतिहिं ठाणेहिं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ?, गोयमा! दोहिं ठाणेहिं, तंजहा–रागेण व दोसेण व । रागे दुविहे–माया लोभे य, दोसे दुविहे–कोहे य माणे य । एएहिं चउहिं ठाणेहिं वीरिओवगूहिएहिं

१ जीवो भदन्त! कतिभिः स्थानैर्ज्ञानावरणीयं कर्म बध्नाति?, गौतम! द्वाभ्यां स्थानाभ्यां, तद्यथा–रागेण वा द्वेषेण वा । रागो द्विविधो–माया लोभश्च, द्वेषो द्विविधः–क्रोधश्च मानश्च, एतैश्चतुर्भिः स्थानैर्वीर्योपगूढैर्ज्ञानावरणीयं कर्म बध्नाति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ" एवमष्टानामपि कर्म्मणां योज्यमिति । ते च कषाया मोहनीयान्तःपातिनोऽष्टप्रकारस्य च कर्म्मणः कारणं, मोहनीयं कामगुणानां च (इति) दर्शयति—

अट्ठविहकम्मरुक्खा सव्वे ते मोहणिज्जमूलागा । कामगुणमूलगं वा तम्मूलागं च संसारो ॥ १७८ ॥

यदवादि प्राक्—'इय कम्मपायवाणं' तत्र कतिप्रकाराः ते कर्म्मपादपाः किंकारणाश्चेति?, उच्यते, अष्टविधकर्म्मवृक्षाः, ते सर्वेऽपि मोहनीयमूलाः, न केवलं कषायाः, कामगुणा अपि मोहनीयमूलाः, यस्माद्वेदोदयात् कामाः, वेदश्च मोहनीयान्तःपातीत्यतस्तन्मोहनीयं मूलम्–आद्यं कारणं यस्य संसारस्य स तथा इति गाथार्थः ॥ तदेवं पारम्पर्येण संसारकषायकामानां कारणत्वान्मोहनीयं प्रधानभावमनुभवति, तत्क्षये चावश्यम्भावी कर्म्मक्षयः, तथा चाभाणि— "जह मत्थयसूईए, हयाए हम्मए तलो । तहा कम्माणि हम्मंति, मोहणिज्जे खयं गए ॥ १ ॥" तच्च द्विधा–दर्शनचारित्रमोहनीयभेदात्, एतदेवाह—

दुविहो अ होइ मोहो दंसणमोहो चरित्तमोहो अ । कामा चरित्तमोहो तेणऽहिगारो इहं सुत्ते ॥ १७९ ॥

मोहनीयं कर्म्म द्वेधा भवति, दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं चेति, बन्धहेतोर्द्वैविध्यात्, तथाहि–अर्हत्सिद्धचैत्यतपःश्रुतगुरुसाधुसङ्घप्रत्यनीकतया दर्शनमोहनीयं कर्म्म बध्नाति, येन चासावनन्तसंसारसमुद्रान्तःपात्येवावतिष्ठते, तथा तीव्रकषायबहुरागद्वेषमोहाभिभूतः सन् देशसर्वविरत्युपघाति चारित्रमोहनीयं कर्म्म बध्नाति, तत्र मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वस- ॥ ९० ॥

१ यथा मस्तकसूच्यां हतायां हन्यते तालः । तथा कर्म्माणि हन्यन्ते मोहनीये क्षयं गते ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[६१]

दीप
अनुक्रम
[६२]

म्यक्त्वभेदात्रेधा दर्शनमोहनीयं, तथा षोडशकषायनवनोकषायभेदाच्चारित्रमोहनीयं पञ्चविंशतिधा, तत्र कामाः शब्दादयः पञ्च चारित्रमोहः, तेन चात्र सूत्रेऽधिकारो, यतः कषायाणां स्थानमत्र प्रकृतं, तच्च शब्दादिकपञ्चगुणात्मकमिति गाथार्थः ॥ तत्र चारित्रमोहनीयोत्तरप्रकृतिस्त्रीपुंनपुंसकवेदहास्यरतिलोभाश्रितकामाश्रयिणः कषायाः संसारमूलस्य च कर्म्मणः प्रधानं कारणमिति प्रचिकटयिषुराह—

संसारस्स उ मूलं कम्मं तस्सवि हुंति य कसाया ।

'संसारस्य' नारकतिर्यग्नरामरगतिसंसृतिरूपस्य(मूलं)कारणमष्टप्रकारं कर्म्म,तस्यापि कर्म्मणः कषायाः—क्रोधादयो निमित्तं भवन्ति । तेषां च प्रतिपादितशब्दादिस्थानानां प्रचुरस्थानत्वप्रतिपादनाय पुनरपि स्थानविशेषं गाथाशकलेनाह—

ते सयणपेसअत्थाइएसु अज्झत्थओ अ ठिआ ॥ १८० ॥

स्वजनः—पूर्वापरसंस्तुतो मातापितृश्वशुरादिकः प्रेष्यो—भृत्यादिरर्थो—धनधान्यकुप्यवास्तुरत्नभेदरूपः ते स्वजनादयः कृतद्वन्द्वा आदिर्येषां मित्रादीनां तेषु स्थिताः कषाया विषयरूपतया, अध्यात्मनि च विषयिरूपतया प्रसन्नचन्द्रैकेन्द्रियादीनामिति गाथार्थः ॥ तदेवं कषायस्थानप्रदर्शनेन सूत्रपदोपात्तं स्थानं परिसमाप्य तेषामेव कषायाणां सूत्रमूलपदोपात्तानां जेतव्यत्वाधिकृतानां निक्षेपमाह—

णामंठवणादविए उप्पत्ती पच्चए य आएसो । रसभावकसाए या तेण य कोहाइया चउरो ॥ १८१ ॥

यथाभूतार्थनिरपेक्षमभिधानमात्रं नाम, सद्भावासद्भावरूपा प्रतिकृतिः स्थापना, कृतभीमभ्रूकुट्युत्कटललाट(पट)घटितत्रि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ९१ ॥

शूलरक्तास्यनयनसन्दष्टाधरस्पन्दमानस्वेदसलिलचित्रपुस्ताद्यक्षवराटकादिमतेति, द्रव्यकषाया शरीरभव्यशरीराभ्यां व्यतिरिक्ताः कर्म्मद्रव्यकषाया नोकर्म्मद्रव्यकषायाश्चेति, तत्रादिसितास्तानुदीर्णोदीर्णाः पुद्गला द्रव्यप्राधान्यात् कर्मद्रव्यकषायाः, नोकर्म्मद्रव्यकषायास्तु बिभीतकादयः, उत्पत्तिकषायाः शरीरोपधिक्षेत्रवास्तुस्थाण्वादयो यदाश्रित्य तेषामुत्पत्तिः, तथा चोक्तम्—'किं एत्तो कट्ठयरं जं मूढो थाणुअम्मि आवडिओ। थाणुस्स तस्स रूसइ न अप्पणो दुप्पओगस्स ॥१॥" प्रत्ययकषायाः कषायाणां ये प्रत्ययाः–यानि बन्धकारणानि, ते चेह मनोज्ञेतरभेदाः शब्दादयः, अत एवोत्पत्तिप्रत्ययोः कार्यकारणगतो भेदः, आदेशकषायाः कृत्रिमकृतभ्रूकुटीभङ्गादयः, रसतो रसकषायः कटुतिक्तकषायपञ्चकान्तर्गतः, भावकषायाः शरीरोपधिक्षेत्रवास्तुस्वजनप्रेष्यार्थादिनिमित्ताविर्भूताः शब्दादिकामगुणकारणकार्यभूतकषायकर्मोदयात्मपरिणामविशेषाः क्रोधमानमायालोभाः, ते चैकैकशोऽनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलनभेदेन भिद्यमानाः षोडशविधा भवन्ति, तेषां च स्वरूपानुबन्धफलावि गाथाभिरभिधीयन्ते, ताश्चेमाः—"जलरेणुपुढविपव्वयराईसरिसो चउव्विहो कोहो। तिणिसलयाकट्ठट्ठियसेलत्थंभोवमो माणो ॥ १ ॥ मायावलेहिगोमुत्तिमेंढसिंगघणवंसमूलसमा। लोभो हलिद्दकद्दमखंजणकिमिरायसामाणो ॥ २ ॥ पक्खचउमासवच्छरजावज्जीवाणुगामिणो कमसो। देवणरतिरियणारयगइसाहणहेयवो भणिया ॥ ३ ॥" एषां च नामाद्यष्टविधकषायनिक्षेपाणां कतमो नयः कमिच्छतीत्येतदभिधीयते–तत्र नैग-

लोक.वि.२ उद्देशकः १

१ किमेतस्मात्कष्टकरं यन्मूढः स्थाणावापतितः। स्थाणवे तस्मै रुष्यति नात्मनो दुष्प्रयोगाय ॥ १ ॥ २ जलरेणुपृथ्वीपर्वतराजीसदृशश्चतुर्विधः क्रोधः। तिनिशलताकाष्ठास्थिशैलस्तम्भोपमो मानः ॥ १ ॥ मायाऽवलेखिकागोमूत्रिकामेषशृङ्गघनवंशीमूलसमा। लोभो हरिद्राकर्दमखञ्जनकृमिरागसमानः ॥ २ ॥ पक्षचतुर्मासवत्सरयावज्जीवानुगामिनः क्रमशः। देवनरतिर्यग्नारकगतिसाधनहेतवो भणिताः ॥ ३ ॥

॥ ९१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

मस्य सामान्यविशेषरूपत्वान्नैकगमत्वाच्च तदभिप्रायेण सर्वेऽपि साधवो नामादयः, सङ्ग्रहव्यवहारौ तु कषायसम्बन्धाभावादादेशसमुत्पत्ती नेच्छतः, ऋजुसूत्रस्तु वर्त्तमानार्थनिष्ठत्वादादेशसमुत्पत्तिस्थापना नेच्छति, शब्दस्तु नाम्नोऽपि कथञ्चिद्भावान्तर्भावान्नामभावाविच्छतीति गाथातात्पर्यार्थः ॥ तदेवं कषायाः कर्म्मकारणत्वेनोक्ताः, तदपि संसारस्य, स च कतिविध इति दर्शयति—

दव्वे खित्ते काले भवसंसारे अ भावसंसारे । पंचविहो संसारो जत्थेते संसरंति जिआ ॥ १८२ ॥

द्रव्यसंसारो व्यतिरिक्तो द्रव्यसंसृतिरूपः, क्षेत्रसंसारो येषु क्षेत्रेषु द्रव्याणि संसरन्ति, कालसंसारः यस्मिन् काल इति, नारकतिर्यङ्नरामरगतिचतुर्विधानुपूर्व्युदयाद्भवान्तरसङ्क्रमणं भवसंसारः, भावसंसारस्तु संसृतिस्वभाव औदयिकादिभावपरिणतिरूपः, तत्र च प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धानां प्रदेशविपाकानुभवनम्, एवं द्रव्यादिकः पञ्चविधः संसारः, अथवा द्रव्यादिकश्चतुर्धा संसारः, तद्यथा—अश्वाद्धस्तिनं ग्रामान्नगरं वसन्ताद् ग्रीष्मं औदयिकादौपशमिकमिति गाथार्थः ॥ तस्मिंश्च संसारे कर्मवशगाः प्राणिनः संसरन्तीत्यतः कर्म्मनिदर्शनार्थमाह—

णामंठवणाकम्मं दव्वकम्मं पओगकम्मं च । समुदाणिरियावहियं आहाकम्मं तवोकम्मं ॥ १८३ ॥
किइकम्म भावकम्मं दसविह कम्मं समासओ होइ ।

नामकर्म्म कर्म्मार्थशून्यमभिधानमात्रं, स्थापनाकर्म्म पुस्तकपत्रादौ कर्मवर्गणानां सद्भावासद्भावरूपा स्थापना, द्रव्यकर्म व्यतिरिक्तं द्विधा—द्रव्यकर्म्म नोद्रव्यकर्म्म च, तत्र द्रव्यकर्म्म कर्म्मवर्गणान्तःपातिनः पुद्गलाः बन्धयोग्या बध्यमाना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ९२ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

बद्धाश्चानुदीर्णा इति, नोद्रव्यकर्म्म कृषीवलादिकर्म्म । अथ कर्म्मवर्गणान्तःपातिनः पुद्गला द्रव्यकर्मेत्यवाचि, काः पुनस्ता वर्गणा इति सङ्कीर्त्यन्ते?, इह वर्गणाः सामान्येन चतुर्विधाः–द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात्, तत्र द्रव्यत एकद्व्यादिसङ्ख्येयासङ्ख्येयानन्तप्रदेशिकाः क्षेत्रतोऽवगाढद्रव्यैकद्व्यादिसङ्ख्येयासङ्ख्येयप्रदेशात्मिकाः कालत एकद्व्यादिसङ्ख्येयासङ्ख्येयसमयस्थितिकाः भावतो रूपरसगन्धस्पर्शस्वगतभेदात्मिकाः सामान्यतः, विशेषतस्तूच्यन्ते–तत्र परमाणूनामेका वर्गणा, एवमेकैकपरमाणूपचयात् सङ्ख्येयप्रदेशिकानां स्कन्धानां सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयप्रदेशिकानामसङ्ख्येयाः, एताश्चौदारिकादिपरिणामाग्रहणयोग्याः, अनन्तप्रदेशिकानामप्यनन्ता अग्रहणयोग्याः, ता उल्लङ्घ्य औदारिकग्रहणयोग्यास्त्वनन्तानन्तप्रदेशिकाः खल्वनन्ता एव भवन्ति, तत्रायोग्योत्कृष्टवर्गणायां रूपे प्रक्षिप्ते औदारिकशरीरग्रहणयोग्या जघन्या वर्गणा भवति, पुनरेकैकप्रदेशवृद्ध्या प्रवर्द्धमाना औदारिकयोग्योत्कृष्टवर्गणा यावदनन्ता भवन्ति, अथ जघन्योत्कृष्टयोः को विशेषः?, जघन्यात् उत्कृष्टा विशेषाधिकाः, विशेषस्त्वस्या एवौदारिकजघन्यवर्गणाया अनन्तभागः, तस्य चानन्तपरमाणुमयत्वादेकैकोत्तरप्रदेशोपचये सत्यप्यौदारिकयोग्यवर्गणानां जघन्योत्कृष्टमध्यवर्त्तिनीनामानन्त्यं, तत औदारिकयोग्योत्कृष्टवर्गणायां रूपप्रक्षेपेणायोग्यवर्गणा जघन्या भवन्ति, एता अप्येकैकप्रदेशवृद्ध्योत्कृष्टान्ता अनन्ता भवन्ति, जघन्योत्कृष्टवर्गणानां को विशेषः?, जघन्याभ्योऽसङ्ख्येयगुणा उत्कृष्टाः, ताश्च बहुप्रदेशत्वादतिसूक्ष्मपरिणामत्वाच्चौदारिकस्यानन्ता एवाग्रहणयोग्या भवन्ति, अल्पप्रदेशत्वाद्बादरपरिणामत्वाच्च वैक्रियस्यापीति, अत्र च यथा यथा प्रदेशोपचयस्तथा तथा विश्रसापरिणामवशाद्वर्गणानां सूक्ष्मतरत्वमवसेयम् । एतदेवोत्कृष्टोपरि ॥ ९२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

रूपप्रक्षेपयोग्यायोग्यादिकं वैक्रियशरीरवर्गणानां जघन्योत्कृष्टविशेषलक्षणं चावसेयं, तथा वैक्रियाहारकान्तरालवर्त्ययोग्यवर्गणानां जघन्योत्कृष्टविशेषासङ्ख्येयगुणत्वमिति, पुनरप्ययोग्यवर्गणोपरि रूपप्रक्षेपात् जघन्याहारकशरीरयोग्यवर्गणा भवन्ति, ताश्च प्रदेशवृद्ध्या वर्द्धमाना उत्कृष्टां यावदनन्ता भवन्ति, अथ जघन्योत्कृष्टयोः कियदन्तरमिति? उच्यते, जघन्याभ्य उत्कृष्टा विशेषाधिकाः, को विशेष इति चेत्?, जघन्यवर्गणाया एवानन्तभागः, तस्याप्यनन्तपरमाणुत्वादाहारकशरीरयोग्यवर्गणानां प्रदेशोत्तरवृद्धानामानन्त्यमिति भावना, तस्यामेवोत्कृष्टवर्गणायां रूपे प्रक्षिप्ते जघन्या आहारकाग्रहणयोग्यवर्गणाः, ततः प्रदेशवृद्ध्या वर्द्धमाना उत्कृष्टां यावदनन्ता एव आहारकस्य सूक्ष्मत्वाद् बहुप्रदेशत्वाच्चायोग्या एव भवन्ति, बादरत्वादल्पप्रदेशत्वाच्च तैजसस्येति, जघन्योत्कृष्टयोः कियदन्तरमिति ? उच्यते, जघन्याभ्य उत्कृष्टा अनन्तगुणाः, केन गुणकारेणेति चेत्, अभव्येभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभाग इति, तदुपरि रूपे प्रक्षिप्ते तैजसशरीरवर्गणा जघन्याः, एता अपि प्रदेशवृद्ध्या वर्द्धमाना उत्कृष्टां यावदनन्ता भवन्ति, अथ जघन्योत्कृष्टयोः कियदन्तरं?, जघन्याभ्य उत्कृष्टा विशेषाधिका, विशेषस्तु जघन्यवर्गणानन्तभागः, तस्याप्यनन्तप्रदेशत्वाज्जघन्योत्कृष्टान्तरालवर्गणानामानन्त्यं भवति, तैजसोत्कृष्टवर्गणोपरि रूपे प्रक्षिप्ते सत्यग्रहणवर्गणा भवन्ति, एवमेकादिवृद्ध्योत्कृष्टान्ता अनन्ताः, ताश्चातिसूक्ष्मत्वाद् बहुप्रदेशत्वाच्च तैजसस्याग्रहणयोग्याः, बादरत्वात् अल्पप्रदेशत्वाच्च भाषाद्रव्यस्यापीति, जघन्योत्कृष्टयोरनन्तगुणत्वेन विशेषो, गुणकारश्चाभव्येभ्योऽनन्तगुणः सिद्धानामनन्तभाग इति, तस्यामयोग्योत्कृष्टवर्गणायां रूपे प्रक्षिप्ते जघन्या भाषाद्रव्यवर्गणा भवति, तस्याश्च प्रदेशवृद्ध्या उत्कृष्टवर्गणापर्यन्तान्यनन्तानि स्थानानि

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ९२ ॥ | लोक.वि.२ उद्देशकः १

भवन्ति, जघन्योत्कृष्टयोर्विशेषो जघन्यवर्गणानन्तभागाधिकोत्कृष्टवर्गणा भवति, अत्राप्यनन्तभागस्यानन्तपरमाण्वात्म-
कत्वाद्भाषाद्रव्ययोग्यवर्गणानामानन्त्यमवसेयं, तदनेनैकादिप्रदेशवृद्धिप्रक्रमेणायोग्यवर्गणानां जघन्योत्कृष्टादिकं ज्ञातव्यं,
नवरं जघन्योत्कृष्टयोर्भेदोऽयम्-अभव्यानन्तगुणः सिद्धानन्तभागात्मकः, तासां च पूर्वहेतुकदम्बकादेव भाषाद्रव्या-
नापानद्रव्ययोरयोग्यत्वमवसेयम्, अयोग्योत्कृष्टवर्गणायां रूपे प्रक्षिप्ते आनापानवर्गणा जघन्या, ततो रूपोत्तरवृद्ध्यो-
त्कृष्टवर्गणान्ता अनन्ता भवन्ति, जघन्यातउत्कृष्टा जघन्यानन्तभागाधिका, तदुपरि रूपोत्तरवृद्ध्या जघन्योत्कृष्टभेदे-
नाग्रहणवर्गणा, विशेषस्त्वभव्येभ्योऽनन्तगुणः सिद्धानामनन्तभागः, पुनरप्ययोग्योत्कृष्टवर्गणोपरि प्रदेशादिवृद्ध्या जघ-
न्योत्कृष्टभेदा मनोद्रव्यवर्गणा, जघन्यवर्गणानन्तभागो विशेषः, पुनरपि प्रदेशोत्तरक्रमेणाग्रहणवर्गणा, विशेषश्चाभव्यानन्त-
गुणादिकः, ताश्च प्रदेशबहुत्वादतिसूक्ष्मत्वाच्च मनोद्रव्यायोग्याः, अल्पप्रदेशत्वाद् बादरत्वाच्च कार्म्मणस्यापि, तदुपरि रूपे
प्रक्षिप्ते जघन्याः कार्म्मणशरीरवर्गणाः, पुनरप्येकैकप्रदेशवृद्ध्या वर्द्धमाना उत्कृष्टा यावदनन्ता भवन्ति, अथ जघन्यो-
त्कृष्टयोः कः प्रतिविशेष इति ?, उच्यते, जघन्यवर्गणानन्तभागाधिकोत्कृष्टवर्गणा, स चानन्तभागोऽनन्तानन्तपरमाण्वा-
त्मकोऽत एवानन्तभेदभिन्नाः कर्म्मद्रव्यवर्गणा एवं भवन्ति, आभिश्चात्र प्रयोजनं, द्रव्यकर्म्मणो व्याचिख्यासितत्वा-
दिति। शेषा अपि वर्गणाः क्रमायाताः विनेयजनानुग्रहार्थं व्युत्पाद्यन्ते-पुनरप्युत्कृष्टकर्म्मवर्गणोपरि रूपादिप्रक्षेपेण जघ-
न्योत्कृष्टभेदभिन्ना ध्रुववर्गणाः, जघन्याभ्य उत्कृष्टाः सर्व्वजीवेभ्योऽनन्तगुणाः, तदुपरि रूपप्रक्षेपादिक्रमेणानन्ता एव
जघन्योत्कृष्टभेदा अध्रुववर्गणाः, अध्रुवत्वादध्रुवाः, पाक्षिकसद्भावादध्रुवत्वं, जघन्योत्कृष्टभेदोऽनन्तरोक्त एव, तदुत्कृष्टो- ॥ ९३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१] दीप अनुक्रम [६२]

परि रूपादिप्रवृद्ध्या जघन्योत्कृष्टभेदा अनन्ता एव शून्या वर्गणा भवन्ति, जघन्योत्कृष्टविशेषः पूर्ववत्, तासां संसारे-
ऽप्यभावात् शून्यवर्गणा इत्यभिधानम्, एतदुक्तं भवति–अध्रुववर्गणोपरि प्रदेशवृद्ध्याऽनन्ता अपि न सम्भवन्तीति
प्रथमा शून्यवर्गणा, तदुपरि रूपादिवृद्ध्या जघन्योत्कृष्टभेदाः प्रत्येकशरीरवर्गणा भवन्ति, जघन्यातः क्षेत्रपल्योपमास-
ङ्ख्येयभागप्रदेशगुणोत्कृष्टा, तदुपरि रूपोत्तरादिवृद्ध्या जघन्योत्कृष्टभेदा अनन्ता एव शून्यवर्गणा भवन्ति, जघन्यव-
र्गणात उत्कृष्टा त्वसङ्ख्येयभागप्रदेशगुणा, तदसङ्ख्येयभागोऽप्यसङ्ख्येयलोकात्मक इति द्वितीया शून्यवर्गणा,
तदुपरि रूपादिवृद्ध्या बादरनिगोदशरीरवर्गणा जघन्यातः क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागप्रदेशगुणोत्कृष्टा, तदुपरि रूपा-
दिवृद्ध्या जघन्योत्कृष्टभेदा तृतीया शून्यवर्गणा, उत्कृष्टा जघन्यातोऽसङ्ख्येयगुणा, को गुणकार इति?, उच्यते,
अङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रदेशराशेरावलिकाकालासङ्ख्येयभागसमयप्रमाणकृतपौनःपुन्यवर्गमूलस्यासङ्ख्येयभागप्रदेशप्रमाण
इति, तदुपरि रूपोत्तरवृद्ध्या जघन्योत्कृष्टभेदा सूक्ष्मनिगोदशरीरवर्गणा, जघन्यात उत्कृष्टा आवलिकाकालासंख्येयभाग-
समयगुणा, तदुपरि रूपोत्तरवृद्ध्या जघन्योत्कृष्टभेदा चतुर्थी शून्यवर्गणा, जघन्यात उत्कृष्टा चतुरस्रीकृतलोकस्यासङ्-
ख्येयाः श्रेण्यः, ताश्च प्रतरासङ्ख्येयभागतुल्या इति, तदुपरि रूपादिवृद्ध्या जघन्योत्कृष्टभेदा महास्कन्धवर्गणा, जघ-
न्यात उत्कृष्टा क्षेत्रपल्योपमस्यासङ्ख्येयगुणा संख्येयगुणा वेति । उक्ताः समासतो वर्गणाः, विशेषार्थिना तु कर्मप्रकृति-
रवलोकनीयेति । साम्प्रतं प्रयोगकर्म, वीर्यान्तरायक्षयोपशमाविर्भूतवीर्येणात्मना प्रकर्षेण युज्यत इति प्रयोगः, स च मनो-
वाक्कायलक्षणः पञ्चदशधा, कथमिति?, उच्यते, तत्र मनोयोगः सत्यासत्यमिश्रानुभयरूपश्चतुर्द्धा, एवं वाग्योगोऽपि, काय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ ९४ ॥

लोक.वि.२

उद्देशकः १

योगः सप्तधा–औदारिकौदारिकमिश्रवैक्रियवैक्रियमिश्राहारकाहारकमिश्रकार्मणयोगभेदात्, तत्र मनोयोगो मनःपर्याप्त्या पर्याप्तस्य मनुष्यादेः, वाग्योगोऽपि द्वीन्द्रियादीनाम्, औदारिकयोगस्तिर्यग्मनुजयोः शरीरपर्याप्तेरूर्द्धं, तदारतस्तु मिश्रः, केवलिनो वा समुद्घातगतस्य द्वितीयषष्ठसप्तमसमयेषु, वैक्रियकाययोगो देवनारकबादरवायूनाम्, अन्यस्य वा वैक्रियलब्धिमतः, तन्मिश्रस्तु देवनारकयोरुत्पत्तिसमयेऽन्यस्य वा वैक्रियं निर्वर्त्तयतः, आहारककाययोगश्चतुर्दशपूर्वविद आहारकशरीरस्थस्य, तन्मिश्रस्तु निर्वर्त्तनाकाले, कार्मणयोगो विग्रहगतौ केवलिसमुद्घाते वा तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेष्विति। तदनेन पञ्चदशविधेनापि योगेनात्माऽष्टौ प्रदेशान् विहायोत्तप्तभाजनोदकवदुद्वर्त्तमानैः सर्वैरेवात्मप्रदेशैरात्मप्रदेशावष्टब्धाकाशदेशस्थं कार्मणशरीरयोग्यं कर्मदलिकं यद् बध्नाति तत्प्रयोगकर्मेत्युच्यते, उक्तं च—"[1]जाव णं एस जीवे एयइ वेयइ चलइ फंदईत्यादि ताव णं अट्ठविहबंधए वा सत्तविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा नो णं अबंधए"। समुदानकर्म सम्पूर्वादाङ्पूर्वाच्च ददातेर्ल्युडन्तात् पृषोदरादिपाठेन आकारस्योकारादेशेन रूपं भवति, तत्र प्रयोगकर्मणैकरूपतया गृहीतानां कर्मवर्गणानां सम्यग्मूलोत्तरप्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशबन्धभेदेनाङ्–मर्यादया देशसर्वोपघातिरूपया तथा स्पृष्टनिधत्तनिकाचितावस्थया च स्वीकरणं समुदानं तदेव कर्म समुदानकर्म, तत्र मूलप्रकृतिबन्धो ज्ञानावरणीयादिः, उत्तरप्रकृतिबन्धस्तूच्यते–उत्तरप्रकृतिबन्धो ज्ञानावरणीयं पञ्चधा–मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलावरणभेदात्, तत्र केवलावारकं सर्वघाति शेषाणि तु देशसर्वघातीन्यपि, दर्शनावरणीयं नवधा–निद्रापञ्चकदर्शनचतुष्टयभेदात्, तत्र ॥ ९४ ॥

१ यावदेष जीव एजते व्येजते चलति स्पन्दते, तावदष्टविधबन्धको वा सप्तविधबन्धको वा षड्विधबन्धको वा एकविधबन्धको वा, नैवाबन्धकः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

निद्रापञ्चकं प्राप्तदर्शनलब्ध्युपयोगोपघातकारि, दर्शनचतुष्टयं तु दर्शनलब्धिप्राप्तेरेव, अत्रापि केवलदर्शनावरणं सर्वघाति शेषाणि तु देशतः, वेदनीयं द्विधा–सातासातभेदात्, मोहनीयं द्विधा–दर्शनचारित्रभेदात्, तत्र दर्शनमोहनीयं त्रिधा[1]–मिथ्यात्वादिभेदात्, बन्धतस्त्वेकविधं, चारित्रमोहनीयं षोडशकषायनवनोकषायभेदात्पञ्चविंशतिविधम्[2][3], अत्रापि मिथ्यात्वं सञ्ज्वलनवर्ज्जा द्वादश कषायाश्च सर्व्वघातिन्यः, शेषास्तु देशघातिन्य इति, आयुष्कं चतुर्द्धा–नारकादिभेदात्, नाम द्विचत्वारिंशद्भेदं गत्यादिभेदात्, त्रिनवतिभेदं चोत्तरोत्तरप्रकृतिभेदात्, गतिश्चतुर्द्धा जातिरेकेन्द्रियादिभेदात्पञ्चधा शरीराणि औदारिकादिभेदात्पञ्चधा औदारिकवैक्रियाहारकभेदादङ्गोपाङ्गं त्रिधा निर्म्माणनाम सर्व्वजीवशरीरावयवनिष्पादकमेकधा बन्धननाम औदारिकादिकर्म्मवर्गणैकत्वापादकं पञ्चधा सङ्घातनामौदारिकादिकर्म्मवर्गणारचनाविशेषसंस्थापकं पञ्चधा संस्थाननाम समचतुरस्रादि षोढा संहनननाम वज्रऋषभनाराचादि षोढैव स्पर्शोऽष्टधा रसः पञ्चधा गन्धो द्विधा वर्णः पञ्चधा आनुपूर्वी नारकादिश्चतुर्द्धा विहायोगतिः प्रशस्ताप्रशस्तभेदात् द्विधा अगुरुलघूपघातपराघातातपोद्योतोच्छ्वासप्रत्येकसाधारणत्रसस्थावरशुभाशुभसुभगदुर्भगसुस्वरदुःस्वरसूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकस्थिरास्थिरादेयानादेययशःकीर्त्तिअयशःकीर्त्तितीर्थकरनामानि प्रत्येकमेकविधानीति, गोत्रमुच्चनीचभेदात् द्विधा, अन्तरायं दानलाभभोगोपभोगवीर्यभेदात् पञ्चधेत्युक्तः प्रकृतिबन्धो, बन्धकारणानि तु गाथाभिरुच्यन्ते—"पडिणीयमंतराइय[4] उवघाए

---

१ सप्तधा–अनन्तानुबन्धिमिथ्यात्वादिभेदात् बन्धतस्तु पञ्चधा प्र. २ द्वादश प्र. ३ एकविंशतिविधम् प्र. ४ प्रत्यनीकत्वेऽन्तराय उपघाते.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ ९५ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

तप्पंओस णिण्हवणे । आवरणदुगं बन्धइ भूओ अच्चासणाए य ॥ १ ॥ भूयाणुकंपवयजोगउज्जुओ खंतिदाणगुरुभत्तो । बन्धइ भूओ सायं विवरीए बन्धई इयरं ॥ २ ॥ अरहंतसिद्धचेइयतवसुअगुरुसाधुसंघपडिणीओ । बंधइ दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेणं ॥ ३ ॥ तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणतो रागदोससंजुत्तो । बंधइ चरित्तमोहं दुविहंपि चरित्तगुणघाई ॥ ४ ॥ मिच्छद्दिट्ठी महारंभपरिग्गहो तिव्वलोभ णिस्सीलो । निरआउयं निबंधइ पावमती रोद्दपरिणामो ॥ ५ ॥ उम्मग्गदेसओ मग्गणासओ गूढहियय माइल्लो । सढसीलो अ ससल्लो तिरिआउं बंधई जीवो ॥ ६ ॥ पगतीऍ तणुकसाओ दाणरओ सीलसंजमविहूणो । मज्झिमगुणेहिँ जुत्तो मणुयाउं बन्धई जीवो ॥ ७ ॥ अणुव्वयमहव्वएहि य बालतवोऽकामनिज्जराए य । देवाउयं णिबंधइ सम्मद्दिट्ठी उ जो जीवो ॥ ८ ॥ मणवयणकायवंको माइल्लो गारवेहिँ पडिबद्धो । असुभं बंधइ नामं तप्पडिपक्खेहिँ सुभनामं ॥ ९ ॥ अरिहंतादिसु भत्तो सुत्तरुई पयणुमाण गुणपेही । बन्धइ

---

१ तत्प्रद्वेषे निह्नवने । आवरणद्विकं बध्नाति भूतोऽत्याशातनया च ॥१॥ भूतानुकम्पाव्रतयोगोद्युक्तः क्षान्ति (मान्) दानी गुरुभक्तः । बध्नाति भूतः सातं विपरीतो बध्नातीतरत् ॥ २ ॥ अर्हत्सिद्धचैत्यतपःश्रुतगुरुसाधुसङ्घप्रत्यनीकः । बध्नाति दर्शनमोहमनन्तसंसारिको येन ॥३॥ तीव्रकषायो बहुमोहपरिणतो रागद्वेषसंयुक्तः । बध्नाति चारित्रमोहं द्विविधमपि चारित्रगुणघाति ॥ ४ ॥ मिथ्यादृष्टिर्महारम्भपरिग्रहस्तीव्रलोभो निश्शीलः । नरकायुष्कं निबध्नाति पापमती रौद्रपरिणामः ॥ ५ ॥ उन्मार्गदेशको मार्गनाशको गूढहृदयो मायावी । शाठ्यशीलश्च सशल्यस्तिर्यगायुर्बध्नाति जीवः ॥ ६ ॥ प्रकृत्या तनुकषायो दानरतः शीलसंयमविहीनः । मध्यमगुणैर्युक्तो मनुजायुर्बध्नाति जीवः ॥ ७ ॥ अणुव्रतमहाव्रतैश्च बालतपोऽकामनिर्जरया च । देवायुर्निबध्नाति सम्यग्दृष्टिश्च यो जीवः ॥ ८ ॥ मनोवचनकायवक्रो मायावी गौरवैः प्रतिबद्धः । अशुभं बध्नाति नाम तत्प्रतिपक्षैः शुभनाम ॥ ९ ॥ अर्हदादिषु भक्तः सूत्ररुचिः प्रतनुमानो गुणप्रेक्षी ।

॥ ९५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

उच्चांगोयं विवरीए बंधई इयरं ॥ १० ॥ पाणवहादीसु रतो जिणपूयामोक्खमग्गविग्घयरो । अज्जेइ अंतरायं ण लहइ जेणिच्छियं लाभं ॥ ११ ॥" स्थितिबन्धो मूलोत्तरप्रकृतीनामुत्कृष्टजघन्यभेदः, तत्रोत्कृष्टो मूलप्रकृतीनां ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयान्तरायाणां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः, यस्य च यावत्यः कोटीकोट्यः स्थितिस्तस्य तावन्त्येव वर्षशतान्यबाधा, तदुपरि प्रदेशतो विपाकतो वा अनुभवः, एतदेव प्रतिकर्म्मस्थिति योजनीयं, सप्ततिर्म्मोहनीयस्य, नामगोत्रयोर्विंशतिः, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः पूर्वकोटीत्रिभागोऽबाधा । जघन्यो ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयान्तरायाणामन्तर्मुहूर्त्तं, नामगोत्रयोरष्टौ मुहूर्त्ताः, वेदनीयस्य द्वादश, आयुषः क्षुल्लकभवः, स चानापानसप्तदशभागः । साम्प्रतमेतदेव बन्धद्वयमुत्तरप्रकृतीनामुच्यते–तत्रोत्कृष्टो मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलावरणनिद्रापञ्चकचक्षुर्दर्शनादिचतुष्कासद्वेद्यदानाद्यन्तरायपञ्चकभेदानां विंशतेरुत्तरप्रकृतीनां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः, स्त्रीवेदसातवेदनीयमनुजगत्यानुपूर्वीणां चतसृणां पञ्चदश, मिथ्यात्वस्यौघिकमोहनीयवत्, कषायषोडशकस्य चत्वारिंशत् कोटीकोट्यः, नपुंसकवेदारतिशोकभयजुगुप्सानरकतिर्यग्गत्येकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकवैक्रियशरीरतदङ्गोपाङ्गद्वयतैजसकार्म्मणहुण्डसंस्थानान्त्यसंहननवर्णगन्धरसस्पर्शनरकतिर्यगानुपूर्वीअगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासातपोद्योताप्रशस्तविहायोगतित्रसस्थावरबादरपर्याप्तकप्रत्येकास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशःकीर्त्तिनिर्माणनीचैर्गोत्ररूपाणां त्रिचत्वारिंशत उत्तरप्रकृतीनां विंशतिः, पुंवेदहास्यरतिदेवगत्यानुपूर्वीद्वयाद्यसंस्थानसंहननप्रशस्तविहायोगतिस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्त्त्युच्चैर्गोत्ररूपाणां प-

१ बध्नात्युच्चैर्गोत्रं विपरीतो बध्नातीतरत् ॥ १० ॥ प्राणवधादिषु रतो जिनपूजामोक्षमार्गविघ्नकरः । अर्जयत्यन्तरायं न लभते येनेप्सितं लाभम् ॥ ११ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

ञ्चदशानामुत्तरप्रकृतीनां दश, न्यग्रोधसंस्थानद्वितीयसंहननयोर्द्वादश तृतीयसंस्थाननाराचसंहननयोश्चतुर्दश कुब्जसंस्थानार्धनाराचसंहननयोः षोडश वामनसंस्थानकीलिकासंहननद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिसूक्ष्मापर्याप्तकसाधारणानामष्टानामुत्तरप्रकृतीनामष्टादश, आहारकतदङ्गोपाङ्गतीर्थंकरनाम्नां सागरोपमकोटीकोटिर्भिन्नान्तर्मुहूर्त्तमबाधा, देवनारकायुषोरौघिकवत्, तिर्यग्मनुष्यायुषः पल्योपमत्रयं पूर्वकोटित्रिभागोऽबाधा। उक्त उत्कृष्टः स्थितिबन्धो, जघन्य उच्यते–मत्यादिपञ्चकचक्षुर्दर्शनाद्यावरणचतुष्कसञ्ज्वलनलोभदानाद्यन्तरायपञ्चकभेदानां पञ्चदशानामन्तर्मुहूर्त्तमन्तर्मुहूर्त्तमेवाबाधा, निद्रापञ्चकासातावेदनीयानां षण्णां सागरोपमस्य त्रयः सप्तभागाः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनाः, सातावेदनीयस्य द्वादश मुहूर्त्ता अन्तर्मुहूर्त्तमबाधा, मिथ्यात्वस्य सागरोपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनम्, आद्यकषायद्वादशकस्य चत्वारः सप्तभागाः सागरोपमस्य पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनाः, सञ्ज्वलनक्रोधस्य मासद्वयं, मानस्य मासः, तदर्धं मायायाः, पुंवेदस्याष्टौ संवत्सराः, सर्वत्रान्तर्मुहूर्त्तमबाधा, शेषनोकषायमनुष्यतिर्यग्गतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकतदङ्गोपाङ्गतैजसकार्म्मणषट्संस्थानसंहननवर्णगन्धरसस्पर्शतिर्यग्मनुजानुपूर्व्वीअगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासातपोद्योतप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतियशःकीर्त्तिवर्जत्रसादिविंशतिकनिर्म्माणनीचैर्गोत्रदेवगत्यानुपूर्वीद्वयनरकगत्यानुपूर्वीद्वयवैक्रियशरीरतदङ्गोपाङ्गरूपाणामष्टषष्ठ्युत्तरप्रकृतीनां सागरोपमस्य द्वौ सप्तभागौ पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनौ अन्तर्मुहूर्त्तमबाधा, वैक्रियषट्कस्य तु सागरोपमसह-

१ गतिजातिपञ्चकौदा० प्र. २ देवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकआहारकद्विकयशःकीर्त्तितीर्थंकरनामकर्मरहितानां शेषनामप्रकृतीनां तथा नीचैर्गोत्रस्य चेत्यासामुत्तरप्रकृतीनां प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[६१]

दीप
अनुक्रम
[६२]

स्रस्य द्वौ सप्तभागौ पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनावन्तर्मुहूर्त्तमबाधा, आहारकतदङ्गोपाङ्गतीर्थकरनाम्नां सागरोपमकोटीकोटिर्भिन्नान्तर्मुहूर्त्तमबाधा, ननु चोत्कृष्टोऽप्येतावन्मात्र एवाभिहितस्ततः कोऽनयोर्भेद इति?, उच्यते, उत्कृष्टात् सङ्ख्येयगुणहीनो जघन्य इति, यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रयोरष्टमुहूर्त्तान्यन्तर्मुहूर्त्तमबाधा, देवनारकायुषोर्दश वर्षसहस्राण्यन्तर्मुहूर्त्तमबाधा, तिर्यग्मनुजायुषोः क्षुल्लकभवोऽन्तर्मुहूर्त्तमबाधेति, बन्धनसङ्घातयोरौदारिकादिशरीरसहचरितत्वात्तद्वत एवोत्कृष्टजघन्यभेदोऽवगन्तव्य इति । उक्तः स्थितिबन्धः, अनुभावबन्धस्तूच्यते—तत्र शुभाशुभानां कर्मप्रकृतीनां प्रयोगकर्मणोपात्तानां प्रकृतिस्थितिप्रदेशरूपाणां तीव्रमन्दानुभावतयाऽनुभवनमनुभावः, स चैकद्वित्रिचतुःस्थानभेदेनानुगन्तव्यः, तत्राशुभप्रकृतीनां कोशातकीरससमक्वथ्यमानार्द्धत्रिभागपादावशेषतुल्यतया तीव्रानुभावोऽवगन्तव्यो, मन्दानुभावस्तु जातिरसैकद्वित्रिचतुर्गुणोदकप्रक्षेपास्वादतुल्यतयेति, शुभानां तु क्षीरेक्षुरसदृष्टान्तः पूर्ववद्योजनीयः, अत्र च कोशातकीक्षुरसादावुदकबिन्द्वादिप्रक्षेपात् व्यत्ययाद्वा भेदानामानन्त्यमवसेयमिति । अत्र चायूंषि भवविपाकीनि आनुपूर्व्यः क्षेत्रविपाकिन्यः शरीरसंस्थानाङ्गोपाङ्गसङ्घातसंहननवर्णगन्धरसस्पर्शागुरुलघूपघातपराघातोद्योतातपनिर्म्माणप्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिरशुभाशुभरूपाः पुद्गलविपाकिन्यः, शेषास्तु ज्ञानावरणादिका जीवविपाकिन्य इत्युक्तोऽनुभावबन्धः । प्रदेशबन्धस्त्वेकविधादिबन्धकापेक्षया भवति, तत्र यदैकविधं बध्नाति तदा प्रयोगकर्मणैकसमयोपात्ताः पुद्गलाः सातावेदनीयभावेन विपरिणमन्ते, षड्विधबन्धकस्य त्वायुर्मोहनीयवर्जः षोढा, सप्तविधबन्धकस्य सप्तधा, अष्टविधबन्धकस्याष्टधेति, तत्राद्यसमयप्रयोगात्ताः पुद्गलाः समुदानेन द्वितीयादिसमयेष्वल्पबहुप्रदेशतयाऽनेन क्रमेण व्यवस्थापयति—तत्रा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ९७ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

युषः स्तोकाः पुद्गलाः, तद्विशेषाधिकाः प्रत्येकं नामगोत्रयोः, परस्परं तुल्याः, तद्विशेषाधिकाः प्रत्येकं ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणां, तेभ्यो विशेषाधिका मोहनीये। ननु च तेभ्यो विशेषाधिका इत्यत्र निर्द्धारणे पञ्चमी, सा च “पञ्चमी विभक्ते” (पा०२-३-४२) इत्यनेन सूत्रेण विधीयते, अस्य चायमर्थो–विभागो विभक्तं तत्र पञ्चमी विधीयमाना यत्रात्यन्तविभागस्तत्रैव भवति, यथा माथुरेभ्यः पाटलिपुत्रका अभिरूपतराः, इह च कर्म्मपुद्गलानां सर्वदैकत्वं, तथावस्थानामेव च बुद्ध्या बहुप्रदेशादिगुणेन पृथक्करणं चिकीर्षितं, तत्र षष्ठी सप्तमी वा न्याय्या, तद्यथा–गवां गोषु वा कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमेति, नैष दोषो, यत्रावध्यवधिमतोः सामान्यवाची शब्दः प्रयुज्यते तत्रैव षष्ठीसप्तम्यौ, “यतश्च निर्द्धारण (पा०२-३-४१) मित्यनेन सूत्रेण विधीयेते, यथा गवां कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा, मनुष्येषु पाटलिपुत्रकाः आढ्यतराः, कर्म्मवर्गणापुद्गलानां वेदनीये बहुतरा इति, यत्र पुनर्विशेषवाची शब्दोऽवधित्वेनोपादीयते तत्र पञ्चम्येव, यथा खण्डमुण्डशबलशाबलेयधवलधावलेयव्यक्तिभ्यः कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमेति, अतो नात्र विभागः कारणमविभागो वा, यतो माथुरपाटलिपुत्रकादिविभागेन विभक्तानामपि सामान्यमनुष्यादिशब्दोच्चारणे षष्ठीसप्तम्यौ भवतो, यत्र तु पुनर्म्माथुरादिविशेषोऽवधित्वेनोपादीयते तत्र कार्यवशादेकस्थानामपि पञ्चम्येव, तदिह सत्यपि कर्म्मवर्गणानामेकत्वे तद्विशेषस्यावधित्वेनोपादानात्पञ्चम्येव न्याय्येति, तद्विशेषाधिका वेदनीये। उक्तः प्रदेशबन्धः समुदानकर्म्मापीति। साम्प्रतमीर्यापथिकं, “ईर गतिप्रेरणयोः” अस्माद्भावे ण्यत्, ईरणमीर्या तस्याः पन्था ईर्यापथस्तत्र भवमीर्यापथिकं, कश्चेर्यायाः पन्था भवति?, यदाश्रिता सा भवतीति?, एतच्च व्युत्पत्तिनिमित्तं यतस्तिष्ठतोऽपि तद्भवति, प्रवृत्तिनिमित्तं तु स्थित्यभावः, तच्चोपशान्तक्षीण- ॥ ९७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[६१]

दीप
अनुक्रम
[६२]

मोहसयोगकेवलिनां भवति, सयोगकेवलिनोऽपि हि तिष्ठतोऽपि सूक्ष्मगात्रसञ्चारा भवन्ति, उक्तं च—“केवली णं भंते! अस्सिं समयंसि जेसु आगासपदेसेसु हत्थं वा पायं वा ओगाहित्ता णं पडिसाहरेज्जा, पभू णं भंते! केवली तेसु चेवागासपदेसेसु पडिसाहरित्तए?, णो इणट्ठे समट्ठे, कहं?, केवलिस्स णं चलाइं सरीरोवगरणाइं भवंति, चलोवगरणत्ताए केवली णो सञ्चाएति तेसु चेवागासपदेसेसु हत्थं वा पायं वा पडिसाहरित्तए” तदेवं सूक्ष्मतरगात्रसञ्चाररूपेण योगेन यत्कर्म्म बध्यते तदीर्य्यापथिकम्–ईर्याप्रभवं, ईर्याहेतुकमित्यर्थः, तच्च द्विसमयस्थितिकम्–एकस्मिन् समये बद्धं द्वितीये वेदितं, तृतीयसमये तदपेक्षया चाकर्म्मतेति, कथमिति?, उच्यते, यतस्तत्प्रकृतितः सातावेदनीयमकषायत्वात् स्थित्यभावेन बध्यमानमेव परिशटति, अनुभावतोऽनुत्तरोपपातिकसुखातिशायि प्रदेशतः स्थूलरूक्षशुक्लादिबहुप्रदेशमिति, उक्तं च—“अप्पं बायरमउयं बहुं च लुक्खं च सुक्किलं चेव। मंदं महव्वतंतिय साताबहुलं च तं कम्मं ॥ १ ॥” अल्पं स्थितितः स्थितेरेवाभावात्, बादरं परिणामतोऽनुभावतो मृद्वनुभावं, बहु च बहुप्रदेशैः, रूक्षं स्पर्शतो, वर्णेन शुक्लं, मन्दं लेपतः, स्थूलचूर्णमुष्टिमृष्टकुड्यापतितलेपवत् महाव्ययमेकसमयेनैव सर्वापगमात्, सातावहुलमनुत्तरोपपातिकसुखातिशायीति। उक्तमीर्यापथिकम्, अधुना आधाकर्म्म, यदाधाय–निमित्तत्वेनाश्रित्य पूर्वोक्तमष्टप्रकारमपि कर्म्म बध्यते तदाधाकर्म्मेति, तच्च शब्दस्पर्शरसरूपगन्धादिकमिति, तथाहि–शब्दादिकामगुणविषयाभिष्वङ्गवान् सुखलिप्सुर्मोहोपहतचेताः परमार्था-

१ केवली भदन्त! अस्मिन् समये येष्वाकाशप्रदेशेषु हस्तं वा पादं वाऽवगाह्य प्रतिसंहरेत्, प्रभुर्भदन्त! केवली तेष्वेवाकाशप्रदेशेषु प्रतिसंहर्त्तुम्?, नैषोऽर्थः समर्थः, कथम्?, केवलिनश्चलानि शरीरोपकरणानि भवन्ति, चलोपकरणतया केवली न शक्नोति तेष्वेवाकाशप्रदेशेषु हस्तं वा पादं वा प्रतिसंहर्त्तुम्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६१]

दीप अनुक्रम [६२]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ९८ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

सुखमयेष्वपि सुखाध्यारोपं विदधाति, तदुक्तम्—"दुःखात्मकेषु विषयेषु सुखाभिमानः, सौख्यात्मकेषु नियमादिषु दुःखबुद्धिः। उत्कीर्णवर्णपदपङ्क्तिरिवान्यरूपा, सारूप्यमेति विपरीतगतिप्रयोगात् ॥ १ ॥" एतदुक्तं भवति–कर्म्मनिमित्तभूता मनोज्ञेतरशब्दादय एवाधाकर्म्मेत्युच्यन्ते इति। तपःकर्म्म तस्यैवाष्टप्रकारस्य कर्म्मणो बद्धस्पृष्टनिधत्तनिकाचितावस्थस्यापि निर्जराहेतुभूतं बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्वादशप्रकारं तपःकर्म्मेत्युच्यते। कृतिकर्म्म तस्यैव कर्म्मणोऽपनयनकारकमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायविषयमवनामादिरूपमिति। भावकर्म्म पुनरबाधामुल्लङ्घ्य स्वोदयेनोदीरणाकरणेन वोदीर्णाः पुद्गलाः प्रदेशविपाकाभ्यां भवक्षेत्रपुद्गलजीवेष्वनुभावं ददतो भावकर्म्मशब्देनोच्यन्त इति। तदेवं नामादिनिक्षेपेण दशधा कर्म्मोक्तम्, इह तु समुदानकर्म्मोपात्तेनाष्टविधकर्म्मणाऽधिकार इति गाथाशकलेन दर्शयति—

अट्ठविहेण उ कम्मेण एत्थ होई अहीगारो ॥ १८४ ॥

गाथार्द्धं कण्ठ्यमिति गाथाद्वयपरमार्थः ॥ तदेवं सूत्रानुगमेन सूत्रे समुच्चारिते निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमेन प्रतिपदं निक्षिप्ते नामादिनिक्षेपे च व्याख्याते सत्युत्तरकालं सूत्रं विव्रियते—

जे गुणे से मूलट्ठाणे, जे मूलट्ठाणे से गुणे। इति से गुणट्ठी महया परियावेणं पुणो पुणो रसे पमत्ते–माया मे पिया मे भज्जा मे पुत्ता मे धूआ मे ण्हुसा मे सहिसयणसंगंथसंथुआ मे विवित्तुवगरणपरिवट्टणभोयणच्छायणं मे। इच्चत्थं गड्ढिए लोए

॥ ९८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय-अध्ययने प्रथमं उद्देशक: 'स्वजन' आरब्ध:,

प्रत सूत्रांक [६२]

दीप अनुक्रम [६३]

अहो य राओ य परितप्पमाणे कालाकालसमुट्ठाई संजोगट्ठी अट्ठालोभी आलुंपे सहसाकारे विणिविट्ठचित्ते, एत्थ सत्थे पुणो पुणो, अप्पं च खलु आउयं इहमेगेसिं माणवाणं तंजहा–॥ ६२ ॥

अस्य चानन्तरपरम्परादिसूत्रैः सम्बन्धो वाच्यः, तत्रानन्तरसूत्रसम्बन्धः—'से हु मुणी परिण्णायकम्मे'ति, स मुनिः परिज्ञातकर्म्मा भवति यस्यैतद्गुणमूलादिकमधिगतं भवति, परम्परसूत्रसम्बन्धस्तु 'से जं पुण जाणिज्जा सहसंमुइयाए परवागरणेणं अण्णेसिं वा सोच्चा' स्वसम्मत्या परव्याकरणेन तीर्थकरोपदेशादन्येभ्यो वाऽऽचार्यादिभ्यः श्रुत्वा जानीयात्–परिच्छिन्द्यात्, किं तदित्युच्यते—'जे गुणे से मूलट्ठाणे', आदिसूत्रसम्बन्धस्तु 'सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं' किं तत् श्रुतं भवता यद्भगवता आयुष्मताऽऽख्यातमिति?, उच्यते, 'जे गुणे से मूलट्ठाणे,' 'य' इति सर्वनाम प्रथमान्तं मागधदेशीवचनत्वादेकारान्तं सामान्योद्देशार्थाभिधायीति, गुण्यते–भिद्यते विशेष्यतेऽनेन द्रव्यमिति गुणः, स चेह शब्दरूपरसगन्धस्पर्शादिकः, 'स' इति सर्वनाम प्रथमान्तमुद्दिष्टनिर्देशार्थाभिधायीति, 'मूल'मिति निमित्तं कारणं प्रत्यय इति पर्यायाः, तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थानं, मूलस्य स्थानं मूलस्थानं, 'व्यवच्छेदफलत्वाद् वाक्याना'मिति न्यायात् य एव शब्दादिकः कामगुणः स एव संसारस्य–नारकतिर्यङ्नरामरसंसृतिलक्षणस्य यन्मूलं कारणं कषायास्तेषां स्थानम्–आश्रयो वर्त्तते, यस्मान्मनोज्ञेतरशब्दाद्युपलब्धौ कषायोदयः, ततोऽपि संसार इति, अथवा मूलमिति–कारणं, तच्चा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[६२]

दीप
अनुक्रम
[६३]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ९९ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

ष्टप्रकारं कर्म्म, तस्य स्थानम्–आश्रयः कामगुण इति, अथवा मूलं–मोहनीयं तद्भेदो वा कामस्तस्य स्थानं शब्दादिको विषयगुणः, अथवा मूलं–शब्दादिको विषयगुणस्तस्य स्थानमिष्टानिष्टविषयगुणभेदेन व्यवस्थितो गुणरूपः संसार एव, आत्मा वा शब्दाद्युपयोगानन्यत्वाद् गुणः, अथवा मूलं–संसारस्तस्य शब्दादयः स्थानं कषाया वा, गुणोऽपि शब्दादिकः कषायपरिणतो वाऽऽत्मेति, यदिवा मूलं संसारस्य शब्दादिकषायपरिणतः सन्नात्मा तस्य स्थानं शब्दादिकं, गुणोऽप्यसावेवेति, ततश्च सर्वथा य एव गुणः स एव मूलस्थानं वर्त्तते । ननु च वर्त्तनक्रियायाः सूत्रेऽनुपादानात् कथं प्रक्षेप इति ?, उच्यते, यत्र हि काचिद्विशेषक्रिया नैवोपादायि तत्र सामान्यक्रियामस्ति भवति विद्यते वर्त्तत इत्यादिकामुपादाय वाक्यं परिसमाप्यते, एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यमिति । अथवा मूलमित्याद्यं प्रधानं वा, स्थानमिति कारणं, मूलं च तत्कारणं चेति विगृह्य कर्म्मधारयः, ततश्च य एव शब्दादिको गुणः स एव मूलस्थानं संसारस्य आद्यं प्रधानं वा कारणमिति, शेषं पूर्ववदिति । साम्प्रतमनयोरेव गुणमूलस्थानयोर्नियम्यनियामकभावं दर्शयंस्तदुपात्तानां विषयकषायादीनां बीजाङ्कुरन्यायेन परस्परतः कार्यकारणभावं सूत्रेणैव दर्शयति–'जे मूलट्ठाणे से गुणे'त्ति, यदेव संसारमूलानां कर्ममूलानां वा कषायाणां स्थानम्–आश्रयः शब्दादिको गुणोऽप्यसावेव, अथवा कषायमूलानां शब्दादीनां यत् स्थानं कर्म्म संसारो वा तत्तत्स्वभावापत्तेः गुणोऽप्यसावेवेति, अथवा शब्दादिकषायपरिणाममूलस्य संसारस्य कर्म्मणो वा यत् स्थानं–मोहनीयं कर्म्म शब्दादिकषायपरिणतो वाऽऽत्मेति तद्गुणावाप्तेः गुणोऽप्यसावेव, यदिवा–संसारकषायमूलस्यात्मनो यत् स्थानं– ॥ ९९ ॥
विषयाभिष्वङ्गोऽसावपि शब्दादिविषयत्वाद् गुणरूप एवेति । अत्र च विषयोपादानेन विषयिणोऽप्याक्षेपात् सूचनार्थ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६२]

दीप अनुक्रम [६३]

त्वाच्च सूत्रस्येत्येवमपि द्रष्टव्यं–यो गुणे गुणेषु वा वर्त्तते स मूलस्थाने मूलस्थानेषु वा वर्त्तते, यो मूलस्थानादौ वर्त्तते स एव गुणादौ वर्त्तत इति, य एव जन्तुः शब्दादिके प्राग्व्यावर्णितस्वरूपे गुणे वर्त्तते स एव संसारमूलकषायादिस्थानादौ वर्त्तते, एतदेव द्वितीयसूत्रापेक्षया व्यत्ययेन प्राग्वदायोज्यम्, अनन्तगमपर्यायत्वात् सूत्रस्यैवमपि द्रष्टव्यं–यो गुणः स एव मूलं स एव च स्थानं, यन्मूलं तदेव गुणः स्थानमपि तदेव, यत् स्थानं तदेव गुणो मूलमपि तदेवेति, यो गुणः शब्दादिकोऽसावेव संसारस्य कषायकारणत्वान्मूलं स्थानमप्यसावेव इत्येवमन्येष्वपि विकल्पेषु योज्यं, विषयनिर्देशे च विषय्यप्याक्षिप्तो, यो गुणे वर्त्तते स मूले स्थाने चेत्येवं सर्व्वत्र द्रष्टव्यम्, इह च सर्व्वज्ञप्रणीतत्वादनन्तार्थता सूत्रस्यावगन्तव्या, तथाहि–मूलमत्र कषायादिकमुपन्यस्तं, कषायाश्च क्रोधादयश्चत्वारः, क्रोधोऽप्यनन्तानुबन्ध्यादिभेदेन चतुर्द्धा, अनन्तानुबन्धिनोऽप्यसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि बन्धाध्यवसायस्थानान्यनन्ताश्च तत्पर्यायास्तेषां च प्रत्येकं स्थानगुणनिरूपणेनानन्तार्थता सूत्रस्य सम्पद्यते, सा च छद्मस्थेन सर्वायुषाऽप्यविषयत्वा(दनन्तत्वा)च्चाशक्या दर्शयितुं, दिग्दर्शनं तु कृतमेवातोऽनया दिशा कुशाग्रीयशेमुष्या गुणमूलस्थानानां परस्परतः कार्यकारणभावः संयोजना च कार्येति । तदेवं य एव गुणः स एव मूलस्थानं यदेव मूलस्थानं स एव गुण इत्युक्तं, ततः किमित्यत आह—'इति से गुणट्ठी महया' इत्यादि, इतिर्हेतौ यस्माच्छब्दादिगुणपरीत आत्मा कषायमूलस्थाने वर्त्तते, सर्वोऽपि च प्राणी 'गुणार्थी' गुणप्रयोजनी गुणानुरागीत्यतस्तेषां गुणानामप्राप्तौ प्राप्तिनाशे वा काङ्क्षाशोकाभ्यां स प्राणी 'महता' अपरिमितेन परि–समन्तात्तापः परितापस्तेन–शारीरमानसस्वभावेन दुःखेनाभिभूतः सन् पौनःपुन्येन तेषु तेषु स्थानेषु 'वसेत्' तिष्ठेदुत्पद्येत, किम्भूतः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६२]

दीप अनुक्रम [६३]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ १०० ॥

सन्?—प्रमत्तः । प्रमादश्च रागद्वेषात्मको, द्वेषश्च प्रायो न रागमृते, रागोऽप्युत्पत्तेरारभ्यानादिभवाभ्यासान्मातापित्रादिविषयो भवतीति दर्शयति—'माया मे' इत्यादि, तत्र मातृविषयो रागः संसारस्वभावादुपकारकर्तृत्वाद्वोपजायते, रागे च सति मदीया माता क्षुत्पिपासादिकां वेदनां मा प्रापदित्यतः कृषिवाणिज्यसेवादिकां प्राण्युपघातरूपां क्रियामारभते, तदुपघातकारिणि वा तस्यां वाऽकार्यप्रवृत्तायां द्वेष उपजायते, तद्यथा—अनन्तवीर्यप्रसक्तायां रेणुकायां रामस्येति, एवं पिता मे, पितृनिमित्तं रागद्वेषौ भवतो, यथा रामेण पितरि रागात्तदुपहन्तरि च द्वेषात् सप्तकृत्वः क्षत्रिया व्यापादिताः, सुभूमेनापि त्रिसप्तकृत्वो ब्राह्मणा इति, भगिनीनिमित्तेन च क्लेशमनुभवति प्राणी, तथा भार्यानिमित्तं रागद्वेषोद्भवः, तद्यथा—चाण[illegible]क्येन भगिनीभगिनीपत्याद्यवज्ञातया भार्यया चोदितेन नन्दान्तिकं द्रव्यार्थमुपगतेन कोपान्नन्दकुलं क्षयं निन्ये, तथा पुत्रा मे न जीवन्तीति आरम्भे प्रवर्त्तते, एवं दुहिता मे दुःखिनीति रागद्वेषोपहतचेताः परमार्थमजानानस्तत्तद्विधत्ते येन ऐहिकामुष्मिकान् अपायान् अवाप्नोति, तद्यथा—जरासन्धो जामातरि कंसे व्यापादिते स्वबलावलेपादपसृतवासुदेवपदानुसारी सबलवाहनः क्षयमगात्, स्नुषा मे न जीवन्तीत्यारम्भादौ प्रवर्त्तते, 'सखिस्वजनसंग्रन्थसंस्तुता मे' सखा–मित्रं स्वजनः–पितृव्यादिः संग्रन्थः–स्वजनस्यापि स्वजनः पितृव्यपुत्रशालादिः संस्तुतो–भूयो भूयो दर्शनेन परिचितः, अथवा पूर्वसंस्तुतो मातापित्रादिरभिहितः पश्चात्संस्तुतः शालकादिः स इह ग्राह्यः, स च मे दुःखित इति परितप्यते, विविक्तं शोभनं प्रचुरं वा उपकरणं–हस्त्यश्वरथासनमञ्चकादि परिवर्त्तनं–द्विगुणत्रिगुणादिभेदभिन्नं तदेव, भोजनं–मोदकादि आच्छादनं–पट्टयुग्मादि तच्च मे भविष्यति नष्टं वा । 'इच्चत्थ'मिति इत्येवमर्थं गृद्धो लोकः तेष्वेव

लोक.वि.२

उद्देशकः१

॥ १०० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६२]

दीप अनुक्रम [६३]

मातापित्रादिरागादिनिमित्तस्थानेष्वामरणं प्रमत्तो ममेदमहमस्य स्वामी पोषको वेत्येवं मोहितमना 'वसेत्' तिष्ठेदिति, उक्तं च—"पुत्रा मे भ्राता मे स्वजना मे गृहकलत्रवर्गो मे । इति कृतमेमेशब्दं पशुमिव मृत्युर्जनं हरति ॥ १ ॥ पुत्रकलत्रपरिग्रहममत्वदोषैर्नरो व्रजति नाशम् । कृमिक इव कोशकारः परिग्रहाद्दुःखमाप्नोति ॥ २ ॥" अमुमेवार्थं निर्युक्तिकारो गाथाद्वयेनाह—

संसारं छेत्तुमणो कम्मं उम्मूलए तदट्ठाए । उम्मूलिज्ज कसाया तम्हा उ चइज्ज सयणाई ॥ १८५ ॥
माया मेत्ति पिया मे भगिणी भाया य पुत्तदारा मे। अत्थंमि चेव गिद्धा जम्मणमरणाणि पावंति॥१८६॥

'संसारं' नारकतिर्यङ्नरामरलक्षणं मातापितृभार्यादिस्नेहलक्षणं वा 'छेत्तुमना' उन्मुमूलयिषुरष्टप्रकारं कर्मोन्मूलयेत्, तदुन्मूलनार्थं च तत्कारणभूतान् कषायानुन्मूलयेत्, कषायापगमनाय च मातापित्रादिगतं स्नेहं जह्यात्, यस्मान्मातापित्रादिसंयोगाभिलाषिणोऽर्थे-रत्नकुप्यादिके गृद्धाः-अध्युपपन्ना जन्मजरामरणादिकानि दुःखान्यसुभृतः प्राप्नुवन्तीति गाथाद्वयार्थः ॥ तदेवं कषायेन्द्रियप्रमत्तो मातापित्राद्यर्थमर्थोपार्जनरक्षणतत्परो दुःखमेव केवलमनुभवतीत्याह-'अहो' इत्यादि, अहश्च सम्पूर्णं रात्रिं च, चशब्दात्पक्षं मासं च, निवृत्तशुभाध्यवसायः परि-समन्तात्तप्यमानः परितप्यमानः सन् तिष्ठति, तद्यथा—"कइया वच्चइ सत्थो? किं भण्डं कत्थ कित्तिया भूमी । को कयविक्कयकालो निव्विसइ किं कहिं केण? ॥१॥"

१ कदा व्रजति सार्थः किं भाण्डं कुत्र कियती भूमिः । कः क्रयविक्रयकालो निर्विषयति (निर्विशति) किं क केन ? ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६२]

दीप अनुक्रम [६३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १०१ ॥

लोक.वि. उद्देशकः १

इत्यादि, स च परितप्यमानः किम्भूतो भवतीत्याह—'काले'त्यादि, कालः—कर्त्तव्यावसरस्तद्विपरीतोऽकालः सम्यगुत्थातुम्—अभ्युद्यन्तुं शीलमस्येति समुत्थायीति पदार्थः, वाक्यार्थस्तु—काले कर्त्तव्यावसरे अकालेन तद्विपर्यासेन समुत्तिष्ठते—अभ्युद्यतमनुष्ठानं करोति तच्छीलश्चेति, कर्त्तव्यावसरे न करोत्यन्यदा च विदधातीति, यथा वा काले करोत्येवमकालेऽपीति, यथा वाऽनवसरे न करोत्येवमवसरेऽपीति, अन्यमनस्कत्वादपगतकालाकालविवेक इति भावना, यथा प्रद्योतेन मृगापतिरपगतभर्तृका सती ग्रहणकालमतिवाह्य कृतप्राकारादिरक्षा जिघृक्षितेति, यस्तु पुनः सम्यक्कालोत्थायी भवति स यथाकालं परस्परानाबाधया सर्वाः क्रियाः करोतीति, तदुक्तम्—"मासैरष्टभिरह्ना च, पूर्वेण वयसाऽऽयुषा। तत् कर्त्तव्यं मनुष्येण, येनान्ते सुखमेधते ॥ १ ॥" धर्म्मानुष्ठानस्य च न कश्चिदकालो मृत्योरिवेति । किमर्थं पुनः कालाकालसमुत्थायी भवतीत्याह—'संजोगट्ठी' संयुज्यते संयोजनं वा संयोगोऽर्थः—प्रयोजनं संयोगार्थः सोऽस्यास्तीति संयोगार्थी, तत्र धनधान्यहिरण्यद्विपदचतुष्पदराज्यभार्यादिः संयोगस्तेनार्थी—तत्प्रयोजनी, अथवा शब्दादिविषयः संयोगो मातापित्रादिभिर्वा तेनार्थी कालाकालसमुत्थायी भवतीति । किं च—'अट्ठालोभी' अर्थो—रत्नकुप्यादिस्तत्र आ—समन्ताल्लोभोऽर्थालोभः स विद्यते यस्येत्यसावपि कालाकालसमुत्थायी भवति, मम्मणवणिग्वत्, तथाहि—असावतिक्रान्तार्थोपार्ज्जनसमर्थयौवनवया जलस्थलपथप्रेषितनानादेशभाण्डभृतबोहित्थगन्त्रीकोष्ट्रमण्डलिकासम्भृतसम्भारोऽपि प्रावृषि सप्तरात्रावच्छिन्नमुशलप्रमाणजलधारावर्षनिरुद्धसकलप्राणिगणसञ्चारमनोरथायां महानदीजलपूरानीतकाष्ठानि जिघृक्षुरु-

॥ १०१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६२]

दीप अनुक्रम [६३]

पभोगधर्म्मावसरे निवृत्तापराशेषशुभपरिणामः केवलमर्थोपार्ज्जनप्रवृत्त इति, उक्तं च—“उक्खणइ खणइ निहणइ रत्तिं ण सुअति दियावि य ससंको । लिंपइ ठएइ सययं लंछियपडिलंछियं कुणइ ॥ १ ॥ भुंजसु न ताव रिक्को जेमेउं नविय अज्ज मज्झीहं । नवि य वसीहामि घरे कायव्वमिणं बहुं अज्जं ॥ २ ॥” पुनरपि लोभिनोऽशुभव्यापारानाह—‘आलुंपे’ आ—समन्ताल्लुम्पतीत्यालुम्पः, स हि लोभाभिभूतान्तःकरणोऽपगतसकलकर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेकोऽर्थलोभैकदत्तदृष्टिरैहिकामुष्मिकविपाककारिणीर्निर्लोञ्छनगलकर्त्तनचौर्यादिकाः क्रियाः करोति, अन्यच्च—‘सहसक्कारे’ करणं कारः, असमीक्षितपूर्वापरदोषं सहसा करणं सहसाकारः स विद्यते यस्येत्यर्श आदिभ्योऽच्, (पा० ५-२-१२७) अथवा छान्दसत्वात्कर्त्तर्येव घञ्, करोतीति कारः, तथाहि—लोभतिमिराच्छादितदृष्टिरर्थैकमनाः शकुन्तवच्छराघातमनालोच्य पिशिताभिलाषितया सन्धिच्छेदनादितो विनश्यति, लोभाभिभूतो ह्यर्थैकदृष्टिस्तन्मनास्तदर्थोपयुक्तोऽर्थमेव पश्यति नापायान्, आह च—‘विणिविट्ठचित्ते’ विविधम्—अनेकधा निविष्टं—स्थितमवगाढमर्थोपार्ज्जनोपाये मातापित्राद्यभिष्वङ्गे वा शब्दादिविषयोपभोगे वा चित्तम्—अन्तःकरणं यस्य स तथा, पाठान्तरं वा ‘विणिविट्ठचिट्ठे’त्ति, विशेषेण निविष्टा कायवाग्मनसां परिस्पदात्मिकाऽर्थोपार्ज्जनोपायादौ चेष्टा यस्य स विनिविष्टचेष्टः । तदेवं मातापित्रादिसंयोगार्थी अर्थालोभी आलुम्पः सहसाकारो विनिविष्टचित्तो विनिविष्टचेष्टो वा किम्भूतो भवतीत्याह—‘इत्थ’ इत्यादि, ‘अत्र’ अस्मिन्मातापित्रादौ शब्दादिविषयसंयोगे वा विनिविष्टचित्तः

१ उत्खनति खनति निदधाति (हन्ति) रात्रौ न स्वपिति दिवाऽपि च सशङ्कः । लिम्पति स्थगयति सततं लाञ्छितप्रतिलाञ्छितं करोति ॥ १ ॥ भुङ्क्ष्व न तावन्निर्व्यापारो जिमितुं नापि चाद्य मङ्क्ष्यामि । नापि च वत्स्यामि गृहे कर्त्तव्यमिदं बह्वद्य ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६२]

दीप अनुक्रम [६३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १०२॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

सन् पृथिवीकायादिजन्तूनां यच्छस्त्रम्–उपघातकारि तत्र पुनः पुनः प्रवर्त्तते, एवं पौनःपुन्येन शस्त्रे प्रवृत्तो भवति यदि पृथिवीकायादिजन्तूनामुपघाते वर्त्तते, तथाहि—'शसु हिंसाया'मित्यस्माच्छस्यते हिंस्यत इति करणे ष्ट्रन्विहितः, तच्च स्वकायपरकायादिभेदभिन्नमिति । पाठान्तरं वा 'एत्थ सत्ते पुणो पुणो,' 'अत्र' मातापितृशब्दादिसंयोगे लोभार्थी सन् 'सक्तो' गृद्धः अध्युपपन्नः पौनःपुन्येन विनिविष्टचेष्ट आलुम्पकः सहसाकारः कालाकालसमुत्थायी वा भवतीति । एतच्च साम्प्रतेक्षिणामपि युज्येत यद्यजरामरत्वं दीर्घायुष्कं वा स्यात्, तच्चोभयमपि नास्तीत्याह—'अप्पं च' इत्यादि, अल्पं–स्तोकं चशब्दोऽधिकवचनः, खलुरवधारणे, आयुरिति भवस्थितिहेतवः कर्म्मपुद्गलाः 'इहे'ति संसारे मनुष्यभवे वा 'एकेषां' केषाञ्चिदेव 'मानवानां' मनुजानामिति पदार्थः, वाक्यार्थस्तु–इह अस्मिन् संसारे केषाञ्चिन्मनुजानां क्षुल्लकभवोपलक्षितान्तर्मुहूर्त्तमात्रमल्पं–स्तोकमायुर्भवति, चशब्दादुत्तरोत्तरसमयादिवृद्ध्या पल्योपमत्रयावसानेऽप्यायुषि खलुशब्दस्यावधारणार्थत्वात्संयमजीवितमल्पमेवेति, तथाहि–अन्तर्मुहूर्तादारभ्य देशोनपूर्वकोटिं यावत्संयमायुष्कं, तच्चाल्पमेवेति, अथवा त्रिपल्योपमस्थितिकमप्यायुरल्पमेव, यतस्तदप्यन्तर्मुहूर्त्तमपहाय सर्वमपवर्त्तते, उक्तं च—"अद्धा जोगुक्कोसे बंधित्ता भोगभूमिएसु लहुं । सव्वप्पजीवियं वज्जइत्तु उव्वट्टिया दोण्हं ॥ १ ॥" अस्या अयमर्थः—उत्कृष्टे योगे–बन्धाध्यवसायस्थाने आयुषो यो बन्धकालोऽद्धा उत्कृष्ट एव तं बद्ध्वा, क्व?—'भोगभूमिकेषु' देवकुर्वादिजेषु, तस्य क्षिप्रमेव सर्वाल्पमायुर्वर्ज्जयित्वा 'द्वयोः' तिर्यग्मनुष्ययोरपवृत्तिका–अपवर्त्तनं भवति,एतच्चापर्याप्तकान्तर्मुहूर्त्तान्तर्द्रष्टव्यं, तत ऊर्ध्वमनपवर्त्तनमेवेति । सामान्येन वाऽऽयुः सोपक्रमायुषां सोपक्रमं निरुपक्रमायुषां निरुपक्रमं, यदा ह्यसुमान् स्वायुषस्त्रि- ॥ १०२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६२]

दीप अनुक्रम [६३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

भागे त्रिभागत्रिभागे वा जघन्यत एकेन द्वाभ्यां वोत्कृष्टतः सप्तभिरष्टभिर्वा वर्वैरन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणेन कालेनात्मप्रदेशरचनानाडिकान्तर्वर्त्तिन आयुष्ककर्मवर्गणापुद्गलान् प्रयत्नविशेषेण विधत्ते तदा निरुपक्रमायुर्भवतीति, अन्यदा तु सोपक्रमायुष्क इति, उपक्रमश्चोपक्रमणकारणैर्भवति, तानि चामूनि—"दंडकससत्थरज्जू अग्गी उदगपडणं विसं वाला । सीउण्हं अरइ भयं खुहा पिवासा य वाही य ॥ १ ॥ मुत्तपुरीसनिरोहे जिण्णाजिण्णे य भोयणे बहुसो । घंसणघोलणपीलण आउस्स उवक्कमा एते ॥ २ ॥" उक्तं च—"स्वतोऽन्यत इतस्ततोऽभिमुखधावमानापदामहो निपुणता नृणां क्षणमपीह यज्जीव्यते । मुखे फलमतिक्षुधा सरसमल्पमायोजितं, कियच्चिरमचर्बितं दशनसङ्कटे स्थास्यति?॥ १ ॥ उच्छ्वासावधयः प्राणाः, स चोच्छ्वासः समीरणः । समीरणाच्चलं नान्यत्, क्षणमप्यायुरद्भुतम् ॥ २ ॥" इत्यादि । येऽपि दीर्घायुष्कस्थितिका उपक्रमणकारणाभावे आयुःस्थितिमनुभवन्ति तेऽपि मरणादप्यधिकां जराभिभूतविग्रहां जघन्यतमामवस्थामनुभवन्तीति तद्यथेत्यादिना दर्शयति—

तंजहा–सोयपरिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं चक्खुपरिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं घाणपरिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं रसणापरिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं फासपरिण्णाणेहिं

---

१ दण्डः कशा शस्त्रं रज्जुरग्निरुदकं पतनं विषं व्यालाः । शीतमुष्णमरतिर्भयं क्षुत्पिपासा च व्याधिश्च ॥ १ ॥ मूत्रपुरीषनिरोधः जीर्णेऽजीर्णे च भोजने बहुशः । घर्षणं घोलनं पीडनमायुष उपक्रमा एते ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६३]

दीप अनुक्रम [६४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ १०३ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

परिहायमाणेहिं अभिकंतं च खलु वयं स पेहाए तओ से एगदा मूढभावं जणयंति ॥ ६३ ॥

शृणोति भाषापरिणतान् पुद्गलानिति श्रोत्रं, तच्च कदम्बपुष्पाकारं द्रव्यतो भावतो भाषाद्रव्यग्रहणलब्ध्युपयोगस्वभावमिति, तेन श्रोत्रेण परिः-समन्ताद् घटपटशब्दादिविषयाणि ज्ञानानि परिज्ञानानि तैः श्रोत्रपरिज्ञानैर्जराप्रभावात्परिहीयमानैः सद्भिस्ततोऽसौ-प्राणी 'एकदा' वृद्धावस्थायां रोगोदयावसरे वा 'मूढभावं' मूढतां कर्त्तव्याकर्त्तव्याज्ञतामिन्द्रियपाटवाभावादात्मनो जनयति, हिताहितप्राप्तिपरिहारविवेकशून्यतामापद्यत इत्यर्थः, जनयन्तीति चैकवचनावसरे 'तिङां तिङो भवन्ती'ति बहुवचनमकारि, अथवा तानि वा श्रोत्रविज्ञानानि परिक्षीयमाणान्यात्मनः सदसद्विवेकविकलतामापादयन्तीति, श्रोत्रादिविज्ञानानां च तृतीया प्रथमार्थे सुब्व्यत्ययेन द्रष्टव्येति, एवं चक्षुरादिविज्ञानेष्वपि योज्यम्, अत्र च करणत्वादिन्द्रियाणामेवं सर्वत्र द्रष्टव्यं-श्रोत्रेणात्मनो विज्ञानानि चक्षुषाऽऽत्मनो विज्ञानानीति, ननु च तान्येव द्रष्टृणि कुतो न भवन्ति?, उच्यते, अशक्यमेवं विज्ञातुं, तद्विनाशे तदुपलब्धार्थस्मृत्यभावात्, दृश्यते च हृषीकोपघातेऽपि तदुपलब्धार्थस्मरणं, तद्यथा-धवलगृहान्तर्वर्त्तिपुरुषपञ्चवातायनोपलब्धार्थस्य तदन्यतरस्थगनेऽपि तदुपपत्तिरिति, तथाहि-अहमनेन श्रोत्रेण चक्षुषा वा मन्दमर्थमुपलभे, अनेन च स्फुटतरमिति स्पष्टैव करणत्वावगतिरक्षाणां, यद्येवमन्यान्यपि करणानि सन्ति तानि किं नोपात्तानि?, कानि पुनस्तानि?, उच्यन्ते, वाक्पाणिपादपायूपस्थमनांसि वचनादानविहरणो-

॥ १०३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६३]

दीप अनुक्रम [६४]

त्सर्गानन्दसङ्कल्पव्यापाराणि, ततश्चैतेषामात्मोपकारकत्वेन करणत्वं, करणत्वादिन्द्रियत्वमिति, एवं चैकादशेन्द्रियसद्भावे सति पञ्चानामेवोपादानं किमर्थमिति, आहाचार्यो–नैष दोषः, इह ह्यात्मनो विज्ञानोत्पत्तौ यत् प्रकृष्टमुपकारकं तदेव करणत्वादिन्द्रियम्, एतानि तु वाक्पाण्यादीनि नैवात्मनोऽनन्यसाधारणतया करणत्वेन व्याप्रियन्ते, अथ यां काञ्चन क्रियामुपादाय करणत्वमुच्यते एवं तर्हि भ्रूदरादेरप्युत्क्षेपादिसम्भवात्करणत्वं स्यात्, किं च–इन्द्रियाणां स्वविषये नियतत्वात् नान्येन्द्रियकार्यमन्यदिन्द्रियं कर्तुमलं, तथाहि–चक्षुरेव रूपावलोकनायालं न तदभावे श्रोत्रादीनि, यस्तु रसाद्युपलम्भे शीतस्पर्शादेरप्युपलम्भः स सर्वव्यापित्वात् स्पर्शनेन्द्रियस्येत्यनाशङ्कनीयम्, इह तु पुनः पाणिच्छेदेऽपि तत्कार्यस्यादानलक्षणस्य दशनादिनाऽपि निर्वर्त्यमानत्वाद्यत्किञ्चिदेतत्, मनसस्तु सर्वेन्द्रियोपकारकत्वादन्तःकरणत्वमिष्यत एव, तस्य च बाह्येन्द्रियविज्ञानोपघातेनैव गतार्थत्वान्न पृथगुपादानमिति, प्रत्येकोपादानं च क्रमोत्पत्तिविज्ञानोपलक्षणार्थं, तथाहि–येनैवेन्द्रियेण सह मनः[1] संयुज्यते तदेवात्मीयविषयगुणग्रहणाय प्रवर्त्तते नेतरदिति, ननु च दीर्घशष्कुलीभक्षणादौ पञ्चानामपि विज्ञानानां यौगपद्येनोपलब्धिरनुभूयते, नैतदस्ति, केवलिनोऽपि द्वावुपयोगौ न स्तः, आस्तां तावदारातीयभागदर्शिनः पञ्चोपयोगा इति, एतच्चान्यत्र न्यक्षेण प्रतिपादितमिति नेह प्रतायते, यस्तु यौगपद्येनानुभवाभासः स द्रागवृत्तित्वान्मनसो भवतीति, उक्तं च—"आत्मा सहैति मनसा मन इन्द्रियेण, स्वार्थेन चेन्द्रियमिति क्रम एष शीघ्रः। योगोऽयमेव मनसः किमगम्यमस्ति?, यस्मिन्मनो व्रजति तत्र गतोऽयमात्मा ॥ १ ॥"। इह चायमात्मेन्द्रि-

१ स्वपक्षे भावमनो व्याप्रियते इत्यर्थः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६३]

दीप अनुक्रम [६४]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ १०४ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

यलब्धिमान् आदित्सितजन्मोत्पत्तिदेशे समयेनाहारपर्याप्तिं निर्वर्त्तयति, तदनन्तरमन्तर्मुहूर्त्तेन शरीरपर्याप्तिं, ततोऽपीन्द्रियपर्याप्तिं तावतैव कालेन, तानि च पञ्चेन्द्रियाणि--स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणीति, तान्यपि द्रव्यभावभेदात् प्रत्येकं द्विविधानीति, तत्र द्रव्येन्द्रियं निर्वृत्त्युपकरणभेदात् द्विधा, निर्वृत्तिरप्यान्तरबाह्यभेदात् द्विधैव, निर्वर्त्यत इति निर्वृत्तिः, केन निर्वर्त्त्यते?, कर्म्मणा, तत्रोत्सेधाङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमितानां शुद्धानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचक्षुरादीन्द्रियसंस्थानेनावस्थिता या वृत्तिरभ्यन्तरा निर्वृत्तिः, तेष्वेवात्मप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेशभाक् यः प्रतिनियतसंस्थानो निर्म्माणनाम्ना पुद्गलविपाकिना वर्द्धकिसंस्थानीयेन आरचितः कर्णशष्कुल्यादिविशेषः अङ्गोपाङ्गनाम्ना च निष्पादित इति बाह्या निर्वृत्तिः, तस्या एव निर्वृत्तेर्द्धिरूपायाः येनोपकारः क्रियते तदुपकरणं, तच्चेन्द्रियकार्यसमर्थं, सत्यामपि निर्वृत्तावनुपहतायां मसूराकृतिरूपायां निर्वृत्तौ तस्योपघातान्न पश्यति, तदपि निर्वृत्तिवद् द्विधा, तत्राभ्यन्तरमक्षणस्तावत् कृष्णशुक्लमण्डलं बाह्यमपि पत्रपक्ष्मद्वयादि, एवं शेषेष्वप्यायोजनीयमिति, भावेन्द्रियमपि लब्ध्युपयोगभेदात् द्विधा, तत्र लब्धिर्ज्ञानदर्शनावरणीयक्षयोपशमरूपा यत्सन्निधानादात्मा द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्तिं प्रति व्याप्रियते, तन्निमित्त आत्मनो मनस्साचिव्यादर्थग्रहणं प्रति व्यापार उपयोग इति, तदत्र सत्यां लब्धौ निर्वृत्त्युपकरणोपयोगाः, सत्यां च निर्वृत्तावुपकरणोपयोगौ, सत्युपकरण उपयोग इति, एतेषां च श्रोत्रादीनां कदम्बकमसूरकलम्बुकापुष्पक्षुरप्रनानासंस्थानताऽवगन्तव्येति, विषयश्च श्रोत्रेन्द्रियस्य द्वादशभ्यो योजनेभ्य आगतं शब्दं गृह्णाति चक्षुरप्येकविंशतिषु लक्षेषु सातिरेकेषु व्यवस्थितं प्रकाशकं प्रकाश्यं तु सातिरेकयोजनलक्षस्थितं रूपं गृह्णाति, शेषाणि तु नवभ्यो योजनेभ्य आगतं स्वविषयं गृह्णन्ति,

॥ १०४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत

प्रत सूत्रांक [६३]

दीप अनुक्रम [६४]

जघन्यतस्त्वङ्गुलासङ्ख्येयभागविषयत्वं सर्वेषाम्, अत्र च 'सोयपरिण्णाणेहिं परिहायमाणेही'त्यादि य उत्पत्तिं प्रति व्यत्ययेनेन्द्रियाणामुपन्यासः स एवमर्थं द्रष्टव्यः-इह संज्ञिनः पञ्चेन्द्रियस्य उपदेशदानेनाधिकृतत्वादुपदेशश्च श्रोत्रेन्द्रियविषय इतिकृत्वा तत्पर्याप्तौ च सर्वेन्द्रियपर्याप्तिः सूचिता भवति। श्रोत्रादिविज्ञानानि च वयोऽतिक्रमे परिहीयन्ते, तदेवाह—'अभिकंत'मित्यादि, अथवा श्रोत्रादिविज्ञानैरपचितैः करणभूतैः सद्भिः 'अभिकंतं च खलु वयं स पेहाए' तत्र प्राणिनां कालकृता शरीरावस्था यौवनादिर्वयः तज्जरामभि-मृत्युं वा क्रान्तमभिक्रान्तम्, इह हि चत्वारि वयांसि--कुमारयौवनमध्यमवृद्धत्वानि, उक्तं च—"प्रथमे वयसि नाधीतं, द्वितीये नार्जितं धनम्। तृतीये न तपस्तप्तं, चतुर्थे किं करिष्यति? ॥ १ ॥" तत्राद्यवयोद्वयातिक्रमे जराभिमुखमभिक्रान्तं वयो भवति, अन्यथा वा त्रीणि वयांसि—कौमारयौवनस्थविरत्वभेदाद्, उक्तं च—"पिता रक्षति कौमारे, भर्त्ता रक्षति यौवने। पुत्राश्च स्थाविरे भावे, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ १ ॥" अन्यथा वा त्रीणि वयांसि, बालमध्यवृद्धत्वभेदात्, उक्तं च-आषोडशाद्भवेद्बालो, यावत्क्षीरान्नवर्त्तकः। मध्यमः सप्ततिं यावत्परतो वृद्ध उच्यते ॥ १ ॥" एतेषु वयस्सु सर्वेष्वपि योपचयवत्यवस्था तामतिक्रान्तोऽतिक्रान्तवया इत्युच्यते, चः समुच्चये, न केवलं श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनविज्ञानैर्व्यस्तसमस्तैर्देशतः सर्वतो वा परिहीयमाणैर्वा मौढ्यमापद्यते, वयश्चातिक्रान्तं 'प्रेक्ष्य' पर्यालोच्य 'स' इति प्राणी खलुरिति विशेषणे विशेषेण-अत्यर्थं मौढ्यमापद्यत इति, आह च-'ततो से' इत्यादि, 'तत' इति तस्मादिन्द्रियविज्ञानापचयाद्वयोऽतिक्रमणाद्वा स इति प्राणी 'एकदे'ति वृद्धाव-

१ चक्षुषः संख्येयभागे यद्यपि तथापि सर्वेषां विषयस्य सामान्येन विवक्षणादित्थमुक्तं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६३]

दीप अनुक्रम [६४]

स्थायां मूढभावो मूढत्वं–किंकर्त्तव्यताभावमात्मनो जनयति, अथवा 'से'तस्यासुभृतः श्रोत्रादिविज्ञानानि परिहीयमाणानि मूढभावं जनयन्तीति ॥ स एवं वार्द्धक्ये मूढस्वभावः सन् प्रायेण लोकावगीतो भवतीत्याह—

जेहिं वा सद्धिं संवसति ते वि णं एगदा णियगा पुव्विं परिवयंति, सोऽवि ते णियए पच्छा परिवएज्जा, णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमंपि तेसिं णालं ताणाए वा सरणाए वा, से ण हासाय ण किड्डाए ण रतीए ण विभूसाए (सू० ६४)

वाशब्दः पक्षान्तरद्योतकः, आस्तां तावदपरो लोको 'यैः' पुत्रकलत्रादिभिः 'सार्द्धं' सह संवसति, त एव भार्यापुत्रादयो णमिति वाक्यालङ्कारे 'एकदे'ति वृद्धावस्थायां 'नियगा' आत्मीया ये तेन समर्थावस्थायां पूर्वमेव पोषिताः ते तं 'परिवदंति' परि–समन्ताद्वदन्ति–यथाऽयं न म्रियते नापि मञ्चकं ददाति, यदिवा परिवदन्ति–परिभवन्तीत्युक्तं भवति, अथवा किमनेन वृद्धेनेत्येवं परिवदन्ति, न केवलमेषां, तस्यात्मापि तस्यामवस्थायामवगीतो भवतीति, आह च–"वलिसन्ततमस्थिशेषितं, शिथिलस्नायुधृतं कडेवरम् । स्वयमेव पुमान् जुगुप्सते, किमु कान्ता कमनीयविग्रहा ? ॥१॥" गोपालबालाङ्गनादीनां च दृष्टान्तद्वारेणोपन्यस्तोऽर्थो बुद्धिमधितिष्ठतीत्यतस्तदाविर्भावनाय कथानकम्–कौशाम्ब्यां नगर्यां अर्थवान् बहुपुत्रो धनो नाम सार्थवाहः, तेन चैकाकिना नानाविधैरुपायैः स्वापतेयमुपार्जितं, तच्चाशेषदुःखितबन्धुजनस्वजनमित्रकलत्रपुत्रादिभोग्यतां निन्ये, ततोऽसौ कालपरिपाकवशाद्वृद्धभावमुपगतः सन् पुत्रेषु सम्यक्पालनो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६४]

दीप अनुक्रम [६५]

पचितकलाकुशलेषु समस्तकार्यचिन्ताभारं निचिक्षेप । तेऽपि वयमनेनेदृशीमवस्थां नीताः सर्वजनाग्रेसरा विहिता इति कृतोपकाराः सन्त कुलपुत्रतामवलम्बमानाः स्वतः क्वचित् कार्यव्यासङ्गात् स्वभार्याभिस्तमकेल्पं वृद्धं प्रत्यजजागरन्, ता अप्युद्वर्त्तनस्नानभोजनादिना यथाकालमक्षुण्णं विहितवत्यः । ततो गच्छत्सु दिवसेषु वर्द्धमानेषु पुत्रभाण्डेषु प्रौढीभवत्सु भर्तृषु जरद्वृद्धे च विवशकरणपरिचारे सर्वाङ्गकम्पिनि गलदशेषश्रोतसि सति शनैः शनैरुचितमुपचारं शिथिलतां निन्युः । असावपि मन्दप्रतिजागरणतया चित्ताभिमानेन विश्रसया च सुतरां दुःखसागरावगाढः सन् पुत्रेभ्यः स्नुषाक्षुण्णान्याचचक्षे, ताश्च स्वभर्तृभिश्चेखिद्यमानाः सुतरामुपचारं परिहृतवत्यः, सर्वाश्च पर्यालोच्यैकवाक्यतया स्वभर्तॄनभिहितवत्यः–क्रियमाणेऽप्ययं प्रतिजागरणे वृद्धभावाद्विपरीतबुद्धितयाऽपह्नुते, यदि भवतामप्यस्माकमुपर्यविस्रम्भस्ततोऽन्येन विश्वसनीयेन निरुपयत, तेऽपि तथैव चक्रुः, तास्तु तस्मिन्नवसरे सर्वा अपि सर्वाणि कार्याणि यथाऽवसरं विहितवत्यः, असावपि पुत्रैः पृष्टः पूर्वविरुक्षितचेतास्तथैव ता अपवदति, नैता मम किञ्चित्सम्यक् कुर्वन्ति, तैस्तु प्रत्ययिकवचनादवगततत्त्वैर्यथाऽयमुपचर्यमाणोऽपि वार्द्धक्याद्रोरुद्यते, ततस्तैरप्यवधीरितोऽन्येषामपि यथावसरे तद्भण्डनस्वभावतामाचचक्षिरे । ततोऽसौ पुत्रैरवधीरितः स्नुषाभिः परिभूतः परिजनेनावगीतो वाङ्मात्रेणापि केनचिदप्यननुवर्त्त्यमानः सुखितेषु दुःखितः कष्टतरामायुःशेषामवस्थामनुभवतीति । एवमन्योऽपि जराभिभूतविग्रहस्तृणकुब्जीकरणेऽप्यसमर्थः सन् कार्यैकनिष्ठलोकात्परिभवमाप्नोतीति, आह–"गात्रं सङ्कुचितं गतिर्विगलिता दन्ताश्च नाशं गता, दृष्टिर्भ्रश्यति रूपमेव

१ स्मृतोपकाराः २ असमर्थं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६४]

दीप अनुक्रम [६५]

ह्रसते वक्त्रं च लालायते । वाक्यं नैव करोति बान्धवजनः पत्नी न शुश्रूषते, धिक्कष्टं जरयाऽभिभूतपुरुषं पुत्रोऽप्यवज्ञायते ॥ १ ॥" इत्यादि । तदेवं जराभिभूतं निजाः परिवदन्ति, असावपि परिभूयमानस्तद्विरक्तचेतास्तदपवादाञ्जनायाचष्टे, आह च–'सो वा' इत्यादि, वाशब्दः पूर्वापेक्षया पक्षान्तरं दर्शयति, ते वा निजास्तं परिवदन्ति, स वा जराजर्जरितदेहस्तान्निजाननेकदोषोद्घट्टनतया परिवदेत्–निन्देद्, अथवा खिद्यमानार्थतया तानसाववगायति–परिभवतीत्यर्थः। येऽपि पूर्वकृतधर्म्मवशात्तं वृद्धं न परिवदन्ति तेऽपि तद्दुःखापनयनसमर्था न भवन्ति, आह च–'नाल'मित्यादि, नालं–न समर्थाः ते–पुत्रकलत्रादयः, तवेति प्रत्यक्षभावमुपगतं वृद्धमाह, त्राणाय शरणाय वेति, तत्रापत्तरणसमर्थं त्राणमुच्यते, यथा महाश्रोतोभिरुह्यमानः सुकर्णधाराधिष्ठितं प्लवमासाद्यापस्तरतीति, शरणं पुनर्यदवष्टम्भान्निर्भयैः स्थीयते तदुच्यते, तत् पुनर्दुर्गं पर्वतः पुरुषो वेति, एतदुक्तं भवति–जराभिभूतस्य न कश्चित् त्राणाय शरणाय वा, त्वमपि तेषां नालं त्राणाय शरणाय वेति, उक्तं च–"जन्मजरामरणभयैरभिद्रुते व्याधिवेदनाग्रस्ते । जिनवरवचनादन्यत्र नास्ति शरणं क्वचिल्लोके ॥ १ ॥" इत्यादि, स तु तस्यामवस्थायां किम्भूतो भवतीत्याह–'से ण हस्साए' इत्यादि, 'स' जराजीर्णविग्रहो न हास्याय भवति, तस्यैव हसनीयत्वात् न परान् हसितुं योग्यो भवतीत्यर्थः, स च समक्षं परोक्षं वा एवमभिधीयते जनैः–किं किलास्य हसितेन हास्यास्पदस्येति, न च क्रीडायै–न च लङ्घनवल्गनास्फोटनक्रीडानां योग्योऽसौ भवति, नापि रत्यै भवति, रतिरिह विषयगता गृह्यते, सा पुनर्ललनावगूहनादिका, तथाभूतोऽप्यवजुगूहिषुः स्त्रीभिरभिधीयते–न लज्जते

१ तद्व्यतिरिक्त० प्र० २ विद्यमाना० प्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६४]

दीप अनुक्रम [६५]

भवान् न पश्यति आत्मानं नावलोकयति शिरः पलितभस्मावगुण्डितं मां दुहितृभूतमेवं गूहितुमिच्छसीत्यादिवचसामास्पदत्वान्न रत्यै भवति, न विभूषायै, यतो विभूषितोऽपि प्रततचर्म्मवलीकः स नैव शोभते, उक्तं च–"न विभूषणमस्य युज्यते, न च हास्यं कुत एव विभ्रमः? । अथ तेषु च वर्त्तते जनो, ध्रुवमायाति परां विडम्बनाम् ॥ १ ॥ जं [1]जं करेइ तं तं न सोहए जोव्वणे अतिक्कंते । पुरिसस्स महिलियाइ व एक्कं धम्मं पमुत्तूणं ॥ २ ॥" गतमप्रशस्तं मूलस्थानं, साम्प्रतं प्रशस्तमुच्यते—

इच्चेवं समुट्ठिए अहोविहाराए अंतरं च खलु इमं सपेहाए धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए वओ अच्चेति जोव्वणं व (सू० ६५)

अथवा यत एवं ते सुहृदो नालं त्राणाय शरणाय वा अतः किं विदध्यादित्याह–'इच्चेव' मित्यादि, 'इतिः' उपप्रदर्शने, अप्रशस्तमूलगुणस्थाने वर्तमानो जराभिभूतो न हास्याय न क्रीडायै न रत्यै न विभूषायै प्रत्येकं च शुभाशुभकर्म्मफलं प्राणिनामित्येवं मत्वा समुत्थितः–सम्यगुत्थितः शस्त्रपरिज्ञोक्तं मूलगुणस्थानमधितिष्ठन् अहो–इत्याश्चर्ये विहरणं विहारः आश्चर्यभूतो विहारो अहोविहारो–यथोक्तसंयमानुष्ठानं तस्मै अहोविहारायोत्थितः सन् क्षणमपि नो प्रमादयेदित्युत्तरेण सण्टङ्कः, किंच–'अंतरं चे'त्यादि, अन्तरमित्यवसरः, तच्चार्यक्षेत्रसुकुलोत्पत्तिबोधिलाभसर्वविरत्यादिकं, चः समुच्चये, खलु-

१ यद्यत्करोति तत्तन्न शोभते यौवनेऽतिक्रान्ते । पुरुषस्य महिलाया वा एकं धर्म्मं प्रमुच्य ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६५]

दीप अनुक्रम [६६]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १०७ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः १

रवधारणे, 'इम'मित्यनेनेदमाह-विनेयस्तपःसंयमादावसीदन् प्रत्यक्षभावापन्नमार्यक्षेत्रादिकमन्तरमवसरमुपदर्श्याभिधीयते–तवायमेवम्भूतोऽवसरोऽनादौ संसारे पुनरतीव सुदुर्लभ एवेति, अतस्तमवसरं 'संप्रेक्ष्य'पर्यालोच्य धीरः सन्मुहूर्त्तमप्येकं नो 'प्रमादयेत्' प्रमादवशगो भूयादिति, सम्प्रेक्ष्येत्यत्र अनुस्वारलोपश्छान्दसत्वादिति, अन्यदप्यलाक्षणिकमेवंजातीयमस्मादेव हेतोरवगन्तव्यमिति, आन्तर्मौहूर्त्तिकत्वाच्च छाद्मस्थिकोपयोगस्य मुहूर्त्तमित्युक्तम्, अन्यथा समयमप्येकं न प्रमादयेदिति वाच्यं, तदुक्तम्–"सम्प्राप्य मानुषत्वं संसारासारतां च विज्ञाय । हे जीव! किं प्रमादान्न चेष्टसे शान्तये सततम्? ॥ १ ॥ ननु पुनरिदमतिदुर्लभमगाधसंसारजलधिविभ्रष्टम् । मानुष्यं खद्योतकतडिल्लताविलसितप्रतिमम् ॥ २ ॥" इत्यादि, किमर्थं च नो प्रमादयेदित्याह–'वयो अच्चेइ'त्ति, वयः–कुमारादि अत्येति–अतीव एति–याति अत्येति, अन्यच्च–'जोव्वणं व'त्ति अत्येत्यनुवर्तते, यौवनं वाऽत्येति–अतिक्रामति, वयोग्रहणेनैव यौवनस्य गतत्वात्तदुपादानं प्राधान्यख्यापनार्थं, धर्म्मार्थकामानां तन्निबन्धनत्वात्सर्ववयसां यौवनं साधीयः, तदपि त्वरितं यातीति, उक्तं च–"[१]नइवेगसमं चवलं च जीवियं जोव्वणं च कुसुमसमं । सोक्खं च जं अणिच्चं तिण्णिवि तुरमाणभोज्जाइं ॥ १ ॥" तदेवं मत्वा अहोविहारायोत्थानं श्रेय इति ॥ ये पुनः संसाराभिष्वङ्गिणोऽसंयमजीवितमेव बहु मन्यन्ते ते किंभूता भवतीत्याह—

जीविए इह जे पमत्ता से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपित्ता विलुंपित्ता उद्दवित्ता उत्तासइत्ता, ॥ १०७ ॥

---

१ नदीवेगसमं चपलमेव जीवितं यौवनं च कुसुमसमम् । सौख्यं च यदनित्यं त्रीण्यपि त्वरमाणभोज्यानि ॥ १ ॥

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६६]

दीप अनुक्रम [६७]

अकडं करिस्सामित्ति मण्णमाणे, जेहिं वा सद्धिं संवसइ ते वा णं एगया नियगा तं पुव्विं पोसेंति, सो वा ते नियगे पच्छा पोसिज्जा, नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमंपि तेसिं नालं ताणाए वा सरणाए वा (सू० ६६)

ये तु वयोऽतिक्रमणं नावगच्छन्ति, ते 'इहे'त्यस्मिन्नसंयमजीविते 'प्रमत्ताः' अध्युपपन्ना विषयकषायेषु प्रमाद्यन्ति, प्रमत्ताश्चहर्न्निशं परितप्यमानाः कालाकालसमुत्थायिनः सन्तः सत्त्वोपघातकारिणीः क्रियाः समारम्भत इति, आह च-'से हंता' इत्यादि, 'से'इत्यप्रशस्तगुणमूलस्थानवान्विषयाभिलाषी प्रमत्तः सन् स्थावरजङ्गमानामसुमतां हन्ता भवतीति, अत्र च बहुवचनप्रक्रमेऽपि जात्यपेक्षयैकवचननिर्देश इति, तथा छेत्ता कर्णनासिकादीनां भेत्ता शिरोनयनोदरादीनां लुम्पयिता ग्रन्थिच्छेदादिभिः विलुम्पयिता ग्रामघातादिभिः अपद्रावयिता प्राणव्यपरोपको विषशस्त्रादिभिः अवद्रापयिता वा, उत्रासको लोष्टप्रक्षेपादिभिः। स किमर्थं हननादिकाः क्रियाः करोतीत्याह—'अकडं' इत्यादि, अकृतमिति, यदन्येन नानुष्ठितं तदहं करिष्यामीत्येवं मन्यमानोऽर्थोपार्ज्जनाय हननादिषु प्रवर्त्तते। स एवं क्रूरकर्म्मातिशयकारी समुद्रलङ्घनादिकाः क्रियाः कुर्वन्नप्यलाभोदयादपगतसर्व्वस्वः किंभूतो भवतीत्याह—'जेहिं वा' इत्यादि, वाशब्दो भिन्नक्रमः पक्षान्तरद्योतकः 'यैः'मातापितृस्वजनादिभिः सार्द्धं संवसत्यसौ त एव वा'ण'मिति वाक्यालङ्कारे 'एकदे'त्यर्थनाशाद्यापदि शैशवे वा'निजाः' आत्मीया बान्धवाः सुहृदो वा 'पुव्विं' पूर्वमेव 'तं' सर्व्वोपायक्षीणं पोषयन्ति, स वा प्रासेष्टमनो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६६]

दीप अनुक्रम [६७]

रथलाभः संस्तान्निजान् पश्चात् 'पोषयेद्' अर्थदानादिना सन्मानयेदिति । ते च पोषकाः पोष्या वा तव आपद्गतस्य न त्राणाय भवन्तीत्याह—'नालं' इत्यादि, 'ते' निजा मातापित्रादयः, तवेत्युपदेशविषयापन्न उच्यते, 'त्राणाय' आपद्रक्षणार्थं 'शरणाय'निर्भयस्थित्यर्थं 'नालं' न समर्थाः, त्वमपि तेषां त्राणशरणे कर्त्तुं नालमिति ॥ तदेवं तावत्स्वजनो न त्राणाय भवतीत्येतत्प्रतिपादितं, अर्थोऽपि महता क्लेशेनोपात्तो रक्षितश्च न त्राणाय भवतीत्येतत्प्रतिपिपादयिषुराह—

उवाईयसेसेण वा संनिहिसंनिचओ किज्जई, इहमेगेसिं असंजयाण भोयणाए, तओ से एगया रोगसमुप्पाया समुप्पज्जंति, जेहिं वा सद्धिं संवसइ ते वा णं एगया नियगा तं पुव्विं परिहरंति, सो वा ते नियगे पच्छा परिहरिज्जा, नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमंपि तेसिं नालं ताणाए वा सरणाए वा (सू० ६७)

'उपादिते'ति 'अद भक्षणे' इत्येतस्मादुपपूर्वान्निष्ठाप्रत्ययः, तत्र 'बहुलं छन्दसी'तीडागमः, उपादितम्-उपभुक्तं, तस्य शेषमुपभुक्तशेषं, तेन वा, वाशब्दादनुपभुक्तशेषेण वा सन्निधानं-सन्निधिस्तस्य संनिचयः सन्निधिसन्निचयः, अथवा सम्यग् निधीयते-अवस्थाप्यत उपभोगाय योऽर्थः स सन्निधिस्तस्य सन्निचयः-प्राचुर्य्यमुपभोग्यद्रव्यनिचय इत्यर्थः, स 'इह' अस्मिन्संसारे 'एकेषाम्' असंयतानां संयताभासानां वा केषाञ्चिद् 'भोजनाय' उपभोगार्थं 'क्रियते' विधीयत ॥ १०८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६७]

दीप अनुक्रम [६८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

इति, असावपि यदर्थमनुष्ठितोऽन्तरायोदयात्तत्संपत्तये न प्रभवतीत्याह–'तओ से' इत्यादि, 'ततो' द्रव्यसन्निधिसन्निचयादुत्तरकालमुपभोगावसरे 'से'तस्य बुभुक्षोः 'एकदे'ति द्रव्यक्षेत्रकालभावनिमित्ताविर्भावितवेदनीयकर्म्मोदये 'रोगसमुत्पादाः' ज्वरादिप्रादुर्भावाः 'समुत्पद्यन्त' इत्याविर्भवन्ति । स च तैः कुष्ठराजयक्ष्मादिभिरभिभूतः सन्मग्ननासिको गलत्पाणिपादोऽविच्छेदप्रवृत्तश्वासाकुलः किंभूतो भवति इत्याह–'जेहिं' इत्यादि, 'यैः'मातापित्रादिभिर्निजैः सार्द्धं संवसति त एव वा निजाः 'एकदा'रोगोत्पत्तिकाले पूर्वमेव तं परिहरन्ति, स वा तान्निजान्पश्चात्परिभवोत्थापितविवेकः 'परिहरेत्' त्यजेत्, तन्निरपेक्षः सेडुकवत् स्यादित्यर्थः, ते च स्वजनादयो रोगोत्पत्तिकाले परिहरन्तोऽपरिहरन्तो वा न त्राणाय भवन्तीति दर्शयति–'नाल'मित्यादि, पूर्ववद्, रोगाद्यभिभूतान्तःकरणेन चापगतत्राणेन च किमालम्ब्य सम्यक्करणेन रोगवेदनाः सोढव्याः? इत्याह—

जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं (सू० ६८)

ज्ञात्वा प्रत्येकं प्राणिनां दुःखं तद्विपरीतं सातं वाऽदीनमनस्केन ज्वरादिवेदनोत्पत्तिकाले स्वकृतकर्म्मफलमवश्यमनुभवनीयमिति मत्वा न वैक्लव्यं कार्यमिति, उक्तं च–"सह कलेवर ! दुःखमचिन्तयन्, स्ववशता हि पुनस्तव दुर्लभा । बहुतरं च सहिष्यसि जीव हे !, परवशो न च तत्र गुणोऽस्ति ते ॥ १ ॥" यावच्च श्रोत्रादिभिर्विज्ञानैः परिहीयमानैः जराजीर्णं न निजाः परिवदन्ति यावच्चानुकम्पया न पोषयन्ति रोगाभिभूतं च न परिहरन्ति तावदात्मार्थोऽनुष्ठेय इत्येतद्दर्शयति—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६९]

दीप अनुक्रम [७०]

अणभिक्कंतं च खलु वयं संपेहाए (सू० ६९)

चशब्द आधिक्ये खलुशब्दः पुनरर्थे पूर्वमभिक्रान्तं वयः समीक्ष्य मूढभावं व्रजतीति प्रतिपादितम्, अनभिक्रान्तं च पुनर्वयः संप्रेक्ष्य "आयट्ठं समणुवासेज्जासि" इत्युत्तरेण सम्बन्धः, 'आत्मार्थम्' आत्महितं 'समनुवासयेत्' कुर्यादित्यर्थः। किमनतिक्रान्तवयसैवात्महितमनुष्ठेयमुतान्येनापि इति?, परेणापि लब्धावसरेणात्महितमनुष्ठेयमित्येतद्दर्शयति—

खणं जाणाहि पंडिए (सू० ७०)

क्षणः–अवसरो धर्म्मानुष्ठानस्य, स चार्यक्षेत्रसुकुलोत्पत्त्यादिकः, परिवादपोषणपरिहारदोषदुष्टानां जराबालभावरोगाणामभावे सति, तं क्षणं 'जानीहि' अवगच्छ 'पण्डित' आत्मज्ञ!। अथवाऽवसीदन् शिष्यः प्रोत्साह्यते–हे अनतिक्रान्तयौवन! परिवादादिदोषत्रयास्पृष्ट! पण्डित! द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदभिन्नं 'क्षणम्' अवसरमेवंविधं 'जानीहि' अवबुध्यस्व, तथाहि–द्रव्यक्षणो द्रव्यात्मकोऽवसरो जङ्गमत्वपञ्चेन्द्रियत्वविशिष्टजातिकुलरूपबलारोग्यायुष्कादिको मनुष्यभावः संसारोत्तरणसमर्थचारित्रावाप्तियोग्यस्त्वयाऽवाप्तः, स चानादौ संसारे पर्यटतोऽसुमतो दुरापो भवति, अन्यत्र तु नैतच्चारित्रमवाप्यते, तथाहि–देवनारकभवयोः सम्यक्त्वश्रुतसामायिके एव, तिर्यक्षु च कस्यचिद्देशविरतिरेवेति। क्षेत्रक्षणः क्षेत्रात्मकोऽवसरो यस्मिन् क्षेत्रे चारित्रमवाप्यते, तत्र सर्वविरतिसामायिकस्याधोलौकिकग्रामसमन्वितं तिर्यक्क्षेत्रमेव, तत्राप्यर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्राः, तत्रापि पञ्चदशसु कर्मभूमिषु, तत्रापि भरतक्षेत्रमपेक्ष्य अर्द्धषड्विंशेषु जनपदेष्वित्यादिकः क्षेत्रक्षणः-क्षेत्ररूपोऽवसरोऽधिगन्तव्यः, अन्यस्मिंश्च क्षेत्र आद्ये एव सामायिके। कालक्षणस्तु कालरूपः क्षणोऽवसरः, स चावसर्पिण्यां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[७०]

दीप
अनुक्रम
[७१]

तिसृषु समासु सुषमदुष्षमादुष्षमसुषमादुष्षमाख्यासु उत्सर्पिण्यां तु तृतीयचतुर्थारकयोः सर्वविरतिसामायिकस्य भवति, एतच्च प्रतिपद्यमानकं प्रत्यभ्यधायि, पूर्वप्रतिपन्नास्तु सर्वत्र तिर्यगूर्द्धाधोलोके सर्वासु च समासु द्रष्टव्याः, भावक्षणस्तु द्वेधा-कर्म्मभावक्षणो नोकर्म्मभावक्षणश्च, तत्र कर्म्मभावक्षणः कर्मणामुपशमक्षयोपशमक्षयान्यतरावाप्त्यवसर उच्यते, तत्रोपशमश्रेण्यां चारित्रमोहनीय उपशमितेऽन्तर्म्मौहूर्त्तिक औपशमिकश्चारित्रक्षणो भवति, तस्यैव मोहनीयस्य क्षयेणान्तर्म्मौहूर्त्तिक एव छद्मस्थयथाख्यातचारित्रक्षणो भवति, क्षयोपशमेन तु क्षायोपशमिकचारित्रावसरः, स चोत्कृष्टतो देशोनां पूर्वकोटिं यावदवगन्तव्यः, सम्यक्त्वक्षणस्त्व जघन्योत्कृष्टस्थितावायुषो वर्त्तमानस्य, शेषाणां तु कर्म्मणां पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनान्तःसागरोपमकोटिकोटीस्थितिकस्य जन्तोर्भवति, स चानेन क्रमेणेति, ग्रन्थिकसत्त्वेभ्योऽभव्येभ्योऽनन्तगुणया शुद्ध्या विशुद्ध्यमानो मतिश्रुतविभङ्गान्यतरसाकारोपयुक्तः शुद्धलेश्यात्रिकान्यतरलेश्योऽशुभकर्म्मप्रकृतीनां चतुःस्थानिकं रसं द्विस्थानिकतामापादयन् शुभानां च द्विस्थानिकं चतुःस्थानिकतां नयन् बध्नंश्च ध्रुवप्रकृतीः परिवर्त्तमानाश्च भवप्रायोग्या बध्नन्निति, ध्रुवकर्म्मप्रकृतयश्चेमाः—पञ्चधा ज्ञानावरणीयं नवधा दर्शनावरणीयं मिथ्यात्वं कषायषोडशकं भयं जुगुप्सा तैजसकार्मणशरीरे वर्णगन्धरसस्पर्शागुरुलघूपघातनिर्म्माणनामानि पञ्चधाऽन्तरायः, एताः सप्तचत्वारिंशद् ध्रुवप्रकृतयः, आसां सर्वदा बध्यमानत्वात्, मनुष्यतिरश्चोरन्यतरः प्रथमं सम्यक्त्वमुत्पादयन्नेता एकविंशतिः(म्)परिवर्त्तमाना बध्नाति, तद्यथा—देवगत्यानुपूर्वीद्वयपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियशरीराङ्गोपाङ्गद्वयसमचतुरस्रसंस्थानपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतिप्रशस्तत्रसादिदशकसातावेदनीयोच्चैर्गोत्ररूपा इति, देवनारकास्तु मनुष्यगत्यानुपूर्वीद्वयौदारिकद्वयप्रथमसंहननसहितानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७०] दीप अनुक्रम [७१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

शुभानि बध्नन्ति, तमतमानारकास्तु तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यद्वियनीचैर्गोत्रसहितानीति, तदध्यवसायोपपन्नः सन्नायुष्कमबध्नन् यथाप्रवृत्तेन करणेन ग्रन्थिमासाद्यापूर्वकरणेन भित्त्वा मिथ्यात्वस्यान्तरकरणं विधायानिवृत्तिकरणेन सम्यक्त्वमवाप्नोति, तत ऊर्द्ध्वं क्रमेण क्षीयमाणे कर्म्मणि प्रवर्द्धमानेषु कण्डकेषु देशविरत्यादेरवसर इति । नोकर्म्मभावक्षणस्त्वालस्यमोहावर्णवादस्तम्भाद्यभावे सम्यक्त्वाद्यवाप्त्यवसर इति, आलस्यादिभिस्तूपहतो लब्ध्वाऽपि संसारलङ्घनक्षमं मनुष्यभवं बोध्यादिकं नाप्नोतीति, उक्तं च—"[१]आलस्समोहऽवन्ना थंभा कोहा पमाय किविणत्ता । भयसोगा अन्नाणा विक्खेव कुऊहला रमणा ॥१॥ एएहिं कारणेहिं लद्धूण सुदुल्लहंपि माणुस्सं । न लहइ सुइं हिअकरिं संसारुत्तारणिं जीवो ॥२॥" तदेवं चतुर्विधोऽपि क्षण उक्तः, तद्यथा–द्रव्यक्षणो जङ्गमत्वादिविशिष्टं मनुष्यजन्म क्षेत्रक्षण आर्यक्षेत्रं कालक्षणो धर्म्मचरणकालो भावक्षणः क्षयोपशमादिरूपः । इत्येवंभूतमवसरमवाप्यात्मार्थं समनुवासयेदित्युत्तरेण सम्बन्धः । किं च—

जाव सोयपरिण्णाणा अपरिहीणा नेत्तपरिण्णाणा अपरिहीणा घाणपरिण्णाणा अपरिहीणा जीहपरिण्णाणा फरि०, इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं पण्णाणेहिं अपरिहीणेहिं आयट्ठं संमं समणुवासिज्जासि (सू० ७१) त्तिबेमि ॥ प्रथमोद्देशः ॥

१ आलस्यं मोहोऽवर्णः स्तम्भः क्रोधः प्रमादः कृपणता । भयशोकौ अज्ञानं विक्षेपः कौतूहलं रमणम् ॥ १ ॥ एतैः कारणैर्लब्ध्वा सुदुर्लभमपि मानुष्यं । न लभते श्रुतिं हितकरीं संसारोत्तारिणीं जीवः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७१]

दीप अनुक्रम [७२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

यावदस्य विशरारोः कायापशदस्य श्रोत्रविज्ञानानि जरसा रोगेण वा अपरिहीनानि भवन्ति, एवं नेत्रघ्राणरसनस्पर्शविज्ञानानि न विषयग्रहणस्वभावतया मान्द्यं प्रतिपद्यन्ते, इत्येतैः 'विरूपरूपैः' इष्टानिष्टरूपतया नानारूपैः 'प्रज्ञानैः' प्रकृष्टैर्ज्ञानैरपरिक्षीयमाणैः सद्भिः किं कुर्याद्? इत्याह—'आयट्ठं' इत्यादि, आत्मनोऽर्थ आत्मार्थः, स च ज्ञानदर्शनचारित्रात्मकः, अन्यस्त्वनर्थ एव, अथवाऽऽत्मने हितं—प्रयोजनमात्मार्थं, तच्च चारित्रानुष्ठानमेव, अथवा आयतः—अपर्यवसानान्मोक्ष एव, स चासावर्थश्चायतार्थोऽतस्तं, यदि वाऽऽयत्तो—मोक्षः अर्थः—प्रयोजनं यस्य दर्शनादित्रयस्य तत्तथा 'समनुवासयेत्' इति 'वस निवासे' इत्येतस्माद्धेतुमण्णिजन्ताल्लिङ्सिप् सं—सम्यग् यथोक्तानुष्ठानेन अनु—पश्चादनभिक्रान्तं वयः संप्रेक्ष्य क्षणम्—अवसरं प्रतिपद्य श्रोत्रादिविज्ञानानां वा—प्रहीणतामधिगम्य तत आत्मार्थं 'समनुवासयेः' आत्मनि विदध्याः। अथवा 'अर्थवशाद् विभक्तिपुरुषपरिणाम'इतिकृत्वा तेन वा आत्मार्थेन ज्ञानदर्शनचारित्रात्मकेनात्मानं 'समनुवासयेद्'भावयेद्रञ्जयेत्, आयतार्थं वा मोक्षाख्यं सम्यग्—अपुनरागमनेनान्विति—यथोक्तानुष्ठानात्पश्चादात्मना 'समनुवासयेद्'अधिष्ठापयेद्। 'इतिः' परिसमाप्तौ, ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जम्बूस्वामिनमिदमाह, यद्भगवता श्रीवर्द्धमानस्वामिनाऽर्थतोऽभ्यधायि तदेवाहं सूत्रात्मना वच्मीति। द्वितीयाध्ययनस्य प्रथम उद्देशकः समाप्तः॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७१]

दीप अनुक्रम [७२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १११ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः २

उक्तः प्रथमोद्देशकः, साम्प्रतं द्वितीयस्य व्याख्या प्रतन्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः, इह विषयकषायमातापित्रादिलोकविजयेन मोक्षावाप्तिहेतुभूतं चारित्रं यथा सम्पूर्णभावमनुभवत्येवंरूपोऽध्ययनार्थाधिकारः प्राङ्गिरदेशि, तत्र मातापित्रादिलोकविजयेन रोगजराद्यनभिभूतचेतसाऽऽत्मार्थः–संयमोऽनुष्ठेय इत्येतत्प्रथमोद्देशकेऽभिहितम्, इहापि तस्मिन्नेव संयमे वर्त्तमानस्य कदाचिन्मोहनीयोदयादरतिः स्याद्, अज्ञानकर्म्मलोभोदयाद्वाऽध्यात्मदोषेण संयमे न दृढत्वं भवेदित्यतोऽरत्यादिव्युदासेन यथा संयमे दृढत्वं भवति तथाऽनेन प्रतिपाद्यते, अथवा यथाऽष्टप्रकारं कर्म्मापहीयते तथा अस्मिन्नध्ययने प्रतिपाद्यते इत्यध्ययनार्थाधिकारेऽभ्यधायि, तच्च कथं क्षीयत इत्याह—

अरइं आउट्टे से मेहावी, खणंसि मुक्के (सू० ७२)

अस्य चानन्तरसूत्रेण सम्बन्धो वाच्यः, स चायम्—'आयट्ठं समणुवासेज्जासि' आत्मार्थं संयमं सम्यक्तया कुर्यात्, तत्र कदाचिदरत्युद्भवो भवेत्तदर्थमाह–'अरइं' इत्यादि, परम्परसूत्रसम्बन्धस्तु 'खणं जाणाहि पंडिए' क्षणं–चारित्रावसरमवाप्यारतिं न कुर्यादित्याह—'अरइं' इत्यादि, आदिसूत्रसम्बन्धस्तु 'सुअं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं' किं तच्छ्रुतमित्याह–'अरइं आउट्टे से मेहावी' रमणं रतिस्तदभावोऽरतिस्तां पञ्चविधाचारविषयां मोहोदयात् कषायाभिष्वङ्गजनितां मातापितृकलत्राद्युत्थापितां 'स' इत्यरतिमान् 'मेधावी' विदितासारसंसारस्वभावः सन् आवर्त्तेत अपवर्त्तेत निवर्त्तयेदित्युक्तं भवति, (संयमे चारतिर्न विषयाभिष्वङ्गरतिमृते कण्डरीकस्येवेत्यत इदमुक्तं भवति–विषयाभिष्वङ्गे रतिं निवर्त्तेत, निवर्त्तनं चैवमुपजायते यदि दशविधचक्रवालसामाचारीविषया रतिरुत्पद्यते पौण्डरीकस्येवेति,) ततश्चेदमुक्तं

॥ १११ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय-अध्ययने द्वितीय-उद्देशक: 'अदृढता' आरब्ध:,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[७२]

दीप
अनुक्रम
[७३]

भवति-संयमे रतिं कुर्वीत, तद्विहितरतेस्तु न किञ्चिद्बाधायै, नापीहापरसुखोत्तरबुद्धिरिति, आह च-“क्षितितलशयनं वा प्रान्तभैक्षाशनं वा, सहजपरिभवो वा नीचदुर्भाषितं वा। महति फलविशेषे नित्यमभ्युद्यतानां, न मनसि न शरीरे दुःखमुत्पादयन्ति ॥ १ ॥ तणसंथारनिसण्णोऽवि मुणिवरो भट्ठरागमयमोहो। जं पावइ मुत्तिसुहं तं कत्तो चक्कवट्टीवि? ॥ २ ॥” इत्यादि च। अत्र हि चारित्रमोहनीयक्षयोपशमादवाप्तचारित्रस्य पुनरपि तदुदयादवदिधाविषोरनेन सूत्रेणोपदेशो दीयते, तच्चावधावनं संयमात् यैर्हेतुभिर्भवति तान्निर्युक्तिकारो गाथयाऽऽचष्टे—

बिइउद्देसे अदढो उ संजमे कोइ हुज्ज अरईए। अन्नाणकम्मलोभाइएहिँ अज्झत्थदोसेहिं ॥ १९७ ॥

इह हि प्रथमोद्देशके बह्व्यो निर्युक्तिगाथा अस्मिंस्त्वियमेवैकेत्यतो मन्दबुद्धेः स्यादारेका यथा इयमपि तत्रत्यैवेत्यतो विनेयसुखप्रतिपत्त्यर्थं द्वितीयोद्देशकग्रहणमिति, कश्चित्कण्डरीकदेशीयः 'संयमे' सप्तदशभेदभिन्ने 'अदृढः' शिथिलो मोहनीयोदयादरत्युद्भवाद्भवेत्, मोहनीयोदयोऽप्याध्यात्मिकैर्दोषैर्भवेत्, ते चाध्यात्मदोषा अज्ञानलोभादयः, आदिशब्दादिच्छामदनकामानां परिग्रहो, मोहस्याज्ञानलोभकामाद्यात्मकत्वात्तेषां चाध्यात्मिकत्वादिति गाथार्थः ॥ [द्वितीयाध्ययने द्वितीयोद्देशकनिर्युक्तिः] ॥ ननु चारतिमतो मेधाविनोऽनेन सूत्रेणोपदेशो दीयते यथा-संयमारतिमपवर्त्तेत, मेधावी चात्र विदितसंसारस्वभावो विवक्षितो, यश्चैवंभूतो नासावरतिमान् तद्वांश्चेन्न विदितवेद्य इत्यनयोः सहानवस्थानलक्षणेन विरोधेन विरोधाच्छायातपयोरिव नैकत्रावस्थानम्, उक्तं च-“तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः।

१ तृणसंस्तारनिषण्णोऽपि मुनिवरो भ्रष्टरागमदमोहः। यत्प्राप्नोति मुक्तिसुखं कुतस्तत् चक्रवर्त्यपि? ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुन: अत्र निर्युक्ति क्रमे मुद्रण-दोष: (१८६ के बजाय सीधा १९७ क्रम दे दिया है, इसके पूर्व क्रम १६३ से १७१ दो बार दिये थे)

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७२]

दीप अनुक्रम [७३]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ११२ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः२

तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम्? ॥ १ ॥" इत्यादि, यो ह्यज्ञानी मोहोपहतचेताः स विषयाभिष्वङ्गात्संयमे सर्वद्वन्द्वप्रत्यनीके रत्यभावं विदध्याद्, आह च–अज्ञानान्धाश्चटुलवनितापाङ्गविक्षेपितास्ते, कामे सक्तिं दधति विभवाभोगतुङ्गार्जने वा । विद्वच्चित्तं भवति हि महन्मोक्षमार्गैकतानं, नाल्पस्कन्धे विटपिनि कषत्यंसभित्तिं गजेन्द्रः ॥ १ ॥" नैतन्मृष्यामहे, यतो ह्यवाप्तचारित्रस्यायमुपदेशो दित्सितः, चारित्रावाप्तिश्च न ज्ञानमृते, तत्कार्यत्वाच्चारित्रस्य, न च ज्ञानारत्योर्विरोधः, अपि तु रत्यरत्योः, ततश्च संयमगता रतिरेवारत्या बाध्यते न ज्ञानम्, अतो ज्ञानिनोऽपि चारित्रमोहनीयोदयात्संयमे स्यादेवारतिः, यतो ज्ञानमप्यज्ञानस्यैव बाधकं, न संयमारतेः, तथा चोक्तम्–ज्ञानं भूरि यथार्थवस्तुविषयं स्वस्य द्विषो बाधकं, रागारातिशमाय हेतुमपरं युङ्क्ते न कर्तृ स्वयम् । दीपो यत्तमसि व्यनक्ति किमु नो रूपं स एवेक्षतां, सर्वः स्वं विषयं प्रसाधयति हि प्रासङ्गिकोऽन्यो विधिः ॥ १ ॥" तथेदमपि भवतो न कर्णविवरमगाद् यथा–'बलवानिन्द्रियग्रामः, पण्डितोऽप्यत्र मुह्यती'त्यतो यत्किञ्चिदेतत्, अथवा नारत्यापन्न एवैवमुच्यते, अपि त्वयमुपदेशो मेधावी संयमविषये मा विधादरतिमिति । संयमारतिनिवृत्तश्च सन् कं गुणमवाप्नोतीत्याह–'खणंसि मुक्के'परमनिरुद्धः कालः क्षणः जरत्पट्टशाटिकापाटनदृष्टान्तसमयप्रसाधितः तत्र मुक्तो विभक्तिपरिणामाद्वा क्षणेन–अष्टप्रकारेण कर्म्मणा संसारबन्धनैर्वा विषयाभिष्वङ्गस्नेहादिभिर्मुक्तो भरतवदिति, ये पुनरनुपदेशवर्त्तिनः कण्डरीकाद्यास्ते चतुर्गतिकसंसारान्तर्वर्त्तिनो दुःखसागरमधिवसन्तीत्याह च–

अणाणाय पुट्ठावि एगे नियट्टंति, मंदा मोहेण पाउडा, अपरिग्गहा भविस्सामो समु-

॥ ११२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[७३]

दीप
अनुक्रम
[७४]

ट्ठाय लद्धे कामे अभिगाहइ, अणाणाए मुणिणो पडिलेहंति, इत्थ मोहे पुणो पुणो सन्ना नो हव्वाए नो पाराए (सू० ७३)

आज्ञाप्यत इत्याज्ञा–हिताहितप्राप्तिपरिहाररूपतया सर्वज्ञोपदेशस्तद्विपर्ययोऽनाज्ञा तया अनाज्ञया सत्या 'स्पृष्टाः' परीषहोपसर्गैः, अपिशब्दः सम्भावनायां स च भिन्नक्रमो निवर्त्तन्त इत्यस्मादनन्तरं द्रष्टव्यः, 'एके' मोहनीयोदयात्कण्डरीकादयो न सर्वे संयमात्समस्तद्वन्द्वोपशमरूपात् निवर्त्तन्ते अपीति, सम्भाव्यत एतन्मोहोदयस्येत्यपिशब्दार्थः, किंभूताः सन्तो निवर्त्तन्त इत्याह–'मन्दा' जडा अपगतकर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेकाः, कुत एवंभूता?, यतो 'मोहेन प्रावृता' मोहः-अज्ञानं मिथ्यात्वमोहनीयं वा तेन प्रावृता–गुण्ठिताः, उक्तं च–"अज्ञानं खलु कष्टं क्रोधादिभ्योऽपि सर्वपापेभ्यः। अर्थं हितमहितं वा न वेत्ति येनावृतो लोकः ॥ १ ॥" इत्यादि, तदेवमवाप्तचारित्रोऽपि कर्म्मोदयात्परीषहोदयेऽङ्गीकृतलिङ्गः पश्चाद्भावतामालम्बत इत्युक्तम् । अपरे तु स्वरुचिविरचितवृत्तयो नानाविधैरुपायैर्लोकादर्थं जिघृक्षवः किल वयं संसारोद्विग्ना मुमुक्षवस्तेषु तेषु आरम्भविषयाभिष्वङ्गेषु प्रवर्त्तन्त इति दर्शयति–'अपरिग्गहा' इत्यादि, परिः–समन्तात् मनोवाक्कायकर्म्मभिर्गृह्यत इति परिग्रहः स येषां नास्तीत्यपरिग्रहा एवंभूता वयं भविष्याम इति शाक्यादिमतानुसारिणः स्वयूथ्या वा 'समुत्थाय' चीवरादिग्रहणं प्रतिपद्य, ततो लब्धान् कामान् 'अभिगाहन्ते' सेवन्ते, तिङ्व्यत्ययेन चैकवचनमिति, अत्र चान्यव्रतोपादानात् शेषाण्यपि ग्राह्याणि, अहिंसका वयं भविष्याम एवममृषावादिन इत्याद्यप्यायोज्यम् । तदेवं शैलूषा इवान्यथावादिनोऽन्यथाकारिणः कामार्थमेव तांस्तान् प्रव्रज्याविशेषान्बिभ्रति, उक्तं च–"स्वेच्छाविरचितशास्त्रैः

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [७३]

दीप अनुक्रम [७४]

प्रव्रज्यावेषधारिभिः क्षुद्रैः । नानाविधैरुपायैरनाथवन्मुष्यते लोकः ॥ १ ॥” इत्यादि । तदेवं प्रव्रज्यावेषधारिणो लब्धान्कामानवगाहन्ते तल्लाभार्थं च तदुपायेषु प्रवर्त्तन्ते इत्याह–‘अणाणाए’ इत्यादि, ‘अनाज्ञया’ स्वैरिण्या बुद्ध्या ‘मुनय’ इति मुनिवेषविडम्बिनः कामोपायान् ‘प्रत्युपेक्षन्ते’ कामोपायारम्भेषु पौनःपुन्येन लगन्तीति, आह च–‘एत्थ’ इत्यादि, ‘अत्र’ अस्मिन् विषयाभिष्वङ्गाज्ञानमये भावमोहे पौनःपुन्येन ‘सन्नाः’ विषण्णा निमग्नाः पङ्कावमग्ना नागा इवात्मानमाक्रष्टुं नालमिति, आह च–‘नो हव्वाए नो पाराए’ यो हि मध्येमहानदीपूरं निमग्नो भवत्यसौ नारातीयतीराय नापि पारेमहानदीपूरमिति, एवमत्रापि कुतश्चिन्निमितात्त्यक्तगृहगृहिणीपुत्रधनधान्यहिरण्यरत्नकुप्यदासीदासादिविभव आकिञ्चन्यं प्रतिज्ञायारातीयतीरदेश्याद्गृहवाससौख्यान्निर्गतः सन् नो हव्वाएत्ति भवति, पुनरपि वान्तभोगाभिलाषितया यथोक्तसंयमाभावेन तत्क्रियाया विफलत्वात् नो पाराए त्ति भवति, उभयतो मुक्तबन्धना मुक्तोलीवोभयभ्रष्टो न ग्रहस्थो नापि प्रव्रजित इत्युक्तं भवति, उक्तं च–“इन्द्रियाणि न गुप्तानि, लालितानि न चेच्छया । मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य, न भुक्तं नापि शोषितम् ॥ १ ॥” इति । ये पुनरप्रशस्तरतिनिवृत्ताः प्रशस्तरतिमधिशयानास्ते किंभूता भवन्तीत्याह—

विमुत्ता हु ते जणा जे जणा पारगामिणो, लोभमलोभेण दुगुंछमाणे लद्धे कामे नाभिगाहइ (सू० ७४)

विविधम्–अनेकप्रकारं द्रव्यतो धनस्वजनानुषङ्गाद्भावतो विषयकषायादिभ्योऽनुसमयं मुच्यमाना एव भाविनि भूतवदुपचारान्मुक्ता विमुक्ताः ते जना ये जनाः सर्वस्वजनभूता निर्ममत्वाः पारगामिनो भवन्ति, पारो-मोक्षः संसारार्णवतट-

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [७४]

दीप अनुक्रम [७५]

वृत्तित्वात्तत्कारणानि ज्ञानदर्शनचारित्राण्यपि पार इति, भवति हि तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यं यथा तन्दुलान् वर्षति पर्जन्यः, अतस्तत्पारं–ज्ञानदर्शनचारित्राख्यं गन्तुं शीलं येषां ते पारगामिनः, ते मुक्ता भवन्तीति पूर्वेण सम्बन्धः । कथं पुनः सम्पूर्णपारगामित्वं भवतीत्याह–'लोभं' इत्यादि, इह हि लोभः सर्वसङ्गानां दुस्त्यजो भवति, तथाहि–क्षपकश्रेण्यन्तर्गतस्यापगताशेषकषायस्यापि खण्डशः क्षिप्यमाणोऽप्यनुबध्यत इति, अतस्तं लोभं, तद्विपक्षेण अलोभेन 'जुगुप्समानो' निन्दन्परिहरन् किं करोतीत्याह–'लद्धे' इत्यादि, 'लब्धान्' प्राप्तानिच्छामदनरूपान् कामान् 'नाभिगाहते' न सेवते, यो हि शरीरादावपि निवृत्तलोभः स कामाभिष्वङ्गवान्न भवति, ब्रह्मदत्तामन्त्रितचित्रवदिति, प्रधानान्त्यलोभपरित्यागेन चोपसर्जनाधस्तनपरित्यागो द्रष्टव्यः, तद्यथा–क्रोधं क्षान्त्या जुगुप्समानो मानं मार्दवेन मायामार्जवेनेत्याद्यप्यायोज्यं, लोभोपादानं तु सर्वकषायप्राधान्यख्यापनार्थमुपाददे, तथाहि–तत्प्रवृत्तः साध्यासाध्यविवेकविकलः कार्याकार्यविचाररहितः सन्नर्थैकदत्तदृष्टिः पापोपादानमास्थाय सर्वाः क्रियाः अधितिष्ठतीति, तदुक्तम्–"धावेइ रोहणं तरइ सायरं भमइ गिरिणिगुंजेसुं । मारेइ बंधवंपिहु पुरिसो जो होइ धणलुद्धो ॥ १ ॥ अडइ बहुं वहइ भरं सहइ छुहं पावमायरइ धिट्ठो । कुलसीलजाइपच्चयधिइं च लोभहुओ चयइ ॥ २ ॥" इत्यादि, तदेवं कुतश्चिन्निमित्तात्सहापि लोभादिना निष्क्रम्य पुनर्लोभादिपरित्यागः कार्यः, अन्यस्तु लोभं विनापि प्रव्रज्यां प्रतिपद्यत इति दर्शयति—

१ धावति रोहणं तरति सागरं भ्राम्यति गिरिनिकुञ्जेषु । मारयति बान्धवमपि पुरुषो यो भवति धनलुब्धः ॥ १ ॥ अटति बहु वहति भारं सहते क्षुधां पापमाचरति धृष्टः । कुलशीलजातिप्रत्ययधृतीश्च लोभाभिद्रुतस्त्यजति ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५]

दीप अनुक्रम [७६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

विणावि लोभं निक्खम्म एस अकम्मे जाणइ पासइ, पडिलेहाए नावकंखइ, एस अणगारित्ति पवुच्चइ, अहो य राओ परितप्पमाणे कालाकालसमुट्ठाइ संजोगट्ठी अट्ठालोभी आलुंपे सहक्कारे विणिविट्ठचित्ते इत्थ सत्थे पुणो पुणो से आयबले से नाइबले से मित्तबले से पिच्चबले से देवबले से रायबले से चोरबले से अतिहिबले से किविणबले से समणबले, इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं कज्जेहिं दंडसमायाणं संपेहाए भया कज्जइ, पावमुक्खुत्ति मन्नमाणे, अदुवा आसंसाए (सू० ७५)

कश्चिद्भरतादिर्निःशेषतो लोभापगमाद्विनापि लोभं 'निष्क्रम्य' प्रव्रज्यां प्रतिपद्य, पाठान्तरं वा 'विणइत्तु लोभं' सञ्ज्वलनसंज्ञकमपि लोभं 'विनीय'निर्मूलतोऽपनीय एष एवंभूतः सन् 'अकर्मा'अपगतघातिकर्म्मचतुष्टयाविर्भूतानावरणज्ञानो विशेषतो जानाति सामान्यतः पश्यति, एतदुक्तं भवति–एवंभूतो लोभो येन तत्क्षये मोहनीयक्षये चावश्यं घातिकर्म्मक्षयस्तस्मिंश्च निरावरणज्ञानसद्भावस्ततोऽपि भवोपग्राहिकर्म्मापगम इत्यतो लोभापगमे अकर्म्मेत्युक्तम् । यतश्चैवम्भूतो लोभो दुरन्तस्तद्धानौ चावश्यं कर्म्मक्षयस्ततः किं कर्त्तव्यमित्याह–'पडिलेहाए'इत्यादि, प्रत्युपेक्षणया–गुणदोषपर्यालोचनयोपपन्नः सन्नथवा लोभविपाकं प्रत्युपेक्ष्य–पर्यालोच्य तदभावे गुणं च लोभं 'नावकाङ्क्षति' नाभिलषतीति, यश्चाज्ञानोपहतान्तःकरणोऽप्रशस्तमूलगुणस्थानवर्ती विषयकषायाद्युपपन्नस्तस्य पूर्वोक्तं विपरीततया सर्वं संतिष्ठते, तथाहि–अलोभं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५]

दीप अनुक्रम [७६]

लोभेन जुगुप्समानो लब्धान् कामानवगाहते, लोभमनपनीय निष्क्रम्य पुनरपि लोभैकमनाः सकर्म्मा न जानाति नापि पश्यति, अपश्यंश्चाप्रत्युपेक्षणयाऽभिकाङ्क्षति। यच्च प्रथमोद्देशकेऽप्रशस्तमूलगुणस्थानमवाचि तच्च वाच्यमिति, आह च–'अहो य राओ' इत्यादि, अहोरात्रं परितप्यमानः कालाकालसमुत्थायी संयोगार्थी अर्थालोभी आलुम्पः सहसाकारो विनिविष्टचित्तः अत्र–शस्त्रे पृथिवीकायाद्युपघातकारिणि पौनःपुन्येन वर्त्तते। किं च–'से आयबले' आत्मनो बलं–शक्त्युपचय आत्मबलं तन्मे भावीतिकृत्वा नानाविधैरुपायैरात्मपुष्टये तास्ताः क्रियाः ऐहिकामुष्मिकोपघातकारिणीर्विधत्ते, तथाहि–'मांसेन पुष्यते मांस'मितिकृत्वा पञ्चेन्द्रियघातादावपि प्रवर्त्तते, अपराश्च लुम्पनादिकाः सूत्रेणैवाभिहिताः, एवं च 'ज्ञातिबलं' स्वजनबलं मे भावीति, तथा तन्मित्रबलं मे भविष्यति येनाहमापदं सुखेनैव निस्तरिष्यामि, तत्प्रेत्यबलं भविष्यतीति बस्तादिकमुपहन्ति, तद्वा देवबलं भावीति पचनपाचनादिकाः क्रिया विधत्ते, राजबलं वा मे भविष्यतीति राजानमुपचरति, चौरग्रामे वा वसति चौरभागं वा प्राप्स्यामीति चौरानुपचरति, अतिथिबलं वा मे भविष्यतीत्यतिथीनुपचरति, अतिथिर्हि निःस्पृहोऽभिधीयते इति, उक्तं च–"तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे, त्यक्ता येन महात्मना। अतिथिं तं विजानीयाच्छेषमभ्यागतं विदुः ॥ १ ॥" एतदुक्तं भवति–तद्बलार्थमपि प्राणिषु दण्डो न निक्षेप्तव्यः इति, एवं कृपणश्रमणार्थमपि वाच्यमिति, एवं पूर्वोक्तैः 'विरूपरूपैः'नानाप्रकारैः पिण्डदानादिभिः कार्यैः 'दण्डसमादान'मिति दण्ड्यन्ते–व्यापाद्यन्ते प्राणिनो येन स दण्डस्तस्य सम्यगादानं–ग्रहणं समादानं, तदात्मबलादिकं मम नाभविष्यत् यद्यहमेतन्नाकरिष्यमित्येवं 'संप्रेक्षया' पर्यालोचनया एवं संप्रेक्ष्य वा भयात् क्रियते, एवं तावदिहभवमाश्रित्य दण्ड-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५]

दीप अनुक्रम [७६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ११५ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः २

समादानकारणमुपन्यस्तम्, आमुष्मिकार्थमपि परमार्थमजानानैर्दण्डसमादानं क्रियत इति दर्शयति–'पावमोक्खो'त्ति इत्यादि, पातयति पासयतीति वा पापं तस्मान्मोक्षः पापमोक्षः, 'इति' हेतौ, यस्मात्स मम भवीष्यतीति मन्यमानः दण्डसमादानाय प्रवर्त्तत इति, तथाहि–हुतभुजि षड्जीवोपघातकारिणि शस्त्रे नानाविधोपायप्राण्युपघातात्तपापविध्वंसनाय पिप्पलशमीसमित्तिलाज्यादिकं शठव्युद्ग्राहितमतयो जुह्वति, तथा पितृपिण्डदानादौ बस्तादिमांसोपस्कृतभोजनादिकं द्विजातिभ्य उपकल्पयन्ति तद्भुक्तशेषानुज्ञातं स्वतोऽपि भुञ्जते, तदेवं नानाविधैरुपायैरज्ञानोपहतबुद्धयः पापमोक्षार्थं दण्डोपादानेन तास्ताः क्रियाः प्राण्युपघातकारिणीः समारभमाणाः अनेकभवशतकोटीदुर्म्मोचमघमेवोपाददत इति । किञ्च—'अदुवा' इत्यादि, पापमोक्ष इति मन्यमानो दण्डमादत्त इत्युक्तम्, अथवा आशंसनम् आशंसा–अप्राप्तप्रापणाभिलाषस्तदर्थं दण्डसमादानमादत्ते, तथाहि–ममैतत् परुत्परारि वा प्रेत्य वोपस्थास्यते इत्याशंसया क्रियासु प्रवर्त्तते, राजानं वाऽर्थाशाविमोहितमना अवलगति, उक्तं च—"आराध्य भूपतिमवाप्य ततो धनानि, भोक्ष्यामहे किल वयं सततं सुखानि । इत्याशया धनविमोहितमानसानां, कालः प्रयाति मरणावधिरेव पुंसाम् ॥ १ ॥ एहि गच्छ पतोत्तिष्ठ, वद मौनं समाचर । इत्याद्याशाग्रहग्रस्तैः, क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः ॥ २ ॥" इत्यादि ॥ तदेवं ज्ञात्वा किं कर्त्तव्यमित्याह—

॥ ११५ ॥

तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभिज्जा नेव अन्नं एएहिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[७६]

दीप
अनुक्रम
[७७]

कज्जेहिं दंडं समारंभाविज्जा एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभंतंपि अन्नं न समणुजाणिज्जा, एस मग्गे आरिएहिं पवेइए, जहेत्थ कुसले नोवलिंपिज्जासि त्तिबेमि (सू०७६)

लोगविजयस्स बितिओ उद्देसो ॥ २ ॥

'तदि'ति सर्वनाम प्रक्रान्तपरामर्शि, 'तत्' शस्त्रपरिज्ञोक्तं स्वकायपरकायादिभेदभिन्नं शस्त्रम्, इह वा यदुक्तम् अप्रशस्तगुणमूलस्थानं–विषयकषायमातापित्रादिकं, तथा कालाकालसमुत्थानक्षणपरिज्ञानश्रोत्रादिविज्ञानप्रहाणादिकं तथाऽऽत्मबलाधानाद्यर्थं च दण्डसमादानं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् 'मेधावी' मर्यादावर्त्ती, ज्ञातहेयोपादेयः सन् किं कुर्यादित्याह—'नेव सयं' इत्यादि, नैव 'स्वयम्' आत्मना एतैः–आत्मबलाधानादिकैः 'कार्यैः' कर्त्तव्यैः समुपस्थितैः सद्भिः 'दण्डं' सत्त्वोपघातं समारभेत्, नाप्यन्यमपरमेभिः कार्यैर्हिसानृतादिकं दण्डं समारम्भयेत्, तथा समारभमाणमप्यपरं योगत्रिकेण न समनुज्ञापयेद् । एष चोपदेशस्तीर्थकृद्भिरभिहित इत्येतत् सुधर्म्मस्वामी जम्बूस्वामिनमाहेति दर्शयति—'एस' इत्यादि, 'एष' इति ज्ञानादियुक्तो भावमार्गो योगत्रिककरणत्रिकेण दण्डसमादानपरिहारलक्षणो वा 'आर्यैः' आराद्याताः सर्वहेयधर्म्मेभ्य इत्यार्याः–संसारार्णवतटवर्त्तिनः क्षीणघातिकर्म्मांशाः संसारोदरविवरवर्त्तिभावविदः तीर्थकृतस्तैः 'प्रकर्षेण' सदेवमनुजायां पर्षदि सर्वस्वभाषानुगामिन्या वाचा यौगपद्याशेषसंशीतिच्छेत्र्या प्रकर्षेण वेदितः–कथितः प्रतिपादित इतियावत्, एवम्भूतं च मार्गं ज्ञात्वा किं कर्त्तव्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [७७]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ११६ ॥

मित्याह—'जहेत्थ' इत्यादि, तेषु तेष्वात्मबलोपधानादिकेषु कार्येषु समुपस्थितेषु सत्सु दण्डसमुपादानादिकं परिहरन् 'कुशलो' निपुणः अवगततत्त्वो यथैतस्मिन् दण्डसमुपादाने स्वमात्मानं 'नोपलिम्पयेः' न तत्र संश्लेषं कुर्या इति, विभक्तिपरिणामाद्वा एतेन दण्डसमुपादानजनितकर्म्मणा यथा नोपलिप्यसे तथा सर्वैः प्रकारैः कुर्यास्त्वम् । इतिशब्दः परिसमाप्तौ, ब्रवीमीति पूर्ववत् । लोकविजये द्वितीय उद्देशकः समाप्तः ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ३

उक्तो द्वितीयोद्देशकः, साम्प्रतं तृतीय आरभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः—इहानन्तरोद्देशके संयमे दृढत्वं कार्यमसंयमे चादृढत्वमुक्तं, तच्चोभयमपि कषायव्युदासेन सम्पद्यते, तत्रापि मान उत्पत्तेरारभ्य उच्चैर्गोत्रोत्थापितः स्यात् अतस्तद्व्युदासार्थमिदमभिधीयते । अस्य चानन्तरसूत्रेण सम्बन्धः—'जहेत्थ कुसले नोवलिंपेज्जासि' कुशलो निपुणः सन्नस्मिन्नुच्चैर्गोत्राभिमाने यथाऽऽत्मानं नोपलिम्पयेस्तथा विदध्यास्त्वं, किं मत्वा ?, इत्यतस्तदभिधीयते—

से असइं उच्चागोए असइं नीआगोए, नो हीणे नो अइरित्ते, नोऽपीहए, इय संखाय
को गोयावाई को माणावाई ?, कंसि वा एगे गिज्झा, तम्हा नो हरिसे नो कुप्पे,
भूएहिं जाण पडिलेह सायं (सू० ७७)

॥ ११६ ॥

'से असइं उच्चागोए असइं नीआगोएत्ति' 'स' इति संसार्यसुमान् 'असकृद्' अनेकशः उच्चैर्गोत्रे मानसत्कारार्हे,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय-अध्ययने तृतीय-उद्देशक: 'मदनिषेध' आरब्ध:,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[७७]

दीप
अनुक्रम
[७८]

उत्पन्न इति शेषः, तथा असकृन्नीचैर्गोत्रे सर्वलोकावगीते, पौनःपुन्येनोत्पन्न इति, तथाहि—नीचैर्गोत्रोदयादनन्तमपि कालं तिर्यक्ष्वास्ते, तत्र च पर्यटन् द्विनवतिनामोत्तरप्रकृतिसत्कर्म्मा संस्तथाविधाध्यवसायोपपन्नः आहारकशरीरतत्सङ्गातबन्धनाङ्गोपाङ्गदेवगत्यानुपूर्वीद्वयनरकगत्यानुपूर्वीद्वयवैक्रियचतुष्टयरूपा एता द्वादशकर्मप्रकृतीर्निर्लेप्याशीतिसत्कर्म्मा तेजोवायुषूत्पन्नः सन् मनुजगत्यानुपूर्वीद्वयमपि निर्लेप्य तत उच्चैर्गोत्रमुद्वलयति पल्योपमासंख्येयभागेन, अतस्तेजोवायुष्वाद्य एव भङ्गकः, तद्यथा—नीचैर्गोत्रस्य बन्ध उदयोऽपि तस्यैव सत्कर्म्मताऽपीति, ततोऽप्युद्वृत्तस्यापरैकेन्द्रियगतस्यायमेव भङ्गः, त्रसेष्वप्यपर्याप्तकावस्थायामयमेव, अनिर्लेपिते[2] तूच्चैर्गोत्रे द्वितीयचतुर्थौ भङ्गौ, तद्यथा—नीचैर्गोत्रस्य बन्ध उदयोऽपि तस्यैव सत्कर्म्मता तूभयरूपस्यैवेति द्वितीयः, तथा उच्चैर्गोत्रस्य बन्धो नीचस्योदयः सत्कर्म्मता तूभयरूपस्येति चतुर्थः, शेषास्तु चत्वारो न सन्त्येव, तिर्यक्षूच्चैर्गोत्रस्योदयाभावादिति भावः, तदेवमुच्चैर्गोत्रोद्वलनेन कलंकलीभावमापन्नोऽनन्तं कालमेकेन्द्रियेष्वास्ते, अनुद्वलिते वा तिर्यक्ष्वास्तेऽनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिणीः, आवलिकाकालासङ्ख्ये-

१ ०स्यान्यत्रापि आदावय० प्र. २ अनिर्लेपिते तूच्चैर्गोत्रे द्वितीयो भङ्गकः, कस्यचित्प्रथमसमय एवापरस्यान्तमुहूर्त्ताद्वोर्ध्वमुच्चैर्गोत्रसम्बन्धसद्भावे चतुर्थभङ्गकः, तद्यथा-नीचैर्गोत्रस्य बन्ध उदयोऽपि तस्यैव सत्कर्म्मता तूभयरूपस्यैवेति द्वितीयः, तथोच्चैर्गोत्रस्य बन्धो नीचस्योदयः सत्कर्म्मता तूभयरूपस्येति चतुर्थः, शेषास्तु चत्वारो न सन्त्येव, तिर्यक्षूच्चैर्गोत्रस्योदयाभावादिति भावः । तदेवमुच्चैर्गोत्रोद्वलनेन कलंकलीभावमापन्नोऽसंख्येयमपि कालं सूक्ष्मत्रसेष्वास्ते, ततोऽप्युद्वृत्त उच्चैर्गोत्रोदयाभावे सति द्वितीयचतुर्थभङ्गकस्थोऽनन्तमपि कालं तिर्यक्ष्वास्ते इति, स च अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिणीः, आवलिकाकालासंख्येयभागसमयसंख्यान् पुद्गलपरावर्त्तानिति प्र. ३ नीचैर्गोत्रस्य बन्ध उच्चैर्गोत्रस्योदयः उच्चनीचैर्गोत्रे सती ३ उच्चैर्गोत्रस्य बन्ध उच्चैर्गोत्रस्योदय उच्चनीचैर्गोत्रे सती ५ उच्चैर्गोत्रस्योदय उच्चनीचैर्गोत्रे सती ६ उच्चैर्गोत्रस्योदय उच्चैर्गोत्रं सत् ७ इत्येवंरूपाः शेषास्तृतीयपञ्चमषष्ठसप्तमभङ्गरूपाश्चत्वारः. प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [७७]

दीप अनुक्रम [७८]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ११७ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ३

यभागसमयसंख्यान् पुद्गलपरावर्त्तानिति, कीदृशः पुनः पुद्गलपरावर्त्त इति ? उच्यते, यदौदारिकवैक्रियतैजसभाषानापानमनःकर्मसप्तकेन संसारोदरविवरवर्त्तिनः पुद्गलाः आत्मसात्परिणामिता भवन्ति तदा पुद्गलपरावर्त्त इत्येके, अन्ये तु द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदाच्चतुर्द्धा वर्णयन्ति, प्रत्येकमसावपि बादरसूक्ष्मभेदात् द्वैविध्यमनुभवति, तत्र द्रव्यतो बादरो यदौदारिकवैक्रियतैजसकार्म्मणचतुष्टयेन सर्वपुद्गला गृहीत्वोज्झितास्तदा भवति, सूक्ष्मः पुनर्यदैकशरीरेण सर्वपुद्गलाः स्पर्शिता भवन्ति तदा द्रष्टव्यः १, क्षेत्रतो बादरो यदा क्रमोत्क्रमाभ्यां म्रियमाणेन सर्वे लोकाकाशप्रदेशाः स्पृष्टा भवन्ति तदा विज्ञेयः, सूक्ष्मस्तु तदा विज्ञेयो यदैकस्मिन् विवक्षिताकाशखण्डके मृतः पुनर्यदा तस्यानन्तरप्रदेशवृद्ध्या सर्वं लोकाकाशं व्याप्नोति तदा ग्राह्यः २, कालतो बादरो यदोत्सर्पिण्यवसर्पिणीसमयाः क्रमोत्क्रमाभ्यां म्रियमाणेनालिङ्गिता भवन्ति तदा विज्ञेयः, सूक्ष्मस्तूत्सर्पिणीप्रथमसमयादारभ्य क्रमेण सर्वसमया म्रियमाणेन यदा छुप्ता भवन्ति तदाऽवगन्तव्यो ३, भावतो बादरो यदाऽनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि क्रमोत्क्रमाभ्यां म्रियमाणेन व्याप्तानि भवन्ति तदाऽभिधीयते, अनुभागबन्धाध्यवसायप्रमाणं तु संयमस्थानावसरे प्रागेवाभ्यधायीति, सूक्ष्मस्तु जघन्यानुभागबन्धाध्यवसायस्थानादारभ्य यदा सर्वेष्वपि क्रमेण मृतो भवति तदाऽवसेय इति । तदेवं कलंकलीभावमापन्नोऽन्यो वा नीचैर्गोत्रोदयादनन्तमपि कालं तिर्यक्ष्वास्ते, मनुष्येष्वपि तदुदयादेव चावगीतेषु स्थानेषूत्पद्यते, तथा कलंकलीसत्त्वोऽपि द्वीन्द्रियादिषूत्पन्नः सन् प्रथमसमये एव पर्याप्त्युत्तरकालं वोच्चैर्गोत्रं बद्ध्वा मनुष्येष्वसकृदुच्चैर्गोत्रमास्कन्दति, तत्र कदाचित्तृतीयभङ्गकस्थः ॥ ११७ ॥
पञ्चमभङ्गोपपन्नो वा भवति, ताविमौ—नीचैर्गोत्रं बध्नात्युच्चैर्गोत्रस्योदयः सत्कर्म्मता तूभयस्य तृतीयः, पञ्चमस्तूच्चैर्गोत्रं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [७७]

दीप अनुक्रम [७८]

बध्नाति तस्यैवोदयः सत्कर्म्मता तूभयस्य, षष्ठसप्तमभङ्गौ तूपरतबन्धस्य भवतः, अविषयत्वान्न ताभ्यामिहाधिकारः, तौ चेमौ-बन्धोपरमे उच्चैर्गोत्रोदयः सत्कर्म्मता तूभयस्येति षष्ठः, सप्तमस्तु शैलेश्यवस्थायां द्विचरमसमये नीचैर्गोत्रे क्षपिते उच्चैर्गोत्रोदयस्तस्यैव सत्कर्म्मतेति, तदेवमुच्चावचेषु गोत्रेषु असकृदुत्पद्यमानेनासुमता पञ्चभङ्गकान्तर्वर्त्तिना न मानो विधेयो नापि दीनतेति । तयोश्चोच्चावचयोः गोत्रयोर्बन्धाध्यवसायस्थानकण्डकानि तुल्यानीत्याह—'णो हीणे णो अइरित्ते' यावन्त्युच्चैर्गोत्रेऽनुभावबन्धाध्यवसायस्थानकण्डकानि नीचैर्गोत्रेऽपि तावन्त्येव, तानि च सर्वाण्यप्यसुमताऽनादिसंसारे भूयो भूयः स्पर्शितानि, तत उच्चैर्गोत्रकण्डकार्थतयाऽसुभृन्न हीनो नाप्यतिरिक्तः, एवं नीचैर्गोत्रकण्डकार्थतयाऽपीति । नागार्जुनीयास्तु पठन्ति—"एगमेगे खलु जीवे अईअद्धाए असइं उच्चागोए असइं नीआगोए, कंडगट्ठयाए नो हीणे नो अइरित्ते" एकैको जीवः खलुशब्दो वाक्यालङ्कारे अतीते कालेऽसकृदुच्चावचेषु गोत्रेषूत्पन्नः, स चोच्चावचानुभागकण्डकापेक्षया न हीनो नाप्यतिरिक्त इति, तथाहि–उच्चैर्गोत्रकण्डकेभ्य एकभविकेभ्योऽनेकभविकेभ्यो वा नीचैर्गोत्रकण्डकानि न हीनानि नाप्यतिरिक्तानीत्यतोऽवगम्योत्कर्षापकर्षौ न विधेयौ, अस्य चोपलक्षणार्थत्वात् सर्वेष्वपि मदस्थानेष्वेतदायोज्यं । यतश्चोच्चावचेषु स्थानेषु कर्म्मवशादुत्पद्यन्ते, बलरूपलाभादिमदस्थानानां चासमञ्जसतामवगम्य किं कर्त्तव्यमित्याह—'नोऽपीहए' अपिः सम्भावने स च भिन्नक्रमो, जात्यादीनां मदस्थानानामन्यतमदपि नो 'ईहेतापि' नाभिलषेदपि अथवा नो स्पृहयेत्–नावकाङ्क्षेदिति । तत्र यद्युच्चावचेषु स्थानेष्वसकृदुत्पन्नोऽसुमांस्ततः किमित्याह—'इय संखाय' इत्यादि, इतिरुपप्रदर्शने 'इति' एतत्पूर्वोक्तनीत्योच्चावचस्थानोत्पादादिकं 'परिसंख्याय' ज्ञात्वा 'को गोत्रवादी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७७]

दीप अनुक्रम [७८]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ ११८ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः३

भवेद् ?' यथा ममोच्चैर्गोत्रं सर्वलोकमाननीयं नापरस्येत्येवंवादी को बुद्धिमान् भवेत् ?, तथाहि–मयाऽन्यैश्च जन्तुभिः सर्वाण्यपि स्थानान्यनेकशः प्राप्तपूर्वाणीति, तथोच्चैर्गोत्रनिमित्तमानवादी वा को भवेत् ?, न कश्चित्संसारस्वरूपपरिच्छेदीत्यर्थः, किं च—'कंसि वा एगे गिज्झे' अनेकशोऽनेकस्मिन् स्थानेऽनुभूते सति तन्मध्ये कस्मिन्वा एकस्मिन्नुच्चैर्गोत्रादिकेऽनवस्थितस्थानके रागादिविरहादेकः कथं गृध्येत् ?, तात्पर्यम्–आसेवां विदितकर्मपरिणामो विदध्यात्, युज्येत गार्द्ध्यं यदि तत्स्थानं प्राप्तपूर्वं नाभविष्यत्, तच्चानेकशः प्राप्तपूर्वम्, अतस्तल्लाभालाभयोः नोत्कर्षापकर्षौ विधेयाविति, आह च—'तम्हा' इत्यादि, यतोऽनादौ संसारे पर्यटताऽसुमताऽदृष्टायत्तान्यसकृदुच्चावचानि स्थानान्यनुभूतानि तस्मात्कथञ्चिदुच्चावचादिकं मदस्थानमवाप्य 'पण्डितो' हेयोपादेयतत्त्वज्ञो 'न हृष्येत्' न हर्षं विदध्याद्, उक्तं च—"सर्वसुखान्यपि बहुशः प्राप्तान्यटता मयाऽत्र संसारे। उच्चैःस्थानानि तथा तेन न मे विस्मयस्तेषु ॥ १ ॥ जइ सोऽवि णिज्जरमओ पडिसिद्धो अट्ठमाणमहणेहिं। अवसेस मयट्ठाणा परिहरिअव्वा पयत्तेणं ॥ २ ॥" नाप्यवगीतस्थानावाप्तौ वैमनस्यं विदध्याद्, आह च—'नो कुप्पे' अदृष्टवशात्तथाभूतलोकासम्मतं जातिकुलरूपबललाभादिकमधममवाप्य 'न कुप्येत्' न क्रोधं कुर्यात्, कतरन्नीचस्थानं शब्दादिकं वा दुःखं मया नानुभूतमित्येवमवगम्य नोद्वेगवशगेन भाव्यम्, उक्तं च—"अवमानात्परिभ्रंशाद्वधबन्धधनक्षयात्। प्राप्ता रोगाश्च शोकाश्च, जात्यन्तरशतेष्वपि ॥ १ ॥ संते ये अविम्हइउं असोइउं पंडिएण ॥ ११८ ॥

१ यदि सोऽपि निर्जरामदः प्रतिषिद्धोऽष्टमानमथनैः। अवशेषाणि मदस्थानानि परिहर्त्तव्यानि प्रयत्नेन ॥ १ ॥ २ सत्सु च विस्मेतुमशोचितुं पण्डितेन चासत्सु। शक्यं हि द्रुमोपमितहृदयेन हितं धरता ॥ १ ॥ भूत्वा चक्रवर्ती पृथ्वीपतिर्विमलपाण्डुरच्छत्रः। स एव नाम भूयोऽनाथशालालयो भवति ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [७७]

दीप अनुक्रम [७८]

य असंते । सक्का हु दुमोवमिअहिअएण हिअं धरंतेण ॥ २ ॥ होऊण चक्कवट्टी पुहइवई विमलपंडरच्छत्तो । सो चेव नाम भुज्जो अणाहसालालओ होइ ॥ ३ ॥” एकस्मिन् वा जन्मनि नानाभूतावस्था उच्चावचाः कर्म्मवशतोऽनुभवति । तदेवमुच्चनीचगोत्रनिर्विकल्पमनाः अन्यदपि अविकल्पेन किं कुर्यादित्याह—‘भूएहिं’ इत्यादि, भवन्ति भविष्यन्त्यभूवन्निति च भूतानि—असुभृतस्तेषु ‘प्रत्युपेक्ष्य’ पर्यालोच्य विचार्य कुशाग्रीयया शेमुष्या जानीहि—अवगच्छ, किं जानीहि?—‘सातं’ सुखं तद्विपरीतमसातमपि जानीहि, किं च कारणं सातासातयोः? एतज्जानीहि, किं चाभिलषन्त्यविगानेन प्राणिन इति, अत्र जीवजन्तुप्राण्यादिशब्दानुपयोगलक्षणद्रव्यस्य मुख्यान् वाचकान्विहाय सत्तावाचिनो भूतशब्दस्योपादानेनेदमाविर्भावयति—यथाऽयमुपयोगलक्षणपदार्थोऽवश्यं सत्तां बिभर्त्ति, साताभिलाष्यसातं च जुगुप्सते, साताभिलाषश्च शुभप्रकृतित्वाद् अतोऽपरासामपि शुभप्रकृतीनामुपलक्षणमेतदवसेयम्, अतः शुभनामगोत्रायुराद्याः कर्म्मप्रकृतीरनुधावत्यशुभाश्च जुगुप्सते सर्वोऽपि प्राणी । एवं च व्यवस्थिते सति किं विधेयमित्याह—

समिए एयाणुपस्सी, तंजहा-अन्धत्तं बहिरत्तं मूयत्तं काणत्तं कुंटत्तं खुज्जत्तं वडभत्तं सामत्तं सबलत्तं सह पमाएणं अणेगरूवाओ जोणीओ संधायइ विरूवरूवे फासे परिसंवेयइ (सू० ७८)

---

१ कर्मवशगो० प्र. २ बुध्यस्व.

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७८]

दीप अनुक्रम [७९]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) लोक.वि.२ उद्देशकः ३

॥ ११९ ॥

अथवा भूतेषु शुभाशुभरूपं कर्म्म प्रत्युपेक्ष्य यत्तेषामप्रियं तन्न विदध्यात् इत्ययमुपदेशो, नागार्जुनीयास्तु पठन्ति- "पुरिसेणं खलु दुक्खुव्वेअसुहेसए" 'पुरुषो' जीवः णमिति वाक्यालङ्कारे 'खलुः' अवधारणे दुःखात् उद्वेगो यस्य स दुःखोद्वेगः, सुखस्यैषकः सुखैषकः, याजकादित्वात्समासश्छान्दसत्वाद्वा, दुःखोद्वेगश्चासौ सुखैषकश्च दुःखोद्वेगसुखैषकः, सर्वोऽपि प्राणी दुःखोद्वेगसुखैषक एव भवत्यतो जीवप्ररूपणं कार्यं, तच्चावनिवनपवनानलवनस्पतिसूक्ष्मबादरविकलपञ्चेन्द्रियसंज्ञीतरपर्याप्तकापर्याप्तकरूपं शस्त्रपरिज्ञायामकार्येव, तेषां च दुःखपरिजिहीर्षूणां सुखलिप्सूनामात्मौपम्यमाचरता तदुपमर्दकानि हिंसादिस्थानानि परिहरताऽऽत्मा पञ्चमहाव्रतेष्वास्थेयः, तत्परिपालनार्थं चोत्तरगुणा अप्यनुशीलनीयाः, तदर्थमुपदिश्यते—'समिए एयाणुपस्सी' पञ्चभिः समितिभिः समितः सन् एतत्–शुभाशुभं कर्म्म वक्ष्यमाणं चान्धत्वादिकं द्रष्टुं शीलं यस्येत्येतदनुदर्शी भूतेषु सातं जानीहीति सण्टङ्कः, तत्र 'समिति'रिति 'इण् गता' वित्यस्मात्सम्पूर्वात् क्तिन्नन्ताद्भवति, सा च पञ्चधा, तद्यथा–इर्याभाषैषणाऽऽदाननिक्षेपोत्सर्गरूपाः, तत्रैर्यासमितिः प्राणव्यपरोपणव्रतपरिपालनाय, भाषासमितिरसदभिधाननियमसंसिद्धये, एषणासमितिरस्तेयव्रतपरिपालनाय, शेषद्वयं तु समस्तव्रतप्रकृष्टस्याहिंसाव्रतस्य संसिद्धये व्याप्रियते इति, तदेवं पञ्चमहाव्रतोपपेतस्तद्वृत्तिकल्पसमितिभिः समितः सन् भावत एतद्भूतसातादिकमनुपश्यति, अथवा यदनुदर्श्यसौ भवति तद्यथेत्यादिना सूत्रेणैव दर्शयति 'अन्धत्वमित्यादिना यावत् विरूपरूपे फासे परिसंवेएइ' संसारोदरे पर्यटन् प्राणी अन्धत्वादिका अवस्था बहुशः परिसंवेदयते, स चान्धो द्रव्यतो भावतश्च, तत्रैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रिया द्रव्यभावान्धाः, चतुरिन्द्रियादयस्तु मिथ्यादृष्टयो भावान्धाः, उक्तं च—"एकं हि चक्षुरमलं सहजो ॥ ११९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[७८]

दीप
अनुक्रम
[७९]

विवेकस्तद्वद्भिरेव सह संवसतिर्द्वितीयम् । एतद्द्वयं भुवि न यस्य स तत्त्वतोऽन्धस्तस्यापमार्गचलने खलु कोऽपराधः?॥१॥" सम्यग्दृष्टयस्तूपहतनयना द्रव्यान्धाः, त एवानन्धा न द्रव्यतो न च भावतः, तदेवमन्धत्वं द्रव्यभावभिन्नमेकान्तेन दुःखजननमवाप्नोतीति, उक्तं च—"जीवन्नेव मृतोऽन्धो यस्मात्सर्वक्रियासु परतन्त्रः । नित्यास्तमितदिवाकरस्तमोऽन्धकारार्णवनिमग्नः ॥ १ ॥ लोकद्वयव्यसनवह्निविदीपिताङ्गमन्धं समीक्ष्य कृपणं परयष्टिनेयम् । को नोद्विजेत भयकृज्जननादिवोग्रात्कृष्णाहिनैकनिचितादिव चान्धगर्त्तात्? ॥ २ ॥" एवं बधिरत्वमप्यदृष्टवशादनेकशः परिसंवेदयते, तदावृतश्च सदसद्विवेकविकलत्वादैहिकामुष्मिकेष्टफलक्रियानुष्ठानशून्यतां बिभर्त्ति इति, उक्तं च—"धर्म्मश्रुतिश्रवणमङ्गलवर्जितो हि, लोकश्रुतिश्रवणसंव्यवहारबाह्यः । किं जीवतीह बधिरो? भुवि यस्य शब्दाः, स्वप्नोपलब्धधननिष्फलतां प्रयान्ति? ॥ १ ॥ स्वकलत्रबालपुत्रकमधुरवचःश्रवणबाह्यकरणस्य । बधिरस्य जीवितं किं जीवन्मृतकाकृतिधरस्य? ॥ २ ॥" एवं मूकत्वमप्येकान्तेन दुःखावहं परिसंवेदयते, उक्तं च—"दुःखकरमकीर्त्तिकरं मूकत्वं सर्वलोकपरिभूतम् । प्रत्यादेशं मूढाः कर्म्मकृतं किं न पश्यन्ति? ॥ १ ॥" तथा काणत्वमप्येवंरूपमिति, आह च—"काणो निमग्नविषमोन्नतदृष्टिरेकः, शक्तो विरागजनने जननातुराणाम् । यो नैव कस्यचिदुपैति मनःप्रियत्वमालेख्यकर्म्मलिखितोऽपि किमु स्वरूपः? ॥१॥" एवं 'कुण्टत्वं' पाणिवक्रत्वादिकं 'कुब्जत्वं' वामनलक्षणं 'वडभत्वं' विनिर्गतपृष्ठीवडभलक्षणं 'श्यामत्वं' कृष्णलक्षणं 'शबलत्वं' श्वित्रलक्षणं सहजं पश्चाद्भावि वा कर्म्मवशगो भूरिशो दुःखराशिदेशीयं परिसंवेदयते । किं च—सह 'प्रमादेन' विषयक्रीडाभिष्वङ्गरूपेण श्रेयस्यनुद्यमात्मकेन 'अनेकरूपाः' सङ्कटविकटशीतोष्णादिभेदभिन्ना योनीः 'संदधाति' संधत्ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [७८]

दीप अनुक्रम [७९]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १२० ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ३

चतुरशीतियोनिलक्षसम्बन्धाविच्छेदं विदधातीति भावः, सम्यग् धावतीति वा, तासु तास्वायुष्कबन्धोत्तरकालं गच्छतीत्यर्थः, तासु च नानाप्रकारासु योनिषु 'विरूपरूपान्' नानाप्रकारान् 'स्पर्शान्' दुःखानुभवान् परिसंवेदयते, अनुभवतीत्यर्थः ॥ तदेवमुच्चैर्गोत्रोत्थापितमानोपहतचेता नीचैर्गोत्रविहितदीनभावो वाऽन्धबधिरभूयं वा गतः सन्नावबुध्यते कर्त्तव्यं न जानाति कर्म्मविपाकं नावगच्छति संसारापसदतां नावधारयति हिताहिते न गणयति औचित्यमित्यनवगततत्त्वो मूढस्तत्रैवोच्चैर्गोत्रादिके विपर्यासमुपैति, आह च—

से अबुज्झमाणे हओवहए जाईमरणं अणुपरियट्टमाणे, जीवियं पुढो पियं इहमेगेसिं माणवाणं खित्तवत्थुममायमाणाणं, आरत्तं विरत्तं मणिकुंडलं सह हिरण्णेण इत्थियाओ परिगिज्झति तत्थेव रत्ता, न इत्थ तवो वा दमो वा नियमो वा दिस्सइ, संपुण्णं बाले जीविउकामे लालप्पमाणे मूढे विप्परियासमुवेइ (सू० ७९)

'से' इत्युच्चैर्गोत्राभिमानी अन्धबधिरादिभावसंवेदको वा कर्म्मविपाकमनवबुध्यमानो हतोपहतो भवति, नानाव्याधिसद्भावक्षतशरीरत्वाद्धतः समस्तलोकपरिभूतत्वादुपहतः, अथवोच्चैर्गोत्रगर्वाध्मातत्यक्तोचितविधेयविद्वज्जनवदनसमुद्भूतशब्दायशःपटहहतत्वाद्धतः अभिमानोत्पादितानेकभवकोटिनीचैर्गोत्रोदयादुपहतः, मूढो विपर्यासमुपैतीत्युत्तरेण सम्बन्धः, तथा जातिश्च मरणं च समाहारद्वन्द्वस्तद् 'अनुपरिवर्त्तमानः' पुनर्जन्म पुनर्मरणमित्येवमरहट्टघटीयन्त्रन्यायेन संसारोदरे ॥ १२० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[७९]

दीप
अनुक्रम
[८०]

विवर्त्तमानः, आवीचीमरणाद्वा प्रतिक्षणं जन्मविनाशावनुभवन् दुःखसागरावगाढो विशरारुण्यपि नित्यताकृतमतिः हितेऽप्यहिताध्यवसायो विपर्यासमुपैति, आह च—'जीवितम्' आयुष्कानुपरमलक्षणमसंयमजीवितं वा 'पृथग्' इति प्रत्येकं प्रतिप्राणि 'प्रियं' दयितं वल्लभम् 'इहे'ति अस्मिन् संसारे 'एकेषाम्' अविद्योपहतचेतसां मानवानामिति, उपलक्षणार्थत्वात् प्राणिनां, तथाहि–दीर्घजीवनार्थं तास्ता रसायनादिकाः क्रियाः सत्त्वोपघातकारिणीः कुर्वते, तथा 'क्षेत्रं' शालिक्षेत्रादि 'वास्तु' धवलगृहादि मम इदमित्येवमाचरतां सतां तत्क्षेत्रादिकं प्रेयो भवति, किं च—'आरक्तम्' ईषद्रक्तं वस्त्रादि 'विरक्तं' विगतरागं विविधरागं वा 'मणिः' इति रत्नवैडूर्येन्द्रनीलादि 'कुण्डलं' कर्णाभरणं हिरण्येन सह स्त्रीः परिगृह्य 'तत्रैव' क्षेत्रवास्त्वारक्तविरक्तवस्त्रमणिकुण्डलस्त्र्यादौ 'रक्ता' गृद्धा अध्युपपन्ना मूढा विपर्यासमुपयान्ति, वदन्ति च–नात्र 'तपो वा' अनशनादिलक्षणं 'दमो वा' इन्द्रियनोइन्द्रियोपशमलक्षणो 'नियमो वा' अहिंसाव्रतलक्षणः फलवान् दृश्यते, तथाहि–तपोनियमोपपेतस्यापि कायक्लेशभोगादिवञ्चनां विहाय नान्यत्फलमुपलभ्यते, जन्मान्तरे भविष्यतीति चेद्व्युद्राहितस्योल्लापः, किं च–दृष्टहानिरदृष्टकल्पना च पापीयसीति, तदेवं साम्प्रतेक्षी भोगसङ्गविहितैकपुरुषार्थबुद्धिः सम्पूर्णं यथावसरसम्पादितविषयोपभोगं 'बालः' अज्ञः 'जीवितुकामः' आयुष्कानुभवनमभिलषन् 'लालप्यमानः' भोगार्थमत्यर्थं लपन् वागदण्डं करोति, तद्यथा–अत्र तपो दमो नियमो वा फलवान्न दृश्यत इत्येवमर्थं ब्रुवन् मूढः अबुध्यमानो हतोपहतो जातिमरणमनुपरिवर्त्तमानो जीवितक्षेत्रस्त्र्यादिलोभपरिमोहितमनाः 'विपर्यासमुपैति' तत्त्वेऽतत्त्वाभिनिवेशम् अतत्त्वे च तत्त्वाभिनिवेशं हितेऽहितबुद्धिमित्येवं सर्वत्र विपर्ययं विदधाति, उक्तं च—"दाराः परिभवकारा बन्धुजनो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७९] दीप अनुक्रम [८०]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १२१ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ३

बन्धनं विषं विषयाः। कोऽयं जनस्य मोहो?, ये रिपवस्तेषु सुहृदाशा ॥ १ ॥" इत्यादि ॥ ये पुनरुन्मज्जत्शुभकर्म्मापादिताध्यवसायपुरस्कृतमोक्षास्ते किंभूता भवन्तीत्याह—

इणमेव नावकंखंति, जे जणा धुवचारिणो। जाईमरणं परिन्नाय, चरे संकमणे दढे (१) नत्थि कालस्स णागमो, सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवहा पियजीविणो जीविउकामा, सव्वेसिं जीवियं पियं, तं परिगिज्झ दुपयं चउप्पयं अभिजुंजिया णं संसिंचिया णं तिविहेण जाऽवि से तत्थ मत्ता भवइ अप्पा वा बहुया वा, से तत्थ गड्ढिए चिट्ठइ, भोअणाए, तओ से एगया विविहं परिसिट्ठं संभूयं महोवगरणं भवइ, तंपि से एगया दायाया वा विभयन्ति, अदत्तहारो वा से अवहरति, रायाणो वा से विलुंपंति, नस्सइ वा से विणस्सइ वा से, अगारदाहेण वा से डज्झइ इय, से परस्सऽट्ठाए कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण संमूढे विप्परियासमुवेइ, मुणिणा हु एयं पवेइयं, अणोहंतरा एए नो य ओहं तरित्तए, अतीरंगमा

॥ १२१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८०]

दीप अनुक्रम [८१+८२]

एए नो य तीरं गमित्तए, अपारंगमा एए नो य पारं गमित्तए, आयाणिज्जं च आयाय तंमि ठाणे न चिट्ठइ, वितहं पप्पऽखेयन्ने तंमि ठाणंमि चिट्ठइ (सू० ८०)

'इणमेव' इत्यादि, इदमेव पूर्वोक्तं सम्पूर्णजीवितं क्षेत्राङ्गनापरिभोगादिकं वा 'नावकाङ्क्षति' नाभिलषन्ति, ये जना 'ध्रुवचारिणो' ध्रुवो–मोक्षस्तत्कारणं च ज्ञानादि ध्रुवं तदाचरितुं शीलं येषां ते तथा, धूतचारिणो वा धुनातीति धूतं–चारित्रं तच्चारिण इति । किं च—'जाई' इत्यादि, जातिश्च मरणं च समाहारद्वन्द्वः तत् 'परिज्ञाय' परिच्छिद्य ज्ञात्वा 'चरेत्' उद्युक्तो भवेत्, क?—'सङ्क्रमणे' सङ्क्रम्यतेऽनेनेति सङ्क्रमणं–चारित्रं तत्र 'दृढो' विश्रोतसिकारहितः परीषहोपसर्गैः निष्प्रकम्पो वा यदि वा अशङ्कमनाः सन् संयमं चर, न विद्यते शङ्का यस्य मनसस्तदशङ्कम् अशङ्कं मनो यस्यासावशङ्कमनाः–तपोदमनियमनिष्फलत्वाशङ्कारहित आस्तिक्यमत्युपपेतस्तपोदमादौ प्रवर्त्तेत, यतस्तद्वान् राजराजादीनां पूजाप्रशंसार्हो भवति, (न चौपशमिकसुखावाप्तफलस्य तपस्विनः समस्तद्वन्द्वदवीयसोऽसत्यपि परलोके किञ्चित् क्षूयते, उक्तं च—"संदिग्धेऽपि परे लोके, त्याज्यमेवाशुभं बुधैः । यदि नास्ति ततः किं स्यादस्ति चेन्नास्तिको हतः ॥ १ ॥" इत्यादि । तस्मात् स्वायत्ते संयमसुखे दृढेन भाव्यं, न चैतद्भावनीयं यथा–परुत्परारि वृद्धावस्थायां वा धर्म्मं करिष्यामीति, यतः—'नत्थि' इत्यादि, 'नास्ति' न विद्यते 'कालस्य' मृत्योरनागमः–अनागमनमनवसर इतियावत्, तथाहि–सोपक्रमायुषोऽसुमतो न काचित्साऽवस्था यस्यां कर्म्मपावकान्तर्वर्त्ती जन्तुर्जतुगोलक इव न विलीयेत इति, (उक्तं च—"शिशुम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८०]

दीप अनुक्रम [८१+८२]

शिशुं कठोरमकठोरमपण्डितमपि च पण्डितं, धीरमधीरं मानिनममानिनमपगुणमपि च बहुगुणम् । यतिमयतिं प्रकाशमवलीनमचेतनमथ सचेतनं, निशि दिवसेऽपि सान्ध्यसमयेऽपि विनश्यति कोऽपि कथमपि ॥ १ ॥" तदेवं सर्वंकषत्वं मृत्योरवधार्याहिंसादिषु दत्तावधानेन भाव्यं, किमिति?, यतः—'सव्वे पाणा पियाउया' प्राणशब्देनात्राभेदोपचारात् तद्वन्त एव गृह्यन्ते, सर्वे प्राणिनो—जन्तवः 'प्रियायुषः' प्रियमायुर्येषां ते तथा, ननु च सिद्धैर्व्यभिचारो, न हि ते प्रियायुषस्तदभावात्, नैष दोषो, यतो मुख्यजीवादिशब्दव्युदासेन प्राणशब्दस्योपचरितस्य ग्रहणं संसारप्राण्युपलक्षणार्थमिति यत्किञ्चिदेतत्, पाठान्तरं वा 'सव्वे पाणा पियायया' आयतः—आत्माऽनाद्यनन्तत्वात् स प्रियो येषां ते तथा, सर्वेऽपि प्राणिनः प्रियात्मानः । प्रियात्मता च सुखदुःखप्राप्तिपरिहारतया भवतीति आह च—'सुहसाया दुक्खपडिकूला' सुखम्—आनन्दरूपमास्वादयन्तीति सुखास्वादाः—सुखभोगिनः सुखैषिण इत्युक्तं भवति, दुःखम्—असातं तत्प्रतिकूलयन्तीति दुःखप्रतिकूलाः—दुःखद्वेषिण इत्युक्तं भवति, तथा 'अप्रियवधा' अप्रियं—दुःखकारणं तत् घ्नन्त्यप्रियवधाः, तथापि 'पियजीविणो' प्रियं—दयितं जीवितम्—आयुष्कमसंयमजीवितं येषां ते तथा, 'जीविउकामा' यत एव प्रियजीविनोऽत एव दीर्घकालं जीवितुकामाः—दीर्घकालमायुष्काभिलाषिणो दुःखाभिभूता अप्यन्त्यां दशामापन्ना जीवितुमेवाभिलषन्ति, उक्तं च—"[१]रमइ विहवी विसेसे ठितिमित्तं थेववित्थरो महई । मग्गइ सरीरमहणो रोगी जीए च्चिय कयत्थो ॥ १ ॥" तदेवं सर्वोऽपि प्राणी सुखजीविताभिलाषी, तच्च नारम्भमृते, असावपि प्राण्युपघातकारी, प्राणिनां च जीवितमत्यर्थं दयि-

१ रमते विभववान् विशेषे स्थितिमात्रं स्तोकविस्तारोऽभिलषति । मार्गयति शरीरमधनो रोगी जीवित एव कृतार्थः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८०]

दीप अनुक्रम [८१+८२]

त्वमित्यतो भूयो भूयस्तदेवोपदिश्यत इत्याह—'सव्वेसिं' इत्यादि, सर्वेषामविगानेन 'जीवितम्' असंयमजीवितं 'प्रियं' दयितं, यद्येवं ततः किमित्यत आह—'तं परिगिज्झ' तद्-असंयमजीवितं 'परिगृह्य' आश्रित्य, किं कुर्वन्तीत्याह—'दुपयं' इत्यादि, 'द्विपदं' दासीकर्म्मकरादि 'चतुष्पदं' गवाश्वादि 'अभियुज्य' योजयित्वा अभियोगं ग्राहयित्वा व्यापारयित्वेत्युक्तं भवति, ततः किमित्यत आह—'संसिंचिया णं' इत्यादि, प्रियजीवितार्थमर्थाभिवृद्धये द्विपदचतुष्पदादिव्यापारेण 'संसिच्य' अर्थनिचयं संवर्द्ध्य 'त्रिविधेन' योगत्रिककरणत्रिकेण यापि काचिदल्पा परमार्थचिन्तायां बह्व्यपि फल्गुदेश्या 'से' तस्यार्थारम्भिणः सा चार्थमात्रा 'तत्र' इति द्विपदाद्यारम्भे 'मात्रा' इति सोपस्कारत्वात्सूत्राणां अर्थमात्रा-अर्थाल्पता 'भवति' सत्तां बिभर्त्ति, किंभूता?, सा सूत्रेणैव कथयति—अल्पा वा बह्वी वा, अल्पबहुत्वं चापेक्षिकमतः सर्वाऽप्यल्पा सर्वाऽपि बह्वी 'स' इत्यर्थवान् 'तत्र' तस्मिन्नर्थे 'गृद्धः' अध्युपपन्नस्तिष्ठति, नालोचयत्यर्थस्योपार्जनक्लेशं न गणयति रक्षणपरिश्रमं न विवेचयति तरलतां नावधारयति फल्गुताम्, उक्तं च-कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जुगुप्सितं, निरुपमरसप्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम्। सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं सशङ्कितमीक्षते, न हि गणयति क्षुद्रो लोकः परिग्रहफल्गुताम् ॥ १ ॥" इत्यादि, स च किमर्थमर्थमर्थयत इत्यत आह—'भोयणाए' भोजनम्-उपभोगस्तस्मै अर्थमर्थयते, तदर्थी च क्रियासु प्रवर्त्तते, क्रियावतश्च किं भवतीत्याह—'तओ से' इत्यादि, ततः 'से' तस्यावलगनादिकाः क्रियाः कुर्वतः 'एकदा' लाभान्तरायकर्म्मक्षयोपशमे 'विविधं' नानाप्रकारं 'परिशिष्टं' प्रभूतत्वाद्भुक्तोद्धरितं 'सम्भूतं' सम्यक्परिपालनाय भूतं-संवृत्तं, किं तत्?, महच्च तत्परिभोगाङ्गत्वादुपकरणं च महोपकरणं-द्रव्यनिचय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [८०]

दीप अनुक्रम [८१+८२]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ १२३ ॥

लोक.वि.२

उद्देशकः ३

इत्यर्थः, स कदाचिल्लाभोदये भवति, असावप्यन्तरायोदयान्न तस्योपभोगायेत्याह—'तंपि से' इत्यादि, तदपि समुद्रोत्तरणरोहणखननबिलप्रवेशरसेन्द्रमर्दनराजावलगनकृषीवलादिकाभिः क्रियाभिः स्वपरोपतापकारिणीभिः स्वोपभोगायोपार्ज्जितं सत् 'से'तस्यार्थोपार्जनोपायक्लेशकारिणः 'एकदा'भाग्यक्षये 'दायादाः' पितृपिण्डोदकदानयोग्याः 'विभजन्ते' विलुम्पन्ति, 'अदत्तहारो वा' दस्युर्वा अपहरति, राजानो वा 'विलुम्पन्ति' अवच्छिन्दन्ति 'नश्यति वा' स्वत एवाटवीतः 'से'तस्य 'विनश्यति वा' जीर्णभावापत्तेः 'अगारदाहेन वा' गृहदाहेन वा दह्यते, कियन्ति वा कारणान्यर्थनाशे वक्ष्यन्ते इत्युपसंहरति—'इति' एवं बहुभिः प्रकारैरुपार्ज्जितोऽप्यर्थो नाशमुपैति, नैवोपार्ज्जयितुरुपतिष्ठत इत्युपदिश्यते, सः अर्थस्योत्पादयिता परस्मै–अन्यस्मै अर्थाय–प्रयोजनाय अन्यप्रयोजनकृते 'क्रूराणि' गलकर्त्तनादीनि 'कर्म्माणि' अनुष्ठानानि 'बालः' अज्ञः 'प्रकुर्वाणः' विदधानः 'तेन' कर्म्मविपाकापादितेन 'दुःखेन' असातोदयेन '(सं) मूढः' अपगतविवेकः 'विपर्यासमुपैति' अपगतसदसद्विवेकत्वात्कार्यमकार्यं मन्यते व्यत्ययं चेति, उक्तं च—"रागद्वेषाभिभूतत्वात्कार्याकार्यपराङ्मुखः। एष मूढ इति ज्ञेयो, विपरीतविधायकः ॥ १ ॥" तदेवं मौढ्यान्धतमसाच्छादितालोकपथाः सुखार्थिनो दुःखमृच्छन्ति जन्तव इति ज्ञात्वा सर्वज्ञवचनप्रदीपमशेषपदार्थस्वरूपाविर्भावकमाललम्बिरे मुनयः, अदश्च मया न स्वमनीषिकयोच्यते सुधर्म्मस्वामी जम्बूस्वामिनमाह, यदि स्वमनीषिकया नोच्यते कौतस्त्यं तर्हीदमित्यत आह—'मुणिणा' इत्यादि, मनुते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिः–तीर्थकृत्तेन 'एतद्' असकृदुच्चैर्गोत्रभवनादिकं प्रकर्षेणादौ वा ॥ १२३ ॥
सर्वस्वभाषानुगामिन्या वाचा वेदितं–कथितं वक्ष्यमाणं च प्रवेदितं, किं तदित्याह—'अणोहं' इत्यादि, ओघो द्विधा–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८१]

दीप अनुक्रम [८३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

द्रव्यभावभेदात्, द्रव्यौघो नदीपूरादिको भावौघोऽष्टप्रकारं कर्म्म संसारो वा, तेन हि प्राण्यनन्तमपि कालमुह्यते, तम्– ओघं ज्ञानदर्शनचारित्रबोहित्थस्था तरन्तीत्योघन्तरा न ओघन्तरा अनोघन्तराः, तरतेश्छान्दसत्वात् खश्, खित्त्वान्मुमागमः, एते कुतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयो वा ज्ञानादियानविकलाः यद्यपि तेऽप्योघतरणायोद्यतास्तथापि सम्यगुपायाभावात् न ओघतरणसमर्था भवन्तीति, आह च—'नो य ओहं तरित्तए' 'न च' नैवोघं–भावौघं तरितुं समर्थाः, संसारौघतरणप्रत्यला न भवन्तीत्यर्थः, तथा 'अतीरंगमा' इत्यादि, तीरं गच्छन्तीति तीरङ्गमाः पूर्ववत् खश्प्रत्ययादिकं, न तीरङ्गमा अतीरङ्गमाः एत इति प्रत्यक्षभावमापन्नान् कुतीर्थिकादीन् दर्शयति, न च ते तीरगमनायोद्यता अपि तीरं गन्तुमलं सर्वज्ञोपदिष्टसन्मार्गाभावादिति भावः, तथा 'अपारंगमा' इत्यादि, पारः–तटः परकूलं तद्गच्छन्तीति पारङ्गमा न पारङ्गमा अपारङ्गमाः 'एत' इति पूर्वोक्ताः, पारगतोपदेशाभावादपारङ्गता इति भावनीयं, न च ते पारगतोपदेशमृते पारगमनायोद्यता अपि पारं गन्तुमलम्, अथवा गमनं गमः पारस्य पारे वा गमः पारगमः, सूत्रे त्वनुस्वारोऽलाक्षणिको, न पारगमोऽपारगमस्तस्मा अपारगमाय, असमर्थसमासोऽयं, तेनायमर्थः–पारगमनाय ते न भवन्तीत्युक्तं भवति, ततश्चानन्तमपि कालं संसारान्तर्वर्त्तिन एवासते, यद्यपि पारगमनायोद्यमयन्ति तथापि ते सर्वज्ञोपदेशविकलाः स्वरुचिविरचितशास्त्रप्रवृत्तयो नैव संसारपारं गन्तुमलम्, अथ तीरपारयोः को विशेष इति, उच्यते, तीरं मोहनीयक्षयः पारं शेषघातिक्षयः, अथवा तीरं घातिचतुष्टयापगमः पारं भवोपग्राह्यभाव इत्यर्थः, स्यात्–कथमोघतारी कुतीर्थ्यादिको न भवति तीरपारगामी चेत्याह—'आयाणिज्जं' इत्यादि, आदीयन्ते–गृह्यन्ते सर्वभावा अनेनेत्यादानीयं–श्रुतं तदादाय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८१]

दीप अनुक्रम [८३]

तदुक्ते तस्मिन् संयमस्थाने न तिष्ठति, यदि वा—आदानीयम्—आदातव्यं भोगाङ्गं द्विपदचतुष्पदधनधान्यहिरण्यादि तदादाय—गृहीत्वा, अथवा—मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगैरादानीयं—कर्म्मादाय, किंभूतो भवतीत्याह—'तस्मिन्' ज्ञानादिमये मोक्षमार्ग्गे सम्यगुपदेशे वा प्रशस्तगुणस्थाने न तिष्ठति—नात्मानं विधत्ते, न केवलं सर्वज्ञोपदेशस्थाने न तिष्ठति विपर्ययानुष्ठायी च भवतीति दर्शयति—'वितहं' इत्यादि, वितथम्—असद्भूतं दुर्गतिहेतुं तत्तथाभूतमुपदेशं प्राप्याखेदज्ञः—अकुशलः खेदज्ञो वाऽसंयमस्थाने तस्मिंश्च साम्प्रतेक्ष्याचरित उपदिष्टे वा तिष्ठति, तत्रैवासंयमस्थानेऽध्युपपन्नो भवतीति-यावत्, अथवा वितथमिति आदानीयभोगाङ्गव्यतिरिक्तं संयमस्थानं तत्प्राप्य खेदज्ञो—निपुणस्तस्मिन् स्थाने आदानीयस्य हन्तृणि तिष्ठति, सर्वज्ञाज्ञायामात्मानं व्यवस्थापयन्तीत्यर्थः। अयं चोपदेशोऽनवगततत्त्वस्य विनेयस्य यथोपदेशं प्रवर्त्तमानस्य दीयते, यस्त्ववगतहेयोपादेयविशेषः स यथावसरं यथाविधेयं स्वत एव विधत्त इत्याह च—

उद्देसो पासगस्स नत्थि, बाले पुण निहे कामसमणुन्ने असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ (सू० ८१) त्तिबेमि ॥ लोकविजये तृतीयोद्देशकः ॥

उद्दिश्यते इत्युद्देशः—उपदेशः सदसत्कर्त्तव्यादेशः स पश्यतीति पश्यः स एव पश्यकस्तस्य न विद्यते, स्वत एव विदितवेद्यत्वात्तस्य, अथवा पश्यतीति पश्यकः—सर्वज्ञस्तदुपदेशवर्ती वा तस्य उद्दिश्यत इत्युद्देशो—नारकादिव्यपदेशः उच्चावचगोत्रादिव्यपदेशो वा स तस्य न विद्यते, तस्य द्रागेव मोक्षगमनादिति भावः, कः पुनर्यथोपदेशकारी न भव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[८१]

दीप
अनुक्रम
[८३]

तीत्याह—'बाले' इत्यादि, बालो नाम रागादिमोहितः, स पुनः कषायैः कर्म्मभिः परीषहोपसर्गैर्वा निहन्यत इति निहः, निपूर्वाद्धन्तेः कर्म्मणि डः, अथवा स्निह्यत इति स्निहः–स्नेहवान् रागीत्यर्थः, अत एवाह—'कामसमणुन्ने' कामाः–इच्छामदनरूपाः सम्यग् मनोज्ञा यस्य स तथा, अथवा सह मनोज्ञैर्वर्त्तत इति समनोज्ञो, गमकत्वात्सापेक्षस्यापि समासः, कामैः सह मनोज्ञः कामसमनोज्ञो, यदिवा कामान् सम्यगनु–पश्चात् स्नेहानुबन्धाज्जानाति सेवत इति कामसमनुज्ञः, एवंभूतश्च किंभूतो भवतीत्याह—'असमियदुक्खे' अशमितम्–अनुपशमितं विषयाभिष्वङ्गकषायोत्थं दुःखं येन स तथा, यत एवाशमितदुःखोऽत एव दुःखी शारीरमानसाभ्यां दुःखाभ्यां, तत्र शारीरं कण्टकशस्त्रगण्डलूतादिसमुत्थं मानसं प्रियविप्रयोगाप्रियसंप्रयोगेप्सितालाभदारिद्र्यदौर्भाग्यदौर्मनस्यकृतं तद्विरूपमपि दुःखं विद्यते यस्यासौ दुःखी, एवंभूतश्च सन् किमवाप्नोतीत्याह—'दुक्खाणं' इत्यादि, दुःखानां–शारीरमानसानामावर्त्त–पौनःपुन्यभवनमनुपरिवर्त्तते, दुःखावर्त्तावमग्नो बंभ्रम्यत इत्यर्थः, । इतिः परिसमाप्तौ, ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ लोकविजयस्य तृतीयोद्देशक-टीका समाप्ता ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८२]

दीप अनुक्रम [८४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १२५ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ४

तओ से एगया रोगसमुप्पाया समुप्पज्जंति, जेहिं वा सद्धिं संवसइ ते व णं एगया नियया पुव्विं परिवयंति, सो वा ते नियगे पच्छा परिवइज्जा, नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमंपि तेसिं नालं ताणाए वा सरणाए वा, जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं, भोगा मे व अणुसोयन्ति इहमेगेसिं माणवाणं (सू० ८२)

उक्तस्तृतीयोद्देशकः, साम्प्रतं चतुर्थस्य व्याख्या प्रस्तूयते–भोगेष्वनभिषक्तेन भाव्यं, यतो भोगिनामपाया दर्श्यन्ते (इति) प्रागुक्तं, ते चामी–'तओ से एगया' इत्यादि, अनन्तरसूत्रसम्बन्धः 'दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ' त्ति, तानि चामूनि दुःखानि 'तओ से' इत्यादि, परम्परसूत्रसम्बन्धस्तु 'बाले पुण निहे कामसमणुण्णे', ते च कामा दुःखात्मका एव, तत्र चासक्तस्य धातुक्षयभगन्दरादयो रोगाः समुत्पद्यन्ते इत्यतोऽपदिश्यते—'तत' इति कामानुषङ्गात् कर्म्मोपचयस्ततोऽपि पञ्चत्वं तस्मादपि नरकभवो नरकान्निषेककललार्बुदपेशीव्यूहगर्भप्रसवादिर्जातस्य च रोगाः प्रादुःष्यन्ति, 'से' तस्य कामानुषक्तमनसः 'एकदे'त्यसातावेदनीयविपाकोदये 'रोगसमुत्पादा' इति रोगाणां–शिरोऽर्त्तिशूलादीनां समुत्पादाः–प्रादुर्भावाः 'समुत्पद्यन्ते' प्रादुर्भवन्ति, तस्यां च रोगावस्थायां किंभूतो भवत्यसावित्यत आह—'जेहिं' इत्यादि, यैर्वा 'सार्द्धमसौ संवसति, त एवैकदा निजाः पूर्वं परिवदन्ति, स वा तान्निजान् पश्चात्परिवदेत्, नालं 'ते' तव त्राणाय वा शरणाय वा, त्वमपि तेषां नालं त्राणाय वा शरणाय वा, इति ज्ञात्वा दुःखं प्रत्येकं सातं च स्वकृत- ॥ १२५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय-अध्ययने चतुर्थ-उद्देशक: 'भोगासक्ति' आरब्ध:,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८२]

दीप अनुक्रम [८४]

कर्म्मफलभुजः सर्वेऽपि प्राणिन इति मत्वा रोगोत्पत्तौ न दौर्मनस्यं भावनीयं, न भोगाः शोचनीया इति, आह च— 'भोगा मे' इत्यादि, भोगाः–शब्दरूपरसगन्धस्पर्शविषयाभिलाषास्तानेवानुशोचयन्ति–कथमस्यामप्यवस्थायां वयं भोगान् भुङ्क्ष्महे?, एवंभूता वाऽस्माकं दशाऽभूद्येन मनोज्ञा अपि विषया उपनता नोपभोगायेति। ईदृक्षश्चाध्यवसायः केषाञ्चिदेव भवतीत्याह—'इहमेगेसिं' इत्यादि, 'इह' संसारे एकेषामनवगतविषयविपाकानां ब्रह्मदत्तादीनां मानवानामेवंभूतोऽध्यवसायो भवति, न सर्वेषां, सनत्कुमारादिना व्यभिचारात्, तथाहि—ब्रह्मदत्तो मारणान्तिकरोगवेदनाभिभूतः सन्तापातिशयात् स्पृशन्तीं प्रणयिनीमिव विश्वासभूमीं मूर्च्छां बहुमन्यमानः तथा हस्तीकृतो विहस्ततया विषयीकृतो वैषम्येण गोचरीकृतो ग्लान्या दृष्टो दुःखासिकया क्रोडीकृतो कालेन पीडितः पीडाभिर्निरूपितो निपत्या आदित्सितो दैवेन अन्तिकेऽन्त्योच्छ्वासस्य मुखे महाप्रवासस्य द्वारि दीर्घनिद्राया जिह्वाग्रे जीवितेशस्य वर्त्तमानो विरलो वाचि विह्वलो वपुषि प्रचुरः प्रलापे जितो जृम्भिकाभिरित्येवंभूतामवस्थामनुभवन्नपि महामोहोदयात् भोगांश्चिकाङ्क्षिषुः पार्श्वोपविष्टां भार्यामनवरतवेदनावेशविगलदश्रुरक्तनयनां कुरुमति! कुरुमतीत्येवं तां व्याहरन्नधः सप्तमीं नरकपृथ्वीमगात्, तत्रापि तीव्रतरवेदनाभिभूतोप्यऽवगणय्य वेदनां तामेव कुरुमतीं व्याहरतीत्येवंभूतो भोगाभिष्वङ्गो दुस्त्यजो भवति केषाञ्चित्, न पुनरन्येषां महापुरुषाणामुदारसत्त्वानाम् आत्मनोऽन्यच्छरीरमित्येवमवगततत्त्वानां सनत्कुमारादीनामिव यथोक्तरोगवेदनासद्भावे सत्यपि मयैवैतत्कृतं सोढव्यमपि मयैवेत्येवं जातनिश्चयानां कर्म्मक्षपणोद्यतानां न मनसः पीडोत्पद्यते इति, उक्तं च–"उप्तो यः स्वत एव मोहसलिलो जन्मालवालोऽशुभो, रागद्वेषकषायसन्ततिमहान्निर्विघ्नबीजस्त्वया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[८२]

दीप
अनुक्रम
[८४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

श्रीआचा-
राङ्गवृत्तिः
(शी०)
॥ १२६ ॥

लोक.वि.२
उद्देशकः ४

रोगैरङ्कुरितो विपत्कुसुमितः कर्म्मद्रुमः साम्प्रतं, सोढा नो यदि सम्यगेष फलितो दुःखैरधोगामिभिः ॥ १ ॥ पुनरपि सहनीयो दुःखपाकस्त्वयाऽयं, न खलु भवति नाशः कर्म्मणा संचितानाम् । इति सह गणयित्वा यद्यदायाति सम्यग्, सदसदिति विवेकोऽन्यत्र भूयः कुतस्त्यः ? ॥ २ ॥" अपि च-भोगानां प्रधानं कारणमर्थोऽतस्तत्स्वरूपमेव निर्दिदिक्षुराह—

तिविहेण जाऽवि से तत्थ मत्ता भवइ अप्पा वा बहुगा वा, से तत्थ गड्ढिए चिट्ठइ, भोयणाए, तओ से एगया विपरिसिट्ठं संभूयं महोवगरणं भवइ, तंपि से एगया दायाया विभयंति, अदत्तहारो वा से हरति, रायाणो वा से विलुंपंति, नस्सइ वा से विणस्सइ वा से, अगारडाहेण वा से डज्झइ इय, से परस्स अट्ठाए कूराणि कम्माणि बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ (सू० ८३)

त्रिविधेन याऽपि तस्य तत्रार्थमात्रा भवति अल्पा वा बह्वी वा, स तस्यामर्थमात्रायां गृद्धस्तिष्ठति, सा च भोजनाय किल भविष्यति, ततस्तस्यैकदा विपरिशिष्टं सम्भूतं महोपकरणं भवति, तदपि 'से' तस्यैकदा दायादा विभजन्ते, ॥ १२६ ॥ अदत्तहारो वा तस्य हरति, राजानो वा विलुम्पन्ति, नश्यति वा विनश्यति वा, अगारदाहेन वा दह्यते इति, स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [८३]

दीप अनुक्रम [८५]

परस्मै अर्थाय क्रूराणि कर्म्माणि बालः प्रकुर्वाणस्तेन दुःखेन मूढो विपर्यासमुपैति, एतच्च प्रागेव व्याख्यातमिति नेह प्रतायते ॥ तदेवं दुःखविपाकान् भोगान् प्रतिपाद्य यत् कर्त्तव्यं तदुपदिशतीत्याह—

आसं च छन्दं च विगिंच धीरे !, तुमं चेव तं सल्लमाहट्ठु, जेण सिया तेण नो सिया, इणमेव नावबुज्झंति जे जणा मोहपाउडा, थीभि लोए पव्वहिए, ते भो! वयंति एयाइं आययणाइं, से दुक्खाए मोहाए माराए नरगाए नरगतिरिक्खाए, सययं मूढे धम्मं नाभिजाणइ, उआहु वीरे, अप्पमाओ महामोहे, अलं कुसलस्स पमाएणं, संतिमरणं संपेहाए भेउरधम्मं संपेहाए, नालं पास अलं ते एएहिं (सू० ८४)

'आशां' भोगाकाङ्क्षां, चः समुच्चये, छन्दनं छन्दः—परानुवृत्त्या भोगाभिप्रायस्तं च, चशब्दः पूर्वापेक्षया समुच्चयार्थः, तावाशाछन्दौ 'वेविक्ष्व' पृथक्कुरु त्यज 'धीर !' धीः—बुद्धिस्तया राजत इति, भोगाशाछन्दापरित्यागे च दुःखमेव केवलं न तत्प्राप्तिरिति, आह च—'तुमं चेव' इत्यादि, विनेय उपदेशगोचरापन्न आत्मा वा उपदिश्यते—त्वमेव तद्भोगाशादिकं शल्यमाहृत्य—स्वीकृत्य परमशुभमादत्से, न तु पुनरुपभोगं, यतो भोगोपभोगो यैरेवार्थाद्युपायैर्भवति तैरेव न
२ भवतीत्याह—'जेण सिआ तेण नो सिया' येनैवार्थोपार्जनादिना भोगोपभोगः स्यात् तेनैव विचित्रत्वात् कर्म्मपरि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८४]

दीप अनुक्रम [८६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १२७ ॥

णतेर्न स्याद्, अथवा येन केनचिद्धेतुना कर्म्मबन्धः स्यात्तन्न कुर्यात्, तत्र न वर्त्तेतेत्यर्थः, यदिवा येनैव राज्योपभोगादिना कर्म्मबन्धो येन वा निर्ग्रन्थत्वादिना मोक्षः 'स्याद्' भवेत्तेनैव तथाभूतपरिणामवशान्न स्यादिति । एतच्चानुभवावधारितमपि मोहाभिभूता नावगच्छन्तीत्याह—'इणमेव' इत्यादि, इदमेव हेतुवैचित्र्यं 'न बुध्यन्ते' न संजानते, के?—ये जना मौनीन्द्रोपदेशविकला मोहेन—अज्ञानेन मिथ्यात्वोदयेन वा प्रावृताः—छादितास्तत्त्वविपर्यस्तमतयो मोहनीयोदयाद्भवन्ति । मोहनीयस्य च तद्भेदकामानां च स्त्रियो गरीयः कारणमिति दर्शयति—'थीभि' इत्यादि, स्त्रीभिः—अङ्गनाभिर्भ्रूत्क्षेपादिविभ्रमैरसौ लोकः आशाच्छन्दाभिभूतात्मा क्रूरकर्म्मविधायी नरकविपाकफलं शल्यमाहृत्य तत्फलमबुध्यमानो मोहाच्छादितान्तरात्मा प्रकर्षेण व्यथितः पराजितो वशीकृत इतियावत्, न केवलं स्वतो विनष्टाः, अपरानपि असकृदुपदेशदानेन विनाशयन्तीत्याह—'ते भो!' इत्यादि, 'ते' स्त्रीभिः प्रव्यथिता भो! इत्यामन्त्रणे एतद्वदन्ति—यथैतानि—स्त्र्यादीनि 'आयतनानि' उपभोगास्पदभूतानि वर्त्तन्ते, एतैश्च विना शरीरस्थितिरेव न भवतीति । एतच्च प्रव्यथनमुपदेशदानं वा तेषामपायाय स्यादित्याह—'से' इत्यादि, तेषां 'से' इत्येतत् प्रव्यथनमायतनभणनं वा 'दुःखाय' भवति—शारीरमानसासातवेदनीयोदयाय जायते, किं च—'मोहाए' मोहनीयकर्म्मबन्धनाय अज्ञानाय वेति, तथा 'माराए' मरणाय, ततोऽपि 'नरगाए' नरकाय नरकगमनार्थं, पुनरपि 'नरगतिरिक्खाए' ततोऽपि नरकादुद्धृत्त्य तिरश्चयेतत्प्रभवति, तिर्यग्योन्यर्थं तत् स्त्रीप्रव्यथनं भोगायतनवदनं वा सर्वत्र सम्बन्धनीयं । स एवमङ्गनापाङ्गविलोकनाक्षिप्तस्तासु तासु योनिषु पर्यटन्नात्महितं न जानातीत्याह—'सययं' इत्यादि, सततम्—अनवरतं दुःखाभिभूतो मूढो 'धर्म्मं'

लोक.वि.२ उद्देशकः ४

॥ १२७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्षान्त्यादिलक्षणं दुर्गतिप्रसृतिनिषेधकं 'न जानाति' न वेत्ति। एतच्च तीर्थकृदाहेति दर्शयति—'उदाहु' इत्यादि, उत्– प्राबल्येनाह उदाह–उक्तवान्, कोऽसौ?–वीरः–अपगतसंसारभयस्तीर्थकृदित्यर्थः, किमुक्तवान्?, तदेव पूर्वोक्तं वाचा दर्शयति—'अप्रमादः' कर्त्तव्यः, क?–'महामोहे' अङ्गनाभिष्वङ्ग एव, महामोहकारणत्वान्महामोहः, तत्र प्रमादवता न भाव्यम्। आह च—'अलम्' इत्यादि, 'अलं' पर्याप्तं, कस्य?—'कुशलस्य' निपुणस्य सूक्ष्मेक्षिणः, केनालं?–मद्यविषय-कषायनिद्राविकथारूपेण पञ्चविधेनापि प्रमादेन, यतः प्रमादो दुःखाद्यभिगमनायोक्त इति। स्यात्–किमालम्ब्य प्रमादेनालमिति?, उच्यते—'सन्ति' इत्यादि, शमनं शान्तिः–अशेषकर्म्मापगमोऽतो मोक्ष एव शान्तिरिति, म्रियन्ते प्राणिनः पौनःपुन्येन यत्र चतुर्गतिके संसारे स मरणः–संसारः शान्तिश्च मरणं च शान्तिमरणं, समाहारद्वन्द्वस्तत् 'संप्रेक्ष्य' पर्यालोच्य, प्रमादवतः संसारानुपरमस्तत्परित्यागाच्च मोक्ष इत्येतद्विचार्येति हृदयं, स वा कुशलः प्रेक्ष्य विषयकषायप्रमादं न विदध्याद्, अथवा शान्त्या–उपशमेन मरणं–मरणावधिं यावत् तिष्ठतो यत्फलं भवति तत्पर्यालोच्य प्रमादं न कुर्यादिति। किं च–'भेउर' इत्यादि, प्रमादो हि विषयकषायाभिष्वङ्गरूपः शरीराधिष्ठानः, तच्च शरीरं भिदुरधर्म्मं, स्वत एव भिद्यत इति भिदुरं स एव धर्म्मः–स्वभावो यस्य तद्भिदुरधर्म्मं एतत् 'समीक्ष्य' पर्यालोच्य प्रमादं न कुर्यादिति सम्बन्धः, एते च भोगा भुज्यमाना अपि न तृप्तये भवन्तीत्याह—'नालं'इत्यादि, 'नालं' न समर्था अभिलाषोच्छित्तये यथेष्टावाप्तावपि भोगाः एतत् 'पश्य' जानीहि, अतोऽलं तव कुशल! 'एभिः' प्रमादमयैर्दुःखकारणस्वभावैर्विषयैरुपभोगैरिति, न चैते बहुशोऽप्युपभुज्यमाना उपशमं विदधतीति, उक्तं च—"यल्लोके व्रीहियवं, हिरण्यं पशवः स्त्रियः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८४]

दीप अनुक्रम [८६]

नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं कुरु ॥ १ ॥ उपभोगोपायपरो वाञ्छति यः शमयितुं विषयतृष्णाम् । धावत्याक्रमितुमसौ, पुरोऽपराह्णे निजच्छायाम् ॥ २ ॥" तदेवं भोगलिप्सूनां तत्प्राप्तावप्राप्तौ च दुःखमेवेति दर्शयति—

एयं पस्स मुणी! महब्भयं, नाइवाइज्ज कंचणं, एस वीरे पसंसिए, जे न निव्विज्जइ आयाणाए, न मे देइ न कुप्पिज्जा थोवं लद्धुं न खिंसए, पडिसेहिओ परिणमिज्जा, एयं मोणं समणुवासिज्जासि (सू० ८५) त्तिबेमि ॥

'एतत्' प्रत्यक्षमेव भोगाशामहाज्वरगृहीतानां कामदशावस्थात्मकं महद्भयं भयहेतुत्वात् दुःखमेव महाभयं, तच्च मरणकारणमिति महदित्युच्यते, एतत् मुने! 'पश्य' सम्यगैहिकामुष्मिकापायापादकत्वेन जानीहीत्युक्तं भवति । यद्येवं तत्किं कुर्यादित्याह—'नाइवाएज्ज' इत्यादि, यतो भोगाभिलषणं महद्भयमतस्तदर्थं 'नातिपातयेत्' न व्यथेत 'कञ्चन' कमपि जीवमिति, अस्य च शेषव्रतोपलक्षणार्थत्वान्न प्रतारयेत् कञ्चनेत्याद्यप्यायोज्यं । भोगनिरीहः प्राणातिपातादिव्रतारूढश्च कं गुणमवाप्नोतीत्याह—'एस' इत्यादि, 'एष' इति भोगाशाच्छन्दविवेचकोऽप्रमादी पञ्चमहाव्रतभारारोहणोन्नामितस्कन्धो वीरः कर्म्मविदारणात् 'प्रशंसितः' स्तुतो देवराजादिभिः, क एष वीरो नाम? योऽभिष्टूयत इत्यत आह—'जे' इत्यादि, यो 'न निर्विद्यते' न खिद्यते न जुगुप्सते, कस्मै?—'आदानाय' आदीयते गृह्यतेऽवाप्यते आत्मस्वतत्त्वमशेषावारककर्म्मक्षयाविर्भूतसमस्तवस्तुग्राहिज्ञाना(ना)बाधसुखरूपं येन तदादानं—संयमानुष्ठानं तस्मै न जुगुप्सते, तद्धा कुर्वन् ॥ १२८ ॥ सिकताकवलचर्वणदेशीयं क्वचिदलाभादौ न खेदमुपयातीति, आह—'न मे' इत्यादि, ममायं गृहस्थः सम्भृतसंभारोऽ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[८५]

दीप
अनुक्रम
[८७]

प्युपस्थितेऽपि दानावसरे न ददातीतिकृत्वा 'न कुप्येत्' न क्रोधवशगो भूयाद्, भावनीयं च-ममैवैषा कर्म्मपरिणतिरित्यलाभोदयोऽयम्, अनेन चालाभेन कर्म्मक्षयायोद्यतस्य मे तत्क्षपणसमर्थं तपो भावीति न किञ्चित्क्षूयते, अथापि कथञ्चित् स्तोकं प्रान्तं वा लभेत तदपि न निन्देदित्याह—'थोवं' इत्यादि, 'स्तोकम्' अपर्याप्तं 'लद्धुं' लब्ध्वा न निन्देद्दातारं दत्तं वा, तथाहि-कतिचित्सिक्थानयने ब्रवीति-सिद्ध ओदनो भिक्षामानय लवणाहारो वा अस्माकं नास्तीत्यन्नं ददस्वेत्येवं अत्युद्धृत्तच्छात्रवन्न विदध्यात्। किं च—'पडिसेहिओ' इत्यादि, 'प्रतिषिद्धः' अदित्सितस्तस्मादेव प्रदेशात् 'परिणमेत्' निवर्त्तेत, क्षणमपि न तिष्ठेन्न दौर्मनस्यं विदध्यान्न रुण्टन्नपगच्छेत् न तां सीमन्तिनीमपवदेद्-धिक्ते गृहवासमिति, उक्तं च—"दिट्ठाऽसि कसेरुमई! अणुभूयासि कसेरुमइ!। पीयं चिय ते पाणिययं वरि तुह नाम न दंसणं॥१॥" इत्यादि। पठ्यते च-'पडिलाभिओ परिणमेज्जा" प्रतिलाभितः-प्राप्तभिक्षादिलाभः सन् परिणमेत्, नोच्चावचालापैः तत्रैव संस्तवं विदध्याद्, वैतालिकवद्दातारं नोत्प्रासयेदिति। उपसंहरन्नाह—'एयं' इत्यादि, 'एतत्' प्रव्रज्यानिर्वेदरूपं अदानाकोपनं स्तोकाजुगुप्सनं प्रतिषिद्धनिवर्त्तनं मुनेरिदं मौनं-मुनिभिर्मुमुक्षुभिराचरितं त्वमप्यवाप्तानेकभवकोटिदुरापसंयमः सन् 'समनुवासयेः' सम्यग् विधत्स्वानुपालयेति विनेयोपदेश आत्मानुशासनं वा। इतिः परिसमाप्तौ, ब्रवीमि पूर्ववत्॥ लोकविजयाध्ययनचतुर्थोद्देशकटीका समाप्ता॥

१ दृष्टाऽसि उदारमते! अनुभूताऽसि उदारमते!। पीतमेव ते पानीयं वरं तव नाम न दर्शम्॥१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [८५]

दीप अनुक्रम [८७]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १२९ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ५

उक्तश्चतुर्थोद्देशकः, साम्प्रतं पञ्चमस्य व्याख्या प्रतन्यते, तस्य चायमभिसम्बन्धः, इह भोगान् परित्यज्य लोकनिश्रया संयमदेहप्रतिपालनार्थं विहर्त्तव्यमित्युक्तं तदत्र प्रतिपाद्यते, इह हि संसारोद्वेगवता परित्यक्तभोगाभिलाषेण मुमुक्षुणोत्क्षिप्तपञ्चमहाव्रतभारेण निरवद्यानुष्ठानविधायिना दीर्घसंयमयात्रार्थं देहपरिपालनाय लोकनिश्रया विहर्त्तव्यं, निराश्रयस्य हि कुतो देहसाधनानि?, तदभावे धर्मश्चेति, उक्तं हि—“धर्मं चरतः साधोर्लोके निश्रापदानि पञ्चापि। राजा गृहपतिरपरः षट्काया गणशरीरे च ॥ १ ॥” साधनानि च वस्त्रपात्रान्नासनशयनादीनि, तत्रापि प्रायः प्रतिदिनमुपयोगित्वादाहारो गरीयानिति, स च लोकादन्वेष्टव्यो, लोकश्च नानाविधैरुपायैरात्मीयपुत्रकलत्राद्यर्थं आरम्भे प्रवृत्तः, तत्र साधुना संयमदेहनिमित्तं वृत्तिरन्वेषणीयेति दर्शयति—

जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं लोगस्स कम्मसमारंभा कज्जंति, तंजहा—अप्पणो से पुत्ताणं धूयाणं सुण्हाणं नाईणं धाईणं राईणं दासाणं दासीणं कम्मकराणं कम्मकरीणं आएसाए पुढोपहेणाए सामासाए पायरासाए, संनिहिसंनिचओ कज्जइ, इहमेगेसिं माणवाणं भोयणाए (सू० ८६)

‘यैः’ अविदितवेद्यैः ‘इद’मिति सुखदुःखप्राप्तिपरिहारत्वमुद्दिश्य ‘विरूपरूपैः’ नानाप्रकारस्वरूपैः ‘शस्त्रैः’ प्राण्युपघातकारिभिर्द्रव्यभावभेदभिन्नैः ‘लोकाय’ शरीरपुत्रदुहितृस्नुषाज्ञात्याद्यर्थं कर्म्मणां—सुखदुःखप्राप्तिपरिहारक्रियाणां ॥ १२९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय-अध्ययने पंचम-उद्देशक: ‘लोकनिश्रा’ आरब्ध:,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८६]

दीप अनुक्रम [८८]

कायिकाधिकरणिकाप्रादोषिकापारितापनिकाप्राणातिपातरूपाणां कृषिवाणिज्यादिरूपाणां वा, समारम्भा इति मध्यग्रहणाद्बहुवचननिर्देशाच्च संरम्भारम्भयोरप्युपादानं, तेनायमर्थः–शरीरकलत्राद्यर्थं संरम्भसमारम्भारम्भाः 'क्रियन्ते' अनुष्ठीयन्ते, तत्र संरम्भ इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहाराय प्राणातिपातादिसङ्कल्पावेशः, तत्साधनसन्निपातकायवाग्व्यापारजनितपरितापनादिलक्षणः समारम्भः, दण्डत्रयव्यापारापादितचिकीर्षितप्राणातिपातादिक्रियानिर्वृत्तिरारम्भः, कर्म्मणो वा–अष्टप्रकारस्य समारम्भाः–उपार्जनोपायाः क्रियन्त इति, लोकस्येति चतुर्थ्यर्थे षष्ठी, साऽपि तादर्थ्ये, कः पुनरसौ लोको? यदर्थं संरम्भसमारम्भारम्भाः क्रियन्त इत्याह—'तंजहा अप्पणो से' इत्यादि, यदिवा लोकस्य तृतीयार्थे षष्ठी, यदिति हेतौ, यस्माल्लोकेन नानाविधैः शस्त्रैः कर्म्मसमारम्भाः क्रियन्त इत्यतस्तस्मिन् लोके साधुर्वृत्तिमन्वेषयेत्, यदर्थं च लोकेन कर्म्मसमारम्भाः क्रियन्ते तद्यथेत्यादिना दर्शयति—'तंजहा अप्पणो से' इत्यादि, 'तद्यथे'त्युपप्रदर्शनार्थो, नोक्तमात्रमेवान्यदप्येवंजातीयकं मित्रादिकं द्रष्टव्यं, 'से'तस्यारम्भारिप्सोर्य आत्मा–शरीरं तस्मै अर्थं तदर्थं कर्म्मसमारम्भाः–पाकादयः क्रियन्ते, ननु च लोकार्थमारम्भाः क्रियन्त इति प्रागभिहितं, न च शरीरं लोको भवति, नैतदस्ति, यतः परमार्थदृशां ज्ञानदर्शनचारित्रात्मकमात्मतत्त्वं विहायान्यत्सर्वं शरीराद्यपि पराक्यमेव, तथाहि–बाह्यस्य पौद्गलिकस्याचेतनस्य कर्म्मणो विपाकभूतानि पञ्चापि शरीराणीत्यतः शरीरात्माऽपि लोकशब्दाभिधेय इति, तदेवं कश्चिच्छरीरनिमित्तं कर्म्मारभते, परस्तु पुत्रेभ्यो दुहितृभ्यः स्नुषाः–वध्वस्ताभ्यो ज्ञातयः–पूर्वापरसम्बद्धाः स्वजनाः तेभ्यो धात्रीभ्यो राजभ्यो दासेभ्यो दासीभ्यः कर्म्मकरेभ्यः कर्म्मकरीभ्यः आदिश्यते परिजनो यस्मिन्नागते तदातिथेयायेत्या-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८६] दीप अनुक्रम [८८]

देशः–प्राघूर्णकस्तदर्थं कर्म्मसमारम्भाः क्रियन्त इति सम्बन्धः, तथा 'पुढो पहेणाए' इत्यादि, पृथक् पृथक् पुत्रादिभ्यः प्रहेणकार्थं तथा 'सामासाए'त्ति श्यामा–रजनी तस्यामशनं श्यामाशः तदर्थं, तथा 'पायरासाए'त्ति प्रातरशनं प्रातराशस्तस्मै, कर्म्मसमारम्भाः क्रियन्त इति सामान्येनोक्तावपि विशेषार्थमाह—'सन्निहि' इत्यादि, सम्यग्निधीयत इति सन्निधिः–विनाशिद्रव्याणां दध्योदनादीनां संस्थापनं, तथा सम्यग् निश्चयेन चीयत इति सन्निचयः–अविनाशिद्रव्याणां अभयासितामृद्वीकादीनां सङ्ग्रहः, सन्निधिश्च सन्निचयश्च सन्निधिसन्निचयं, प्राकृतशैल्या पुलिङ्गता, अथवा सन्निधेः सन्निचयः सन्निधिसन्निचयः, स च परिग्रहसंज्ञोदयादाजीविकाभ्यासाद्वा धनधान्यहिरण्यादीनां क्रियत इति । स च किमर्थमित्याह—'इह' इत्यादि, 'इहे'ति मनुष्यलोके 'एकेषा'मिहलोके कृतपरमार्थबुद्धीनां 'मानवानां' मनुष्याणां 'भोजनाय' उपभोगार्थमिति । तदेवं विरूपरूपैः शस्त्रैरात्मपुत्राद्यर्थं कर्म्मसमारम्भप्रवृत्ते लोके पृथक्प्रहेणकाय श्मामाशाय प्रातराशाय केषाञ्चिन्मानवानां भोजनार्थं सन्निधिसन्निचयकरणोद्यते सति साधुना किं कर्त्तव्यमित्याह—

समुट्ठिए अणगारे आरिए आरियपन्ने आरियदंसी अयंसंधित्ति अदक्खु, से नाईए नाइयावए न समणुजाणइ, सव्वामगंधं परिन्नाय निरामगंधो परिव्वए (सू० ८७)

सम्यक् सततं सङ्गतं वा संयमानुष्ठानेनोत्थितः समुत्थितो, नानाविधशस्त्रकर्म्मसमारम्भोपरत इत्यर्थः, न विद्यतेऽगारं–गृहमस्येत्यनगारः, पुत्रदुहितृस्नुषाज्ञातिधात्र्यादिरहित इत्यर्थः, सोऽनगारः आराद्यातः सर्वहेयधर्म्मेभ्यः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८७]

दीप अनुक्रम [८९]

इत्यार्यः–चारित्रार्हः, आर्या प्रज्ञा यस्यासावार्यप्रज्ञः, श्रुतविशेषितशेमुषीक इत्यर्थः, आर्यं–प्रगुणं न्यायोपपन्नं पश्यति तच्छीलश्चेत्यार्यदर्शी पृथक्प्रहेणकश्यामाशनादिसङ्कल्परहित इत्यर्थः, 'अयंसंधीति' सन्धानं सन्धीयते वाऽसाविति सन्धिरयं सन्धिर्यस्य साधोरसावयंसन्धिः, छान्दसत्वाद्विभक्तेरलुगित्ययंसन्धिः–यथाकालमनुष्ठानविधायी यो यस्य वर्त्तमानः कालः कर्त्तव्यतयोपस्थितस्तत्करणतया तमेव सन्धत्त इति, एतदुक्तं भवति–सर्वाः क्रियाः प्रत्युपेक्षणोपयोगस्वाध्यायभिक्षाचर्याप्रतिक्रमणादिकाः असपत्ना अन्योऽन्याबाधया आत्मीयकर्त्तव्यकाले करोतीत्यर्थः, इतिः हेतौ, यस्माद्यथाकालानुष्ठानविधायी तस्मादसावेव परमार्थं पश्यतीत्याह—'अदक्खु'त्ति, तिङ्व्यत्ययेन एकवचनावसरे बहुवचनमकारि, ततश्चायमर्थः–यो ह्यार्य आर्यप्रज्ञ आर्यदर्शी कालज्ञश्च स एव परमार्थमद्राक्षीन्नापर इति, पाठान्तरं वा 'अयं संधिमदक्खु' 'अयम्' अनन्तरविशेषणविशिष्टः साधुः 'सन्धिं' कर्त्तव्यकालम् 'अद्राक्षीद्' दृष्टवान्, एतदुक्तं भवति–यः परस्पराबाधया हिताहितप्राप्तिपरिहाररूपतया विधेयावसरं वेत्ति विधत्ते च स परमार्थं ज्ञातवानिति, अथवा भावसन्धिः–ज्ञानदर्शनचारित्राणामभिवृद्धिः स च शरीरमृते न भवति, तदपि नोपष्टम्भककारणमन्तरेण, तस्य च सावद्यस्य परिहारः कर्त्तव्य इत्यत आह—'से णाईए' इत्यादि, 'स' भिक्षुस्तद्वाऽकल्प्यं 'नाददीत' न गृह्णीयान्नाप्यपरमादापयेत्–ग्राहयेत्, नाप्यपरमनेषणीयमाददानं समनुजानीयादपि, अथवा सइङ्गालं सधूमं वा नाद्यात्–न भक्षयेन्नापरमादयेददन्तं वा न समनुजानीयादिति, आह—'सव्वामगंधं' इत्यादि, आमं च गन्धश्च आमगन्धं समाहारद्वन्द्वः, सर्वं च तदामगन्धं च सर्वामगन्धं, सर्वशब्दः प्रकारकार्त्स्न्येऽत्र गृह्यते न द्रव्यकार्त्स्न्ये, आमम्–अपरिशुद्धं, गन्धग्रह-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८७]

दीप अनुक्रम [८९]

णेन तु पूतिर्गृह्यते, ननु च पूतिद्रव्यस्याप्यशुद्धत्वात् आमशब्देनैवोपादानात्किमर्थं भेदेनोपादानमिति ?, सत्यम्, अशुद्धसामान्याद्गृह्यते, किं तु पूतिग्रहणेनेहाधाकर्म्माद्यविशुद्धकोटिरुपात्ता, तस्याश्च गुरुतरत्वात् प्राधान्यख्यापनार्थं पुनरुपादानं, ततश्चायमर्थः—गन्धग्रहणेनाधाकर्म्म १ औद्देशिकत्रिकं २ पूतिकर्म्म ३ मिश्रजातं ४ बादरप्राभृतिका ५ अध्यवपूरक ६ श्चैते षडुद्गमदोषा अविशुद्धकोट्यन्तर्गता गृहीताः, शेषास्तु विशुद्धकोट्यन्तर्भूता आमग्रहणेनोपात्ता द्रष्टव्या इति, सर्वशब्दस्य च प्रकारकार्त्स्न्याभिधायकत्वाद् येन केनचित् प्रकारेण आमम्—अपरिशुद्धं पूति वा भवति तत्सर्वं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया 'निरामगन्धः' निर्गतावामगन्धौ यस्मात्स तथा 'परिव्रजेत्' मोक्षमार्गे ज्ञानदर्शनचारित्राख्ये परिः—समन्ताद्गच्छेत् संयमानुष्ठानं सम्यगनुपालयेदितियावत्। आमग्रहणेन प्रतिषिद्धेऽपि क्रीतकृते तथाप्यल्पसत्त्वानां विशुद्धकोट्यालम्बनतया मा भूत्तत्र प्रवृत्तिरतस्तदेव नामग्राहं प्रतिषिषेधिषुराह—

अदिस्समाणे कयविक्कयेसु, से ण किणे न किणावए किणंतं न समणुजाणइ, से भिक्खू कालन्ने बालन्ने मायन्ने खेयन्ने खणयन्ने विणयन्ने ससमयपरसमयन्ने भावन्ने परिग्गहं अममायमाणे कालाणुट्ठाई अपडिण्णे (सू० ८८)

क्रयश्च विक्रयश्च क्रयविक्रयौ तयोरदृश्यमानः, कीदृक्षश्च तयोरदृश्यमानो भवति ?, यतस्तयोर्निमित्तभूतद्रव्याभावादकिञ्चनोऽथवा क्रयविक्रययोरदिश्यमानः—अनपदिश्यमानः, कश्च तयोरनपदिश्यमानो भवति ?, यः क्रीतकृतापरि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[८८]

दीप
अनुक्रम
[९०]

भोगी भवतीति, आह च—'से ण किणे' इत्यादि, 'स'मुमुक्षुरकिञ्चनो धर्म्मोपकरणमपि न क्रीणीयात् स्वतो नाप्यपरेण क्रापयेत् क्रीणन्तमपि न समनुजानीयाद्, अथवा निरामगन्धः परिव्रजेदित्यत्रामग्रहणेन हननकोटित्रिकं गन्धग्रहणेन पचनकोटित्रिकं क्रयणकोटित्रिकं तु पुनः स्वरूपेणैवोपात्तम्, अतो नवकोटिपरिशुद्धमाहारं विगताङ्गारधूमं भुञ्जीत, एतद्गुणविशिष्टश्च किंभूतो भवतीत्याह—'से भिक्खू कालन्ने' कालः–कर्त्तव्यावसरस्तं जानातीति कालज्ञः–विदितवेद्यः, तथा 'बालण्णे' बलज्ञः बलं जानातीति बलज्ञः, छान्दसत्वाद्दीर्घत्वं, आत्मबलं सामर्थ्यं जानातीति यथाशक्त्यनुष्ठानविधायी, अनिगूहितबलवीर्य इत्यर्थः, तथा 'मायन्ने'यावद्द्रव्योपयोगिता मात्रा तां जानातीति तज्ज्ञः, तथा 'खेयन्ने' खेदः–अभ्यासस्तेन जानातीति खेदज्ञः अथवा खेदः–श्रमः संसारपर्यटनजनितस्तं जानातीति, उक्तं च—"जरामरणदौर्गत्यव्याधयस्तावदासताम् । मन्ये जन्मैव धीरस्य, भूयो भूयस्त्रपाकरम् ॥ १ ॥" इत्यादि, अथवा 'क्षेत्रज्ञः' संसक्तविरुद्धद्रव्यपरिहार्यकुलादिक्षेत्रस्वरूपपरिच्छेदकः, तथा 'खणयन्नो' क्षण एव क्षणकः–अवसरो भिक्षार्थमुपसर्प्पणादिकस्तं जानातीति, तथा 'विणयन्ने' विनयो–ज्ञानदर्शनचारित्रौपचारिकरूपस्तं जानातीति, तथा 'ससमयपरसमयण्णे' स्वसमयपरसमयौ जानातीति, स्वसमयज्ञो गोचरप्रदेशादौ पृष्टः सन् सुखेनैव भिक्षादोषानाचष्टे, तद्यथा–षोडशोद्गमदोषाः, ते चामी–आधाकर्म्म १ औद्देशिकं २ पूतिकर्म्म ३ मिश्रजातं ४ स्थापना ५ प्राभृतिका ६ प्रकाशकरणं ७ क्रीतं ८ उद्यतकं ९ परिवर्त्तितं १० अभ्याहृतं ११ उद्भिन्नं १२ मालापहृतं १३ आच्छेद्यं १४ अनिसृष्टं १५ अध्यवपूरकश्चेति १६ । षोडशोत्पादनदोषाः, ते चामी–धात्रीपिण्डः १ दूतीपिण्डः २ निमित्तपिण्डः ३ आजीवपिण्डः ४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८८]

दीप अनुक्रम [९०]

वनीपकपिण्डः ५ चिकित्सापिण्डः ६ क्रोधपिण्डः ७ मानपिण्डः ८ मायापिण्डः ९ लोभपिण्डः १० पूर्वसंस्तवपिण्डः ११ पश्चात्संस्तवपिण्डः १२ विद्यापिण्डः १३ मन्त्रपिण्डः १४ चूर्णयोगपिण्डः १५ मूलकर्म्मपिण्डश्चेति १६ । तथा दशैषणादोषाः, ते चामी–शङ्कित १ म्रक्षित २ निक्षिप्त ३ पिहित ४ संहृत ५ दायको ६ न्मिश्रा ७ ऽपरिणत ८ लिप्तो ९ ज्झित-१० दोषाः । एषां चोद्गमदोषा दातृकृता एव भवन्ति, उत्पादनादोषास्तु साधुजनिताः, एषणादोषाश्चोभयोत्पादिता इति । तथा परसमयज्ञो ग्रीष्ममध्याह्नतीव्रतरतरणिकरनिकरावलीढगलत्स्वेदबिन्दुकः क्लिन्नवपुष्कः साधुः केनचिद् धिग्जातिदेश्येनाभिहितः–किमिति भवतां सर्वजनाचीर्णं स्नानं न सम्मतमिति ?, स आह–प्रायः सर्वेषामेव यतीनां कामाङ्गत्वाज्जलस्नानं प्रतिषिद्धं, तथा चार्षम्—"स्नानं मददर्प्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् । तस्मात्कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥ १ ॥" इत्यादि, तदेवमुभयज्ञस्तद्विषये प्रश्ने उत्तरदानकुशलो भवति, तथा 'भावन्ने' भावः–चित्ताभिप्रायो दातुः श्रोतुर्वा तं जानातीति भावज्ञः, किं च—'परिग्गहं अममायमाणे' परिगृह्यत इति परिग्रहः–संयमातिरिक्तमुपकरणादिः तमममीकुर्वन्–अस्वीकुर्वन् मनसाऽप्यनाददान इतियावत्, स एवंविधो भिक्षुः कालज्ञो बलज्ञो मात्रज्ञः क्षेत्रज्ञः खेदज्ञो क्षणज्ञः विनयज्ञः समयज्ञो भावज्ञः परिग्रहमममीकुर्वाणश्च किंभूतो भवतीत्याह—'कालाणुट्ठाई' यद्यस्मिन् काले कर्त्तव्यं तत्तस्मिन्नेवानुष्ठातुं शीलमस्येति कालानुष्ठायी–कालानतिपातकर्त्तव्योद्यतो, ननु चास्यार्थस्य 'से भिक्खू कालन्ने' इत्यनेनैव गतार्थत्वात् किमर्थं पुनरभिधीयते इति ?, नैष दोषः, तत्र हि ज्ञपरिज्ञैव केवलाऽभिहिता, कर्त्तव्यकालं जानाति, इह पुनरासेवनापरिज्ञा कर्त्तव्यकाले कार्यं विधत्त इति । किं च–'अपडिण्णे' नास्य प्रतिज्ञा विद्यते इत्यप्रतिज्ञः,

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[८८]

दीप
अनुक्रम
[९०]

प्रतिज्ञा च कषायोदयादाविरस्ति, तद्यथा-क्रोधोदयात् स्कन्दाचार्येण स्वशिष्ययन्त्रपीलनव्यतिकरमालोक्य सबलवाहन-राजधानीसमन्वितपुरोहितोपरि विनाशप्रतिज्ञाऽकारि, तथा मानोदयात् बाहुबलिना प्रतिज्ञा व्यधायि-कथमहं शिशून् स्वभ्रातॄनुत्पन्ननिरावरणज्ञानांश्छद्मस्थः सन् द्रक्ष्यामीति ?, तथा मायोदयात् मल्लिस्वामिजीवेन यथाऽपरयतिविप्रलम्भनं भवति तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा जगृहे, तथा लोभोदयाच्चाविदितपरमार्थाः साम्प्रतेक्षिणो यत्याभासा मासक्षपणादिका अपि प्रतिज्ञाः कुर्वते, अथवा अप्रतिज्ञः-अनिदानो वसुदेववत् संयमानुष्ठानं कुर्वन् निदानं न करोतीति, अथवा गोचरादौ प्रविष्टः सन्नाहारादिकं ममैवैतद्भविष्यतीत्येवं प्रतिज्ञां न करोतीत्यप्रतिज्ञो, यदिवा स्याद्वादप्रधानत्वान्मौनीन्द्रागमस्यैकपक्षावधारणं प्रतिज्ञा तद्रहितोऽप्रतिज्ञः, तथाहि-मैथुनविषयं विहायान्यत्र न क्वचिन्नियमवती प्रतिज्ञा विधेया, यत उक्तम्-"न[1] ये किंचि अणुण्णायं पडिसिद्धं वावि जिणवरिंदेहिं । मोत्तुं मेहुणभावं न तं विणा रागदोसेहिं ॥ १ ॥ तथा

१ नापि किञ्चिदकल्पनीयमनुज्ञातं कारणे च समुत्पन्ने नापि किञ्चित् प्रतिषिद्धं, किन्तु एषा तेषां तीर्थकृतां निश्चयव्यवहारनयद्वयाश्रिता सम्यगाज्ञा मन्तव्या यदुत कार्ये ज्ञानाद्यालम्बने सत्येन सद्भावसारेण साधुना भवितव्यं, न मातृस्थानतो यत्किञ्चिदालम्बनीयमित्यर्थः, तात्त्विकज्ञानाद्यालम्बनसिध्यैव मोक्षपथसिद्धेर्बाह्यानुष्ठानस्य अनेकान्तिकत्वादनात्यन्तिकत्वाच्च, इत्थमेव तस्य द्रव्यत्वसिद्धेः, अथवा सत्यं नाम संयमस्तेन कार्ये समुत्पन्ने भवितव्यं, यथा यथा संयम उपसर्पति तथा तथा कर्त्तव्यं, तदुत्सर्पणं च शक्त्यनिगूहनेनैव निर्वहतीति, सर्वत्र यथाशक्ति यतितव्यमेवेति भावः, आह च बृहद्भाष्यकारः-"कज्जं नाणादीयं सच्चं पुण होइ संजमो णियमा । जह जह सोहेइ चरणं तह तह कायव्वयं होइ ॥१॥" दोषा रागादयो निरुध्यन्ते-सन्तोऽप्यप्रवृत्तिमन्तो जायन्ते येनानुष्ठानविशेषेण पूर्वकर्म्माणि प्राग्भवोपात्तज्ञानावरणादिकर्म्माणि च येन क्षीयन्ते स सोऽनुष्ठानविशेषो मोक्षोपायो ज्ञातव्यः, रोगावस्थासु-ज्वरादिरोगप्रकारेषु शमनमिवोचितौषधप्रदानापथ्यपरिहाराद्यनुष्ठानमिव, यथा तेन विधीयमानेन ज्वरादिरोगः क्षयमुपगच्छति, एवमुत्सर्गे उत्सर्गमपवादे चापवादं समाचरतो रागादयो निरुध्यन्ते पूर्वकर्म्माणि च क्षीयन्ते,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८८] दीप अनुक्रम [९०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १३३ ॥

"दोसा जेण निरुज्झंति जेण जिज्झंति पुव्वकम्माइं। सो सो मुक्खोवाओ, रोगावत्थासु समणं व ॥ २ ॥ जे जत्तिया उ हेऊ भवस्स ते चेव तत्तिया मुक्खे। गणणाइया लोया दुण्हवि पुण्णा भवे तुल्ला ॥ ३ ॥" इत्यादि । 'अयंसन्धी-त्यारभ्य काले अणुट्ठाइ'त्ति यावदेतेभ्यः सूत्रेभ्य एकादश पिण्डैषणा निर्यूढा इति। एवं तर्ह्यप्रतिज्ञ इत्यनेन सूत्रेणेद-मापन्नं–न कचित्केनचित्प्रतिज्ञा विधेया, प्रतिपादिताश्चागमे नानाविधा अभिग्रहविशेषाः, ततश्च पूर्वोत्तरव्याहतिरिव लक्ष्यत इत्यत आह— लोक.वि.२ उद्देशकः५

दुहओ छेत्ता नियाइ, वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं उग्गहणं च कडासणं एएसु चेव जाणिज्जा (सू० ८९)

'द्विधे'ति रागेण द्वेषेण वा या प्रतिज्ञा तां छित्त्वा निश्चयेन नियतं वा याति नियाति ज्ञानदर्शनचारित्राख्ये मोक्ष-मार्गे संयमानुष्ठाने वा भिक्षाद्यर्थं वा, एतदुक्तं भवति–रागद्वेषौ छित्त्वा प्रतिज्ञा गुणवती, व्यत्यये व्यत्यय इति, स एवम्भूतो भिक्षुः कालज्ञो बलज्ञो यावद्द्विधा छिन्दन् किं कुर्यादित्याह—'वत्थं पडिग्गहं इत्यादि यावत् एएसु चेव

अथवा यथा कस्यापि रोगिणोऽधिकृतपथ्यौषधादिकं प्रतिषिध्यते कस्यापि पुनस्तदेवानुज्ञायते, एवमत्रापि यः समर्थस्तस्याकल्प्यमन्यस्य तु तदेवानुज्ञायते, तथोक्तं भिषग्वरशास्त्रे–"उत्पद्यते हि साऽवस्था, देशकालामयान् प्रति । यस्यामकार्यं कार्यं स्यात्, कर्मकार्यं च वर्जयेत् ॥ १ ॥" दिति. । २ नैव किञ्चिदनुज्ञातं प्रतिषिद्धं वापि जिनवरेन्द्रैः । मुक्त्वा मैथुनभावं न तद् विना रागद्वेषाभ्याम् ॥ १ ॥ दोषा येन निरुध्यन्ते येन क्षीयन्ते पूर्वकर्माणि । स स मोक्षोपायो रोगावस्थासु शमनमिव ॥ २ ॥ ये यावन्तो हेतवो भवस्य त एव तावन्तो मोक्षस्य । गणनातीता लोका द्वयोरपि पूर्णा भवेयुस्तुल्याः ॥ ३ ॥ ॥ १३३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८९]

दीप अनुक्रम [९१]

जाणेज्जा' एतेषु पुत्राद्यर्थमारम्भप्रवृत्तेषु सन्निधिसन्निचयकरणोद्यतेषु जानीयात्-शुद्धाशुद्धतया परिच्छिन्द्यात्, परिच्छेदश्चैवमात्मकः-शुद्धं गृह्णीयादशुद्धं परिहरेदितियावत्, किं तद्विजानीयात्?-वस्त्रं वस्त्रग्रहणेन वस्त्रैषणा सूचिता, तथा पतद्ग्रहं-पात्रम्, एतद्ग्रहणेन च पात्रैषणा सूचिता, कम्बलमित्यनेनाऽऽविकः पात्रनिर्योगः कल्पश्च गृह्यते, पादपुञ्छनकमित्यनेन च रजोहरणमिति, एभिश्च सूत्रैरोघोपधिरौपग्रहिकश्च सूचितः, तथैतेभ्य एव वस्त्रैषणा पात्रैषणा च निर्यूढा, तथा अवगृह्यत इत्यवग्रहः, स च पञ्चधा-देवेन्द्रावग्रहः १ राजावग्रहः २ गृहपत्यवग्रहः ३ शय्यातरावग्रहः ४ साधर्मिकावग्रहश्चेति, अनेन चावग्रहप्रतिमाः सर्वाः सूचिताः, अत एवासौ निर्यूढाः, अवग्रहकल्पिकश्चास्मिन्नेव सूत्रे कल्प्यते, तथा कटासनं, कटग्रहणेन संस्तारो गृह्यते, आसनग्रहणेन चासन्दकादिविष्टरमिति, आस्यते-स्थीयते अस्मिन्निति वाऽऽसनं-शय्या, ततश्च आसनग्रहणेन शय्या सूचिता, अत एव निर्व्यूढेति । एतानि च सर्वाण्यपि वस्त्रादीन्याहारादीनि चैतेषु स्वारम्भप्रवृत्तेषु गृहस्थेषु जानीयात्, सर्वामगन्धं परिज्ञाय निरामगन्धो यथा भवति तथा परिव्रजेरिति भावार्थः। एतेषु च स्वारम्भप्रवृत्तेषु गृहस्थेषु परिव्रजन् यावल्लाभं गृह्णीयादुत कश्चिन्नियमोऽप्यस्तीत्याह—

लद्धे आहारे अणगारो मायं जाणिज्जा, से जहेयं भगवया पवेइयं, लाभुत्ति न मज्जिज्जा,
अलाभुत्ति न सोइज्जा, बहुंपि लद्धुं न निहे, परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्किज्जा (सू०९०)

'लब्धे' प्राप्ते सत्याहारे, आहारग्रहणं चोपलक्षणार्थम् अन्यस्मिन्नपि वस्त्रौषधादिके 'अनगारः' भिक्षुः 'मात्रां जानीयात्' यावन्मात्रेण गृहीतेन गृहस्थः पुनरारम्भे न प्रवर्त्तते यावन्मात्रेण चात्मनो विवक्षितकार्यनिष्पत्तिर्भवति तथा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९०]

दीप अनुक्रम [९२]

भूतां मात्रामवगच्छेदिति भावः, एतच्च स्वमनीषिकया नोच्यत इत्यत आह—'से जहेयं' इत्यादि, तद्यथा—इदमुद्देशकादेरारभ्यानन्तरसूत्रं यावद्भगवता—ऐश्वर्यादिगुणसमन्वितेनार्द्धमागधया भाषया सर्वस्वभाषानुगतया सदेवमनुजायां परिषदि केवलज्ञानचक्षुषाऽवलोक्य 'प्रवेदितं' प्रतिपादितं, सुधर्म्मस्वामी जम्बूस्वामिने इदमाचष्टे। किं चान्यत्—'लाभो'त्ति इत्यादि, लाभो वस्त्राहारादेर्मम संवृत्त इत्यतोऽहो! अहं लब्धिमानित्येवं मदं न विदध्यात्, न च तदभावे शोकाभिभूतो विमनस्को भूयादिति, आह च–'अलाभो'त्ति इत्यादि, अलाभे सति शोकं न कुर्यात्, कथं?–धिग्मां मन्दभाग्योऽहं येन सर्वदानोद्यतादपि दातुर्न लभेऽहमिति, अपि तु तयोर्लाभालाभयोर्माध्यस्थ्यं भावनीयमिति, उक्तं च—"लभ्यते लभ्यते साधु, साधुरेव न लभ्यते। अलब्धे तपसो वृद्धिर्लब्धे तु प्राणधारणम्॥ १ ॥" इत्यादि, तदेवं पिण्डपात्रवस्त्राणामेषणाः प्रतिपादिताः, साम्प्रतं सन्निधिप्रतिषेधं कुर्वन्नाह–'बहुंपी'त्यादि, 'बहुंपि' बह्वपि लब्ध्वा 'न निहे'त्ति न स्थापयेत्–न सन्निधिं कुर्यात्, स्तोकं तावन्न सन्निधीयत एव, बह्वपि न सन्निदध्यादित्यपिशब्दार्थः, न केवलमाहारसन्निधिं न कुर्याद्, अपरमपि वस्त्रपात्रादिकं संयमोपकरणातिरिक्तं न बिभृयादिति, आह—'परि' इत्यादि, परिगृह्यत इति परिग्रहो–धर्मोपकरणातिरिक्तमुपकरणं तस्मादात्मानमपष्वष्केद्–अपसर्प्पयेद्, अथवा संयमोपकरणमपि मूर्छया परिग्रहो भवति, 'मूर्च्छा परिग्रहः' (तत्त्वा० अ० ८ सू०) इतिवचनात्, तत आत्मानं परिग्रहादपसर्प्पयन्नुपकरणे तुरगवत् मूर्च्छां न कुर्यात्, ननु च यः कश्चिद्धर्मोपकरणाद्यपि परिग्रहो, न स चित्तकालुष्यमृते भवति, तथाहि–आत्मीयोपकारिणि राग उपघातकारिणि च द्वेषः, ततः परिग्रहे सति रागद्वेषौ नेदिष्ठौ, ताभ्यां च कर्म्मबन्धः, ततः कथं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९०]

दीप अनुक्रम [९२]

न परिग्रहो धर्म्मोपकरणम्?, उक्तं च–"ममाहमिति चैष यावदभिमानदाहज्वरः, कृतान्तमुखमेव तावदिति न प्रशान्त्युन्नयः। यशःसुखपिपासितैरयमसावनर्थोत्तरैः, परैरपसदः कुतोऽपि कथमप्यपाकृष्यते ॥ १ ॥" नैष दोषः, न हि धर्म्मोपकरणे ममेदमिति साधूनां परिग्रहाग्रहयोगोऽस्ति, तथा ह्यागमः—"अवि अप्पणोऽवि देहंमि, नायरंति ममाइयं", यदिह परिगृहीतं कर्म्मबन्धायोपकल्पते स परिग्रहो, यत्तु पुनः कर्म्मनिर्ज्जरणार्थं प्रभवति तत्परिग्रह एव न भवतीति। आह च—

अन्नहा णं पासए परिहरिज्जा, एस मग्गे आयरिएहिं पवेइए, जहित्थ कुसले नोवलिंपिज्जासि त्तिबेमि (सू० ९१)

णमिति वाक्यालङ्कारे, 'अन्यथे'त्यन्येन प्रकारेण पश्यकः सन् परिग्रहं परिहरेत्, यथा हि अविदितपरमार्था गृहस्थाः सुखसाधनाय परिग्रहं पश्यन्ति न तथा साधुः, तथाहि अयमस्याशयः–आचार्यसत्कमिदमुपकरणं न ममेति, रागद्वेषमूलत्वात् परिग्रहाग्रहयोगोऽत्र निषेध्यो, न धर्म्मोपकरणं, तेन विना संसारार्णवपारागमनादिति, उक्तं च—"साध्यं यथा कथञ्चित् स्वल्पं कार्यं महच्च न तथेति। प्लवनमृते न हि शक्यं पारं गन्तुं समुद्रस्य ॥ १ ॥" अत्र चार्हताभासैर्बोटिकैः सह महान्विवादोऽस्तीत्यतो विवक्षितमर्थं तीर्थकराभिप्रायेणापि सिसाधयिषुराह—'एस मग्गे' इत्यादि, धर्म्मोपकरणं न परिग्रहायेत्येषः–अनन्तरोक्तो मार्गः आराद्याताः सर्वहेयधर्म्मेभ्य इत्यार्याः–तीर्थकृतस्तैः 'प्रवेदितः' कथितो, न तु यथा बोटिकैः कुण्डिका तट्टिका लम्बणिका अश्ववालधिवालादि स्वरुचिविरचितो मार्ग इति, न वा यथा मौद्गलिस्वातिपुत्राभ्यां

१ अप्यात्मनोऽपि देहे नाचरन्ति ममायितुम्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [९१]

दीप अनुक्रम [९३]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १२५ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ५

शौद्धोदनिं ध्वजीकृत्य प्रकाशितः, इत्यनया दिशा अन्येऽपि परिहार्या इति । इह तु स्वशास्त्रगौरवमुत्पादयितुमार्यैः प्रवेदित इत्युक्तम्, अस्मिंश्चार्यप्रवेदिते मार्गे प्रयत्नवता भाव्यमिति, आह च—'जहेत्थ' इत्यादि, लब्ध्वा कर्म्मभूमिं मोक्षपादपबीजभूतां च बोधिं सर्वसंवरचारित्रं च प्राप्य तथा विधेयं यथा 'कुशलो' विदितवेद्यः 'अत्र' अस्मिन्नार्यप्रवेदिते मार्गे आत्मानं पापेन कर्म्मणा नोपलिम्पयेत् इति । एवं चोपलिम्पनं भवति यदि यथोक्तानुष्ठानविधायित्वं न भवति, सतां चायं पन्था यदुत—यत्स्वयं प्रतिज्ञातं तदन्त्योच्छ्वासं यावद्विधेयमिति, उक्तं च—"लज्जां गुणौघजननीं जननीमिवार्यामत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्त्तमानाः । तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति, सत्यस्थितिव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ॥ १ ॥" इतिशब्दोऽधिकारसमाप्त्यर्थो, 'ब्रवीमि' इति सोऽहं ब्रवीमि येन मया भगवत्पादारविन्दमुपासता अश्रावीति ॥ परिग्रहादात्मानमपसर्प्पयेदित्युक्तं, तच्च न निदानोच्छेदमन्तरेण, निदानं च शब्दादिपञ्चगुणानुगामिनः कामाः, तेषां चोच्छेदोऽसुकरो, यत आह—

कामा दुरतिक्कमा, जीवियं दुप्पडिवूहगं, कामकामी खलु अयं पुरिसे, से सोयइ जूरइ तिप्पइ परितप्पइ (सू० ९२)

कामा द्विविधाः—इच्छाकामा मदनकामाश्च, तत्रेच्छाकामा मोहनीयभेदहास्यरत्युद्भवाः, मदनकामा अपि मोहनीयभेदवेदोदयात् प्रादुष्ष्यन्ति, ततश्च द्विरूपाणामपि कामानां मोहनीयं कारणं, तत्सद्भावे च न कामोच्छेद इत्यतो दुःखेनातिक्रमः—अतिलङ्घनं विनाशो येषां ते तथा, ततश्चेदमुक्तं भवति—न तत्र प्रमादवता भाव्यं । न केवलमत्र जी- ॥ १२५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९२]

दीप अनुक्रम [९४]

वितेऽपि न प्रमादवता भाव्यमिति, आह च—'जीवियं' इत्यादि, जीवितम्–आयुष्कं तत् क्षीणं सत् 'दुष्प्रतिबृंहणीयं' दुरभावार्थे, नैव वृद्धिं नीयते इतियावत्, अथवा जीवितं–संयमजीवितं तद्दुष्प्रतिबृंहणीयं, कामानुषक्तजनान्तर्वर्त्तिना दुःखेन वृद्धिं नीयते, दुःखेन निष्प्रत्यूहः संयमः प्रतिपाल्यते इति, उक्तं च—"[1]आगासे गंगसोउव्व, पडिसोउव्व दुत्तरो। बाहाहिं चेव गंभीरो, तरिअव्वो महोअही ॥ १ ॥ वालुगाकवलो चेव, निरासाए हु संजमो। जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्करं ॥ २ ॥" इत्यादि, येन चाभिप्रायेण कामा दुरतिक्रमा इति प्रागभ्यधायि तमभिप्रायमाविष्कुर्वन्नाह—'कामकामी' इत्यादि, कामान् कामयितुम्–अभिलषितुं शीलमस्येति कामकामी 'खलुः' वाक्यालङ्कारे 'अयम्' इत्यध्यक्षः 'पुरुषः' जन्तुः। यस्त्वेवंविधोऽविरतचेताः कामकामी स नानाविधान् शारीरमानसान् दुःखविशेषाननुभवतीति दर्शयति—'से सोयई'त्यादि, 'स' इति कामकामी ईप्सितस्यार्थस्याप्राप्तौ तद्वियोगे च स्मृत्यनुषङ्गः शोकस्तमनुभवति अथवा शोचत इति काममहाज्वरगृहीतः सन् प्रलपतीति, उक्तं च—"गते प्रेमाबन्धे प्रणयबहुमाने च गलिते, निवृत्ते सद्भावे जन इव जने गच्छति पुरः। तमुत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य प्रियसखि! गतांस्तांश्च दिवसान्, न जाने को हेतुर्दलति शतधा यन्न हृदयम्? ॥ १ ॥" इत्यादि शोचते, तथा 'जूरइ'त्ति हृदयेन खिद्यते, तद्यथा—"प्रथमतरमथेदं चिन्तनीयं तवासीद्बहुजनदयितेन प्रेम कृत्वा जनेन। हृतहृदय! निराश! क्लीब! संतप्यसे किं?, न हि जडगततोये सेतुबन्धाः क्रियन्ते ॥ १ ॥"

१ आकाशे गङ्गाश्रोत इव, प्रतिश्रोत इव दुस्तरः। बाहुभ्यामेव गम्भीरस्तरीतव्यो महोदधिः ॥ १ ॥ वालुकाकवल इव, निरास्वाद एव संयमः। यवा लोहमया एव, चर्वयितव्याः सुदुष्करम् ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९२]

दीप अनुक्रम [९४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ १२६ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ५

इत्येवमादि, तथा 'तिप्पइ'त्ति 'तिपृ तेपृ प्रक्षरणार्थौ' तेपते–क्षरति सञ्चलति मर्यादातो भ्रश्यति निर्मर्यादो भवतीतियावत्, तथा शारीरमानसैर्दुःखैः पीड्यते, तथा परिः–समन्ताद्बहिरन्तश्च तप्यते परितप्यते, पश्चात्तापं वा करोति, यथेष्टे पुत्रकलत्रादौ कोपात् क्वचिद्गते स मया नानुवर्त्तित इति परितप्यते, सर्वाणि चैतानि शोचनादीनि विषयविषावष्टब्धान्तःकरणानां दुःखावस्थासंसूचकानि, अथवा शोचत इति यौवनधनमदमोहाभिभूतमानसो विरुद्धानि निषेव्य पुनर्वयःपरिणामेन मृत्युकालोपस्थानेन वा मोहापगमे सति किं मया मन्दभाग्येन पूर्वमशेषशिष्टाचीर्णः सुगतिगमनैकहेतुर्दुर्गतिद्वारपरिघो धर्म्मो नाचीर्णः? इत्येवं शोचत इति, उक्तं च—"भवित्रीं भूतानां परिणतिमनालोच्य नियतां, पुरा यद्यत् किञ्चिद्विहितमशुभं यौवनमदात्। पुनः प्रत्यासन्ने महति परलोकैकगमने, तदेवैकं पुंसां व्यथयति जराजीर्णवपुषाम् ॥ १ ॥" तथा जूरतीत्यादीन्यपि स्वबुद्ध्या योजनीयानि, उक्तं च—"सगुणमपगुणं वा कुर्वता कार्यजातं, परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन। अतिरभसकृतानां कर्म्मणामाविपत्तेर्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥ १ ॥" इत्यादि ॥ कः पुनरेवं न शोचत इत्याह—

आययचक्खू लोगविपस्सी लोगस्स अहो भागं जाणइ उड्ढं भागं जाणइ तिरियं भागं जाणइ, गड्ढिए लोए अणुपरियट्टमाणे, संधिं विइत्ता इह मच्चिएहिं, एस वीरे पसंसिए जे बद्धे पडिमोयए जहा अंतो तहा बाहिं जहा बाहिं तहा अंतो, अंतो ॥ १२६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९३]

दीप अनुक्रम [९५]

अंतो पूइ देहंतराणि पासइ पुढोवि सवंताइं पंडिए पडिलेहाए (सू० ९३)

आयतं–दीर्घमैहिकामुष्मिकापायदर्शि चक्षुः–ज्ञानं यस्य स आयतचक्षुः, कः पुनरित्येवंभूतो भवति? यः कामानेकान्तेनानर्थभूयिष्ठान् परित्यज्य शमसुखमनुभवति, किं च—'लोगविपस्सी' लोकं विषयानुषङ्गावेशासदुःखातिशयं तथा त्यक्तकामावाप्तप्रशमसुखं विविधं द्रष्टुं शीलमस्येति लोकविदर्शी, अथवा लोकस्य ऊर्द्धाधस्तिर्यग्भागगतिकारणायुष्कसुखदुःखविशेषान् पश्यतीति, एतद्दर्शयति—'लोगस्स' इत्यादि, लोकस्य–धर्माधर्मास्तिकायावच्छिन्नाकाशखण्डस्याधोभागं जानातीति–स्वरूपतोऽवगच्छति, इदमुक्तं भवति–येन कर्म्मणा तत्रोत्पद्यन्तेऽसुमन्तः यादृक् तत्र सुखदुःखविपाको भवति तं जानाति, एवमूर्द्धतिर्यग्भागयोरपि वाच्यं, यदिवा लोकविदर्शीति–कामार्थमर्थोपार्जनप्रसक्तं गृद्धमध्युपपन्नं लोकं पश्यतीति। एतदेव दर्शयितुमाह—'गड्ढिए' इत्यादि, अयं हि लोको 'गृद्धः' अध्युपपन्नः कामानुषङ्गे तदुपाये वा तत्रैवानुपरिवर्त्तमानो भूयो भूयस्तदेवाचरंस्तज्जनितेन वा कर्म्मणा संसारचक्रेऽनुपरिवर्त्तमानः–पर्यटन्नायतचक्षुषो गोचरीभवन् कामाभिलाषनिवर्त्तनाय न प्रभवति?, यदिवा कामगृद्धान् संसारेऽनुपरिवर्त्तमानानसुमतः पश्येत्येवमुपदेशः, अपि च—'संधिं' इत्यादि, इह 'मर्त्त्येषु' मनुजेषु यो ज्ञानादिको भावसन्धिः, स च मर्त्त्येष्वेव सम्पूर्णो भवतीति मर्त्यग्रहणम्, अतस्तं विदित्वा यो विषयकषायादीन् परित्यजति स एव वीर इति दर्शयति–'एस' इत्यादि, 'एषः' अनन्तरोक्तः आयतचक्षुर्यथावस्थितलोकविभागस्वभावदर्शी भावसन्धेर्वेत्ता परित्यक्तविषयतर्षो वीरः कर्म्मविदारणात् 'प्रशंसितः' स्तुतः विदिततत्त्वैरिति। स एवंभूतः किमपरं करोतीति चेदित्याह—'जे बद्धे' इत्यादि, यो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [९३]

दीप अनुक्रम [९५]

बद्धान् द्रव्यभावबन्धनेन स्वतो विमुक्तोऽपरानपि मोचयतीत्येतदेव द्रव्यभावबन्धनविमोक्षं वाचोयुक्त्याऽऽचष्टे—'जहा अंतो तहा बाहिं' इत्यादि, यथाऽन्तर्भावबन्धनमष्टप्रकारकर्मनिगडनं मोचयति एवं पुत्रकलत्रादि बाह्यमपि, यथा वा बाह्यं बन्धुबन्धनं मोचयति एवं मोक्षगमनविघ्नकारणमान्तरमपीति, यदिवा—कथमसौ मोचयतीति चेत्तस्वाविर्भावनेन, स्यादेतत्—तदेव किंभूतमित्याह—'जहा अंतो' इत्यादि, यथा स्वकायस्यान्तः—मध्ये अमेध्यकललपिशितासृक्पूत्यादिपूर्णत्वेनासारत्वमित्येवं बहिरप्यसारता द्रष्टव्या, अमेध्यपूर्णघटवदिति, उक्तं च—"यदि नामास्य कायस्य, यदन्तस्तद्बहिर्भवेत् । दण्डमादाय लोकोऽयं, शुनः काकांश्च वारयेत् ॥ १ ॥" इति, यथा वा बहिरसारता तथाऽन्तरपीति । किं च—'अन्तो अन्तो' इत्यादि, देहस्य मध्ये मध्ये पूत्यन्तराणि—पूतिविशेषान् 'देहान्तराणि' देहस्यावस्थाविशेषान्, इह मांसमिह रुधिरमिह मेदो मज्जा चेत्येवमादि पूतिदेहान्तराणि 'पश्यति' यथावस्थितानि परिच्छिनत्तीत्युक्तं भवति, यदिवा देहान्तराण्येवंभूतानि पश्यति—'पुढो' इत्यादि, 'पृथगपि' प्रत्येकमपि अपिशब्दात्कुष्ठाद्यवस्थायां यौगपद्येनापि स्रवन्ति नवभिः श्रोत्रोभिः कर्णाक्षिमलश्लेष्मलालाप्रश्रवणोच्चारादीन् तथाऽपरव्याधिविशेषापादितव्रणमुखपूतिशोणितरसिकादीनि चेति । यद्येतानि ततः किं?—'पंडिए पडिलेहाए' एतान्येवंभूतानि गलच्छ्रोतोव्रणरोमकूपानि 'पण्डितः' अवगततत्त्वः 'प्रत्युपेक्षेत' यथावस्थितमस्य स्वरूपमवगच्छेदिति, उक्तं च—"मंसट्ठिरु- ॥ १३७ ॥

१ मांसास्थिरुधिरस्नाय्ववनद्धकल्मषमेदमज्जाभिः । पूर्णे चर्मकोशे दुर्गन्धेऽशुचिबीभत्से ॥ १ ॥ संचारक(श्रवत्)यन्त्रगलद्वर्चोमूत्रान्तस्वेदपूर्णे । देहे भवेत् किं रागकारणं अशुचिहेतौ ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९३]

दीप अनुक्रम [९५]

हिरण्हारुवणद्धकलमलयमेयमज्जासु । पुण्णंमि चम्मकोसे दुग्गंधे असुइबीभच्छे ॥ १ ॥ संचारिमजंतगलंतवच्चमुत्तंतसे-अपुण्णंमि । देहे हुज्जा किं रागकारणं असुइहेउम्मि ? ॥ २ ॥" इत्यादि । तदेवं पूतिदेहान्तराणि पश्यन् पृथगपि स्रवन्तीत्येवं प्रत्युपेक्ष्य किं कुर्यादित्याह—

से मइमं परिन्नाय मा य हु लालं पच्चासी, मा तेसु तिरिच्छमप्पाणमावायए, कासंकासे खलु अयं पुरिसे, बहुमाई कडेण मूढे, पुणो तं करेइ लोहं वेरं वड्ढेइ अप्पणो, जमिणं परिकहिज्जइ इमस्स चेव पडिवूहणयाए, अमरा य महासड्ढी अट्टमेयं तु पेहाए अपरिण्णाए कंदइ (सू० ९४)

'स' पूर्वोक्तो यतिर्मतिमान्—श्रुतसंस्कृतबुद्धिर्यथावस्थितं देहस्वरूपं कामस्वरूपं च द्विविधयाऽपि परिज्ञया परिज्ञाय किं कुर्यादित्याह—'मा य हु' इत्यादि, 'मा' प्रतिषेधे चः समुच्चये हुर्वाक्यालङ्कारे, ललतीति लाला—अनुव्यन्मुखश्लेष्मसन्ततिः तां प्रत्यशितुं शीलमस्येति प्रत्याशी, वाक्यार्थस्तु यथा हि बालो निर्गतामपि लालां सदसद्विवेकाभावात् पुनरप्यश्नातीत्येवं त्वमपि लालावत्त्यक्त्वा मा भोगान् प्रत्यशान, वान्तस्य पुनरप्यभिलाषं मा कुर्वित्यर्थः । किं च—'मा तेसु तिरिच्छं' इत्यादि, संसारश्रोतांसि अज्ञानाविरतिमिथ्यादर्शनादीनि प्रतिकूलेन वा तिरश्चीनेन वाऽतिक्रमणीयानि, निर्वाणश्रोतांसि तु ज्ञानादीनि तत्रानुकूल्यं विधेयं, मा तेष्वात्मानं तिरश्चीनमापादयेः, ज्ञानादिकार्ये प्रतिकूलतां मा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] “आचार” मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [९४]

दीप अनुक्रम [९६]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १३८ ॥ लोक.वि.२ उद्देशकः ५

विद्ध्याः, तत्राप्रमादवता भाव्यं, प्रमादवांश्चेहैव शान्तिं न लभते, यत आह—'कासंकासे' इत्यादि, यो हि ज्ञानादिश्रोतसि तिरश्चीनवर्त्ती भोगाभिलाषवान् स एवंभूतोऽयं पुरुषः सर्वदा किंकर्त्तव्यताकुल इदमहमकार्षमिदं च करिष्ये इत्येवं भोगाभिलाषक्रियाव्यापृतान्तःकरणो न स्वास्थ्यमनुभवति, खलुशब्दोऽवधारणे, वर्तमानकालस्यातिसूक्ष्मत्वादसंव्यवहारित्वमतीतानागतयोश्चेदमहमकार्षमिदं च करिष्य इत्येवमातुरस्य नास्त्येव स्वास्थ्यमिति, उक्तं च—"इदं तावत् करोम्यद्य, श्वः कर्त्ताऽस्मीति चापरम् । चिन्तयन्निह कार्याणि, प्रेत्यार्थं नावबुध्यते ॥ १ ॥" अत्र दधिघटिकाद्रमकदृष्टान्तो वाच्यः, स चायं—द्रमकः कश्चित् क्वचिन्महिषीरक्षणावाप्तदुग्धः तद्दधीकृत्य चिन्तयामास, ममातो घृतवेतनादि यावद्भार्या अपत्योत्पत्तिस्ततश्चिन्ता, कलहे पार्ष्णिप्रहारेणैव दधिघटिकाव्यापत्तिरित्येवंचिन्तामनोरथव्याकुलीकृतान्तःकरण इति तद्दध्यानयने शिरोविण्टलीकाचीवरे आदीयमाने इव शिरो विधूयास्फोटिता दधिघटिकेत्येवं यथा तेन न तद्दधि भक्षितं नापि कस्मैचित्पुण्याय दत्तम्, एवमन्योऽपि कासंकसः–किंकर्त्तव्यतामूढो निष्फलारम्भो भवतीति, अथवा कस्यतेऽस्मिन्निति कासः–संसारस्तं कषतीति–तदभिमुखो यातीति कासंकषः, यो ज्ञानादिप्रमादवान् वक्ष्यमाणो वेत्याह—'बहुमायी' कासंकषो हि कषायैर्भवति, तन्मध्यभूताया मायाया ग्रहणे तेषामपि ग्रहणं द्रष्टव्यमिति, ततः क्रोधी मानी मायी लोभीति द्रष्टव्यमिति । अपि च–'कडेण मूढं' करणं कृतं तेन मूढः–किंकर्त्तव्यताकुलः सुखार्थी दुःखमश्नुते इति, उक्तं हि—"सोउं सोवणकाले मज्जणकाले य मज्जिउं लोलो । जेमेउं च ॥ १३८ ॥

१ स्वपितुं शयनकाले मज्जनकाले च मङ्क्तुं लोलः (चपलः) । जेमितुं च वराको जेमनकाले न शक्नोति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९४]

दीप अनुक्रम [९६]

वराओ जेमणकाले न चाएइ ॥ १ ॥" अत्र मम्मणवणिग्दृष्टान्तो वाच्यः, स चैवं कासंकषः बहुमायी कृतेन मूढस्तत्करोति येनात्मनो वैरानुषङ्गो जायत इति, आह च—'पुणो तं करेई'त्यादि, मायावी परवञ्चनबुद्ध्या पुनरपि तत्लोभानुष्ठानं तथा करोति येनात्मनो वैरं वर्द्धते, अथवा तं लोभं करोतीति—अर्जयति येन जन्मशतेष्वपि वैरं वर्द्धत इति, उक्तं च—"दुःखार्त्तः सेवते कामान्, सेवितास्ते च दुःखदाः। यदि ते न प्रियं दुःखं, प्रसङ्गस्तेषु न क्षमः ॥ १ ॥" किं पुनः कारणमसुमांस्तत्करोति येनात्मनो वैरं वर्द्धते?, इत्याह—'जमिणं' इत्यादि, 'यदि'ति यस्मादस्यैव—विशरारोः शरीरकस्य परिबृंहणार्थं प्राणघातादिकाः क्रियाः करोतीति, ते च तेनोपहताः प्राणिनः पुनः शतशो घ्नन्ति, ततो मयेदं कथ्यते—कासंकषः खल्वयं पुरुषो बहुमायी कृतेन मूढः पुनस्तत्करोति येनात्मनो वैरं वर्द्धयतीति, यद्वा यदिदं मयोपदेशप्रायं पौनःपुन्येन कथ्यते तदस्यैव संयमस्य परिबृंहणार्थम्, इदं चापरं कथ्यते—'अमराय' इत्यादि, अमरायतेऽनमरः सन् द्रव्ययौवनप्रभुत्वरूपावसक्तोऽमर इवाचरति अमरायते, कोऽसौ?—'महाश्रद्धी' महती चासौ श्रद्धा च महाश्रद्धा सा विद्यते भोगेषु तदुपायेषु वा यस्य स तथा, अत्रोदाहरणं—राजगृहे नगरे मगधसेना गणिका, तत्र कदाचिद्धनः सार्थवाहो महता द्रव्यनिचयेन समन्वितः प्रविष्टः, तद्रूपयौवनगुणगणद्रव्यसम्पदाक्षिप्तया मगधसेनयाऽसावभिसरितः, तेन चायव्ययाक्षिप्तमानसेनासौ नावलोकिताऽपि, अस्याश्चात्मीयरूपयौवनसौभाग्यावलेपान्महती दुःखासिकाऽभूत्, ततश्च तां परिम्लानवदनामवलोक्य जरासन्धेनाभ्यधायि—किं भवत्या दुःखासिका कारणं?, केन वा सार्द्धमुषितेति, सा त्ववादीद्—अमरेणेति, कथमसावमर इत्युक्ते तया सद्भावः कथितो निरूपितश्च यावत्तथैवाद्या-

४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९४]

दीप अनुक्रम [९६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १३९ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ५

प्यास्त इत्यतो भोगार्थिनोऽर्थे प्रसक्ता अजरामरवत्क्रियासु प्रवर्त्तन्त इति । यश्चामरायमाणः कामभोगाभिलाषुकः स किंभूतो भवतीत्याह—'अट्ट' इत्यादि, अर्त्तिः—शारीरमानसी पीडा तत्र भव आर्त्तस्तमार्त्तममरायमाणं कामार्थं महाश्रद्धावन्तं 'प्रेक्ष्य' दृष्ट्वा पर्यालोच्य वा कामार्थयोर्न मनो विधेयं इति, पुनरमरायमाणभोगश्रद्धावतः स्वरूपमुच्यते —'अपरिण्णाए' इत्यादि, कामस्वरूपं तद्विपाकं वा अपरिज्ञाय तत्र दत्तावधानः कामस्वरूपापरिज्ञया वा 'क्रन्दते' भोगेष्वप्राप्तनष्टेषु काङ्क्षाशोकावनुभवतीति, उक्तं च—"चिन्ता गते भवति साध्वसमन्तिकस्थे, मुक्ते तु तन्निरधिका रमितेऽप्यतृप्तिः । द्वेषोऽन्यभाजि वशवर्त्तिनि दग्धमानः, प्राप्तिः सुखस्य दयिते न कथञ्चिदस्ति ॥ १ ॥" इत्यादि । तदेवमनेकधा कामविपाकमुपदर्श्य उपसंहरति—

से तं जाणह जमहं बेमि, तेइच्छं पंडिए पवयमाणे से हंता छित्ता भित्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता, अकडं करिस्सामित्ति मन्नमाणे, जस्सवि य णं करेइ, अलं बालस्स संगेणं, जे वा से कारइ बाले, न एवं अणगारस्स जायइ (सू० ९५) त्तिबेमि ॥

'से'त्ति तदर्थे तदपि हेत्वर्थे, यस्मात्कामा दुःखैकहेतवः तस्मात्तज्जानीत यदहं ब्रवीमि, मदुपदेशं कामपरित्यागविषयं कर्णे कुरुतेति भावार्थः । ननु च कामनिग्रहोऽत्र चिकीर्षितः, स चान्योपदेशादपि सिद्ध्यत्येवेत्येतदाशङ्क्याह—'तेइच्छं' इत्यादि, कामचिकित्सां 'पण्डितः' पण्डिताभिमानी प्रवदन्नपरव्याधिचिकित्सामिवोपदिशन्नपरः—तीर्थिको जीवोपमर्दे ॥ १३९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९५]

दीप अनुक्रम [९७]

वर्त्तेत इति, आह—'से हंता' इत्यादि, 'स' इत्यविदिततत्त्वः कामचिकित्सोपदेशकः प्राणिनां हन्ता दण्डादिभिः छेत्ता कर्णादीनां भेत्ता शूलादिभिः लुम्पयिता ग्रन्थिच्छेदनादिना विलुम्पयिता अवस्कन्दादिना अपद्रावयिता प्राणव्यपरोपणादिना, नान्यथा कामचिकित्सा व्याधिचिकित्सा वा अपरमार्थदृशां सम्पद्यते, किं च—'अकृतं' यदपरेण न कृतं कामचिकित्सनं व्याधिचिकित्सनं वा तदहं करिष्य इत्येवं मन्यमानः हननादिकाः क्रियाः करोति, ताभिश्च कर्म्मबन्धः, अतो य एवंभूत उपदिशति यस्याप्युपदिश्यते उभयोरप्येतयोरपथ्यत्वादकार्यमिति, आह च—'जस्सवि य णं' इत्यादि, यस्याप्यसावेवंभूतां चिकित्सां करोति, न केवलं स्वस्येत्यपिशब्दार्थः, तयोर्द्वयोरपि कर्तुः कारयितुश्च हननादिकाः क्रियाः, अतो 'अलं' पर्याप्तं 'बालस्य' अज्ञस्य 'सङ्गेन' कर्म्मबन्धहेतुना कर्तुरिति, योऽप्येतत् कारयति 'बालः' अज्ञस्तस्याप्यलमिति सण्टङ्कः, एतच्चैवम्भूतमुपदेशदानं विधानं वाऽवगततत्त्वस्य न भवतीत्याह—'न एवं' इत्यादि, एवम्भूतं प्राण्युपमर्देन चिकित्सोपदेशदानं करणं वा 'अनगारस्य' साधोः ज्ञातसंसारस्वभावस्य न जायते—न कल्पते, ये तु कामचिकित्सां व्याधिचिकित्सां वा जीवोपमर्देन प्रतिपादयन्ति ते बालाः—अविज्ञाततत्त्वाः, तेषां वचनमवधीरणीयमेवेति भावार्थः । इतिः परिसमाप्त्यर्थे, ब्रवीमीति पूर्ववदिति लोकविजयस्य पञ्चमोद्देशकटीका समाप्तेति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [९६]

दीप अनुक्रम [९८]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १४० ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ६

उक्तः पञ्चमोद्देशकः, साम्प्रतं षष्ठ आरभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः—संयमदेहयात्रार्थं लोकमनुसरता साधुना लोके ममत्वं न कर्त्तव्यमित्युद्देशार्थाधिकारोऽभिहितः, सोऽधुना प्रतिपाद्यते—अस्य चानन्तरसूत्रसम्बन्धो वाच्यो 'नैवमनगारस्य जायत' इत्यभिहितम्, एतदेवात्रापि प्रतिपिपादयिषुराह—

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय तम्हा पावकम्मं नेव कुज्जा न कारवेज्जा (सू० ९६)

यस्यानगारस्यैतत्पूर्वोक्तं न जायते सोऽनगारस्तत्—प्राण्युपघातकारि चिकित्सोपदेशदानमनुष्ठानं वा संबुद्ध्यमानः—अवगच्छन् ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरन्नादातव्यम् आदानीयं तच्च परमार्थतो भावादानीयं ज्ञानदर्शनचारित्ररूपं तद् 'उत्थाये'त्यनेकार्थत्वादादाय—गृहीत्वा अथवा सोऽनगार इत्येतदादानीयं—ज्ञानाद्यपवर्गैककारणमित्येवं सम्यगवबुद्ध्यमानः सम्यक्संयमानुष्ठानेनोत्थाय—सर्वं सावद्यं कर्म्म न मया कर्त्तव्यमित्येवं प्रतिज्ञामन्दरमारुह्य, क्त्वाप्रत्ययस्य पूर्वकालाभिधायित्वात् किं कुर्यादित्याह—'तम्हा' इत्यादि, यस्मात् संयमः सर्वसावद्यारम्भनिवृत्तिरूपः तस्मात्तमादाय पापं—पापहेतुत्वात् कर्म्म क्रियां न कुर्यात् स्वतो मनसाऽपि न समनुजानीयादित्यवधारणफलं, अपरेणापि न कारयेदिति, आह च—'न कारवे' इत्यादि, अपरेणापि कर्म्मकरादिना पापसमारम्भं न कारयेदित्युक्तं भवति, प्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहक्रोधमानमायालोभरागद्वेषकलहाभ्याख्यानपैशून्यपरपरिवादारतिरतिमायामृषावादमिथ्यादर्शनशल्यरूपमष्टादशप्रकारं पापं कर्म्म स्वतो न कुर्यान्नाप्यपरेण कारयेदेवकाराच्चापरं कुर्वन्तं न समनुजानीयाद्योगत्रिकेणापि भावार्थः। स्यादेतत्—किमेकं प्राणातिपातादिकं पापं कुर्वतोऽपरमपि ढौकते आहोस्विन्नेत्याह—

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

द्वितीय-अध्ययने षष्ठ-उद्देशक: 'अममत्व' आरब्ध:,

प्रत
सूत्रांक
[९७]

दीप
अनुक्रम
[९९]

सिया तत्थ एगयरं विप्परामुसइ छसु अन्नयरंमि, कप्पइ सुहट्ठी लालप्पमाणे, सएण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ, सएण विप्पमाएण पुढो वयं पकुव्वइ, जंसिमे पाणा पव्वहिया, पडिलेहाए नो निकरणयाए, एस परिन्ना पवुच्चइ, कम्मोवसंती (सू० ९७)

'स्यात्तत्र' कदाचित्तत्र पापारम्भे 'एकतरं' पृथिवीकायादिसमारम्भं विपरामृशति–पृथिवीकायादिसमारम्भं करोति, एकतरं वाऽऽश्रवद्वारं परामृशति–आरभते स षट्स्वन्यतरस्मिन् कल्प्यते, यस्मिन्नेवालोच्यते तस्मिन्नेव प्रवृत्तो द्रष्टव्यः, इदमुक्तं भवति–पृथिवीकायादिषु षट्सु जीवनिकायेष्वाश्रवद्वारेषु वा मध्येऽन्यतरस्मिन्नपि प्रवर्त्तमानो यस्मिन्नेव पर्यालोच्यते तस्मिन्नेव कल्प्यते, सर्वस्मिन्नेव वर्त्तत इति भावार्थः । कथमन्यतरस्मिन् पृथिवीकायादिसमारम्भे वर्त्तमानोऽपरकायसमारम्भे सर्वपापसमारम्भे वा वर्त्तते इत्येवं मन्यते?, कुम्भकारशालोदकप्लावनदृष्टान्तेनैककायसमारम्भकोऽपरकायसमारम्भको भवति, अथवा प्राणातिपाताश्रवद्वारविघटनादेकजीवातिपातादेककायातिपाताद्वा अपरजीवातिपाती द्रष्टव्यः, प्रतिज्ञालोपाच्चानृतो, न च तेन व्यापाद्यमानेनासुमताऽऽत्मा व्यापादकाय दत्तस्तीर्थकरेण चानुज्ञातोऽतः प्राणिनः प्राणान् गृह्णन्नदत्तग्राही, सावद्योपादानाच्च पारिग्राहिकः, परिग्रहाच्च मैथुनरात्रीभोजने अपि गृहीते, यतो नापरिगृहीतमुपभुज्यते परिभुज्यते चेत्यतोऽन्यतरारम्भे षण्णामप्यारम्भोऽथवा अनावृतचतुराश्रवद्वारस्य कथं चतुर्थषष्ठव्रतावस्थानं स्याद्?, अतः षट्स्वन्यतरस्मिन् प्रवृत्तः सर्वेष्वपि प्रवृत्त इति, अथवैकतरमपि पापसमारम्भं य आरभते स षट्स्वन्यतरस्मिन् कल्पते–योग्यो भवति, अकर्त्तव्यप्रवृत्तत्वाद्, अथवैकतरमपि यः पापारम्भं करोत्यसावष्टप्रकारं कर्मादाय षट्-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९७]

दीप अनुक्रम [९९]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ १४१ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ६

स्वन्यतरस्मिन् कल्पते–प्रभवति, पौनःपुन्येनोत्पद्यत इत्यर्थः, स्यात्–किमर्थमेवंविधं पापकं कर्म्म समारभते?, तदुच्यते— 'सुहट्ठी लालप्पमाणे' सुखेनार्थः सुखार्थः स विद्यते यस्यासाविति मत्वर्थीयः, स एवम्भूतः सन्नत्यर्थं लपति पुनः पुनर्वा लपति लालप्यते वाचा कायेन धावनवल्गनादिकाः क्रियाः करोति मनसा च तत्साधनोपायांश्चिन्तयति, तथाहि–सुखार्थी सन् कृष्यादिकर्म्मभिः पृथिवीं समारभते स्नानार्थमुदकं वितापनार्थमग्निं घर्मापनोदार्थं वायुं आहारार्थी वनस्पतिं त्रसकायं वेत्यसंयतः संयतो वा रससुखार्थी सच्चित्तं लवणवनस्पतिफलादि गृह्णात्येवमन्यदपि यथासंभवमायोज्यं । स चैवं लालप्यमानः किंभूतो भवतीत्याह—'सएण'इत्यादि, यत्तदुप्तमन्यजन्मनि दुःखतरुकर्म्मबीजं तदात्मीयं दुःखतरुकार्यमाविर्भावयति, तच्च तेनैव कृतमित्यात्मीयमुच्यते, अतस्तेन स्वकीयेन 'दुःखेन' स्वकृतकर्म्मोदयजनितेन 'मूढः' परमार्थमजानानो 'विपर्यासमुपैति' सुखार्थी प्राण्युपघातकारणमारम्भमारभते, सुखस्य च विपर्यासो दुःखं तदुपैति, उक्तं च— "दुःखद्विट् सुखलिप्सुर्मोहान्धत्वाददृष्टगुणदोषः । यां यां करोति चेष्टां तया तया दुःखमादत्ते ॥ १ ॥" यदिवा 'मूढो' हिताहितप्राप्तिपरिहाररहितो विपर्यासमुपैति–हितमप्यहितबुद्ध्याऽधितिष्ठत्यहितं च हितबुद्ध्येति, एवं कार्याकार्यपथ्यापथ्यवाच्यावाच्यादिष्वपि विपर्यासो योज्यः, इदमुक्तं भवति–मोहोऽज्ञानं मोहनीयभेदो वा, तेनोभयप्रकारेणापि मोहेन मूढोऽल्पसुखकृते तत्तदारभते येन शारीरमानसदुःखव्यसनोपनिपातानामनन्तमपि कालं पात्रतां व्रजतीति । पुनरपि मूढस्यानर्थपरम्परां दर्शयितुमाह—'सएण' इत्यादि, स्वकीयेनात्मना कृतेन प्रमादेन–मद्यादिना 'विविध'मिति मद्यविषयकषायविकथानिद्राणां स्वभेदग्रहणं, तेन पृथग्–विभिन्नं व्रतं करोति, यदिवा पृथु विस्तीर्णं 'वय'मिति वयन्ति–पर्यटन्ति

॥ १४१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९७]

दीप अनुक्रम [९९]

प्राणिनः स्वकीयेन कर्म्मणा यस्मिन् स वयः–संसारस्तं प्रकरोति, एकैकस्मिन् काये दीर्घकालावस्थानाद्, यदिवा कारणे कार्योपचारात् स्वकीयेन नानाविधप्रमादकृतेन कर्म्मणा वयः–अवस्थाविशेषस्तमेकेन्द्रियादिकललार्बुदादितदहर्जातबालादिव्याधिगृहीतदारिद्र्यदौर्भाग्यव्यसनोपनिपातादिरूपं प्रकर्षेण करोति–विधत्त इति । तस्मिंश्च संसारेऽवस्थाविशेषे वा प्राणिनः पीड्यन्ते इति दर्शयितुमाह—'जंसिमे' इत्यादि, यस्मिन् स्वकृतप्रमादापादितकर्म्मविपाकजनिते चतुर्गतिकसंसारे एकेन्द्रियाद्यवस्थाविशेषे वा 'इमे' प्रत्यक्षगोचरीभूताः 'प्राणा'इत्यभेदोपचारात्प्राणिनः 'प्रव्यथिताः' नानाप्रकारैर्व्यसनोपनिपातैः पीडिताः, सुखार्थिभिरारम्भप्रवृत्तैर्मोहाद्विपर्यस्तैः प्रमादवद्भिश्च गृहस्थैः पाषण्डिकैर्यत्याभासैश्चेति वा । यदि नामात्र प्रव्यथिताः प्राणिनस्ततः किमित्याह—'पडि' इत्यादि, एतत् संसारचक्रवाले स्वकृतकर्म्मफलेश्वराणामसुमतां गृहस्थादिभिः परस्परतो वा कर्म्मविपाकतो वा प्रव्यथनं प्रत्युपेक्ष्य विदितवेद्यः साधुर्निश्चयेन नितरां वा नियतं वा क्रियन्ते नानादुःखावस्था जन्तवो येन तन्निकरणं निकारः–शारीरमानसदुःखोत्पादनं तस्मै नो कर्म्म कुर्याद्, येन प्राणिनां पीडोत्पद्यते तमारम्भं न विदध्यादिति भावार्थः । एवं च सति किं भवतीत्याह—'एस' इत्यादि, येयं सावद्ययोगनिवृत्तिरेषा परिज्ञा–एतत्तत्त्वतः परिज्ञानं प्रकर्षेणोच्यते प्रोच्यते, न पुनः शैलूषस्येव ज्ञानं निवृत्तिफलरहितमिति । एवं द्विविधयाऽपि ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया च प्राणिनिकारपरिहारे सति किं भवतीत्याह—'कम्मोवसंती'त्ति कर्म्मणाम्–अशेषद्वन्द्वव्रातात्मकसंसारतरुबीजभूतानामुपशान्तिः–उपशमः, कर्म्मक्षयः प्राणिनिकारक्रियानिवृत्तेर्भवतीत्युक्तं भवति । अस्य च कर्म्मक्षयप्रत्यूहस्य प्राणिनिकरणस्य मूलमात्मात्मीयग्रहः, तदपनोदार्थमाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [९८] ||१|| दीप अनुक्रम [१००+१०१]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १४२ ॥ | लोक.वि.२ उद्देशकः ६

जे ममाइयमइं जहाइ से चयइ ममाइयं, से हु दिट्ठपहे मुणी जस्स नत्थि ममाइयं, तं परिन्नाय मेहावी विइत्ता लोगं वंता लोगसन्नं से मइमं परिक्कमिज्जासि त्तिबेमि॥

नारइं सहई वीरे, वीरे न सहई रतिं। जम्हा अविमणे वीरे, तम्हा वीरे न रज्जइ॥१॥(सू०९८)

ममायितं-मामकं तत्र मतिर्ममायितमतिस्तां यः परिग्रहविपाकज्ञो 'जहाति' परित्यजति स 'ममायितं' स्वीकृतं परिग्रहं 'जहाति' परित्यजति, इह द्विविधः परिग्रहो-द्रव्यतो भावतश्च, तत्र परिग्रहमतिनिषेधादान्तरो भावपरिग्रहो निषिद्धः, परिग्रहबुद्धिविषयप्रतिषेधाच्च बाह्यो द्रव्यपरिग्रह इति । अथवा काक्वा नीयते, यो हि परिग्रहाध्यवसायकलुषितं ज्ञानं परित्यजति स एव परमार्थतः सबाह्याभ्यन्तरं परिग्रहं परित्यजति, ततश्चेदमुक्तं भवति-सत्यपि सम्बन्धमात्रे चित्तस्य परिग्रहकालुष्याभावान्नगरादिसम्बन्धः पृथ्वीसम्बन्धेऽपि जिनकल्पिकस्येव निष्परिग्रहतैव, यदि नामैवं ततः किमित्याह-'से हु' इत्यादि, यो हि मोक्षैकविघ्नहेतोः संसारभ्रमणकारणात् परिग्रहान्निवृत्ताध्यवसायः, हुः अवधारणे, स एव मुनिः दृष्टो ज्ञानादिको मोक्षपथो येन स दृष्टपथः, यदिवा दृष्टभयः-अवगतसप्तप्रकारभयः शरीरादेः परिग्रहात्साक्षात्पारम्पर्येण वा पर्यालोच्यमानं सप्तप्रकारमपि भयमापनीपद्यत इत्यतः परिग्रहपरित्यागे ज्ञातभयत्वमवसीयत इति। एतदेव पूर्वोक्तं स्पष्टयितुमाह-'जस्स' इत्यादि, यस्य 'ममायितं' स्वीकृतं परिग्रहो न विद्यते स दृष्टभयो मुनिरिति सम्बन्धः, किं च-'तं' इत्यादि, 'तं' पूर्वव्यावर्णितस्वरूपं परिग्रहं द्विविधयाऽपि परिज्ञया परिज्ञाय 'मेधावी' ज्ञात- ॥ १४२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(उक्त सूत्र ९८ में एक सूत्र और एक गाथा, दोनों सम्मिलित है, इसीलिए हमारे प्रकाशनमे दोनों को अलग करके क्रम दिए है)

प्रत सूत्रांक [९८] ||१|| दीप अनुक्रम [१००+ १०१]

ज्ञेयो विदित्वा 'लोकं' परिग्रहाग्रहयोगविपाकिनमेकेन्द्रियादिप्राणिगणं 'वान्त्वा' उद्गीर्य 'लोकस्य' प्राणिगणस्य संज्ञा दशप्रकारा अतस्तां 'स' इति मुनिः, किंभूतो ?—'मतिमान्' सदसद्विवेकज्ञः 'पराक्रमेथाः' संयमानुष्ठाने समुद्यच्छेः, संयमानुष्ठानोद्योगं सम्यग्विदध्या इतियावद्, अथवाऽष्टप्रकारं कर्म्मारिषड्वर्गं वा विषयकषायान् वा पराक्रमस्वेति, इतिरधिकारसमाप्तौ, ब्रवीमीति पूर्ववत्। स एवं संयमानुष्ठाने पराक्रममाणस्त्यक्तपरिग्रहाग्रहयोगो मुनिः किंभूतो भवतीत्याह—तस्य हि त्यक्तगृहगृहिणीधनहिरण्यादिपरिग्रहस्य निष्किञ्चनस्य संयमानुष्ठानं कुर्वतः साधोः कदाचिन्मोहनीयोदयादरतिराविः स्यात्, तामुत्पन्नां संयमविषयां 'न सहते' न क्षमते, कोऽसौ?–विशेषेणेरयति–प्रेयरति अष्टप्रकारं कर्म्मारिषड्वर्गं वेति वीरः–शक्तिमान्, स एव वीरोऽसंयमे विषयेषु परिग्रहे वा या रतिरुत्पद्यते तां 'न सहते' न मर्षति, या चारतिः संयमे विषयेषु च रतिस्ताभ्यां विमनीभूतः शब्दादिषु न रज्यति, अतो रत्यरतिपरित्यागान्न विमनस्को भवति नापि रागमुपयातीति दर्शयति-यस्मात्त्यक्तरत्यरतिरविमना वीरस्तस्मात् कारणाद्वीरो 'न रज्यति' शब्दादिविषयग्रामे न गार्द्ध्यं विदधाति। यत एवं ततः किमित्याह—

सद्दे फासे अहियासमाणे निव्विंद नंदिं इह जीवियस्स। मुणी मोणं समायाय, धुणे कम्मसरीरगं ॥ २ ॥ पंतं लूहं सेवंति वीरा संमत्तदंसिणो। एस ओहंतरे मुणी तिन्ने मुत्ते विरए वियाहिए त्तिबेमि (सू० ९९)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९९] ||२|| दीप अनुक्रम [१०२+१०३]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १४३ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ६

यस्माद्वीरो रत्यरती निराकृत्य शब्दादिषु विषयेषु मनोज्ञेषु न रागमुपयाति, नापि दुष्टेषु द्वेषं, तस्माच्छब्दान् स्पर्शांश्च मनोज्ञेतरभेदभिन्नान् 'अहियासमाणे'त्ति सम्यक् सहमानो निर्विन्द नन्दीत्युत्तरसूत्रेण सम्बन्धः, एतदुक्तं भवति–मनोज्ञान् शब्दान् श्रुत्वा न रागमुपयाति, नापीतरान् द्वेष्टि, आद्यन्तग्रहणाच्चेतरेषामप्युपादानं द्रष्टव्यं, तत्राप्यतिसहनं विधेयमिति, उक्तं—"संदेसु अ भद्दयपावएसु, सोयविसयमुवगएसु । तुट्ठेण व रुट्ठेण व समणेण सया न होअव्वं ॥ १ ॥ एवं रूवेसु अ भद्दयपावएसु० । तहा गंधेसु अ० ॥" इत्यादि वाच्यं, ततश्च शब्दादीन्विषयानतिसहमानः किं कुर्यादित्याह—'निव्विंद' इत्यादि, इहोपदेशगोचरापन्नो विनेयोऽभिधीयते, सामान्येन वा मुमुक्षोरयमुपदेशः, निर्विन्दस्व–जुगुप्सस्व ऐश्वर्यविभवात्मिका मनसस्तुष्टिर्नन्दिस्ताम् 'इह' मनुष्यलोके यज्जीवितमसंयमजीवितं वा तस्य या नन्दिः–तुष्टिः प्रमोदो यथा ममैतत्समृद्ध्यादिकमभूद्भवति भविष्यति वेत्येवंविकल्पजनितां नन्दीं जुगुप्सस्व–यथा किमनया पापोपादानहेतुभूतयाऽस्थिरयेति?, उक्तं च–विभव इति किं मदस्ते?, च्युतविभवः किं विषादमुपयासि? । करनिहितकन्दुकसमाः, पातोत्पाता मनुष्याणाम् ॥ १ ॥" एवं रूपबलादिष्वपि वाच्यं, सनत्कुमारदृष्टान्तेनेति, अथवा पञ्चानामप्यतीचाराणामतीतं निन्दति प्रत्युत्पन्नं संवृणोत्यनागतं प्रत्याचष्टे, स्यादेतत्–किमालम्ब्य करोतीत्याह—'मुणी' त्यादि, मुनिस्त्रिकालवेदी यतिरित्यर्थः, मुनेरयं मौनः–संयमो, यदिवा मुनेर्भावः मुनित्वं तदप्यसावेव मौनं वा वाचः संयमनम्, अस्य चोपलक्षणार्थत्वात् कायमनसोरपि, अतः सर्वथा संयममादाय, किं कुर्यात्?–धुनीयात् कर्म्मशरीरकं औदारिकादिश- ॥ १४३ ॥

१ शब्देषु च भद्रकपापकेषु श्रोत्रविषयमुपगतेषु । तुष्टेन वा रुष्टेन वा श्रमणेन सदा न भवितव्यम् ॥ १ ॥ एवं रूपेषु च भद्रकपापकेषु । तथा गन्धेषु च.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९९] ||२|| दीप अनुक्रम [१०२+१०३]

रीरं वा, अथवा 'धुनीहि' विवेचय पृथक्कुरु तदुपरि ममत्वं मा विधत्स्वेति भावार्थः । कथं तच्छरीरकं धूयते, ममत्वं वा तदुपरि न कृतं भवतीत्याह—'प्रान्तं' स्वाभाविकरसरहितं स्वल्पं वा 'रूक्षम्' आगन्तुकस्नेहादिरहितं द्रव्यतो भावतोऽपि प्रान्तं-द्वेषरहितं विगतधूमं रूक्षं-रागरहितमपगताङ्गारं 'सेवन्ते' भुञ्जते, के?-'वीराः' साधवः, किंभूताः?—'समत्वदर्शिनः' रागद्वेषरहिताः सम्यक्त्वदर्शिनो वा-सम्यक् तत्त्वं सम्यक्त्वं तद्दर्शिनः परमार्थदृशः, तथाहि-इदं शरीरकं कृतघ्नं निरुपकारि, एतत्कृते प्राणिनः ऐहिकामुष्मिकक्लेशभाजो भवन्ति, अनेकादेशे चैकादेश इतिकृत्वा, प्रान्तरूक्षसेवी समत्वदर्शी च कं गुणमवाप्नोतीत्याह—'एस' इत्यादि, एष इति प्रान्तरूक्षाहारसेवनेन कर्म्मादिशरीरं धुनानो भावतो भवौघं तरतीति । कोऽसौ?—'मुनिः' यतिः, अथवा क्रियमाणं कृतमितिकृत्वा तीर्ण एव भवौघं, कश्च भवौघं तरति?-यो 'मुक्तः' सबाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरहितः, कश्च परिग्रहान्मुक्तो भवति?-यो भावतः शब्दादिविषयाभिष्वङ्गाद्विरतः, ततश्च यो मुक्तत्वेन विरतत्वेन वा विख्यातो मुनिः स एव भवौघं तरति, तीर्ण एवेति वा स्थितम् । इतिरधिकार परिसमाप्तौ, ब्रवीमीति पूर्ववत् । यश्च मुक्तत्वविरतत्वाभ्यां न विख्यातः स किंभूतो भवतीत्याह—

दुव्वसुमुणी अणाणाए, तुच्छए गिलाइ वत्तए, एस वीरे पसंसिए, अचेइ लोयसंजोगं, एस नाए पवुच्चइ (सू० १००)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१००]

दीप अनुक्रम [१०४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ १४४ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ६

वसु-द्रव्यमेतच्च भव्येऽर्थे व्युत्पादितं 'द्रव्यं च भव्य' इत्यनेन, भव्यश्च-मुक्तिगमनयोग्यः, ततश्च मुक्तिगमनयोग्यं यद्द्रव्यं तद्वसु, दुष्टं वसु दुर्वसु दुर्वसु चासौ मुनिश्च दुर्वसुमुनिः-मोक्षगमनायोग्यः, स च कुतो भवति ?-अनाज्ञया-तीर्थकरोपदेशशून्यः स्वैरीत्यर्थः, किमत्र तीर्थकरोपदेशे दुष्करं येन स्वैरित्वमभ्युपगम्यते ?, तदुच्यते-उद्देशकादेरारभ्य सर्वं यथासम्भवमायोज्यं, तथाहि-मिथ्यात्वमोहिते लोके संबोद्धुं दुष्करं व्रतेष्वात्मानमध्यारोपयितुं रत्यरती निग्रहीतुं शब्दादिविषयेष्विष्टानिष्टेषु मध्यस्थतां भावयितुं प्रान्तरूक्षाणि भोक्तुम्, एवं यथोद्दिष्टया मौनीन्द्राज्ञया असिधारकल्पया दुष्करं सञ्चरितुं, तथाऽनुकूलप्रतिकूलांश्च नानाप्रकारानुपसर्गान् सोढुम्, असहने च कर्म्मोदयोऽनाद्यतीतकालसुखभावना च कारणं, जीवो हि स्वभावतो दुःखभीरुरनिरोधसुखप्रियः, अतो निरोधकल्पायामाज्ञायां दुःखं वसति, अवसंश्च किंभूतो भवतीत्याह—'तुच्छ' इत्यादि, तुच्छो-रिक्तः, स च द्रव्यतो निर्द्धनो घटादिर्वा जलादिरहितो भावतो ज्ञानादिरहितः, ज्ञानादिरहितो हि क्वचित्संशीतिविषये केनचित्पृष्टोऽपरिज्ञानात् ग्लायति वक्तुं, ज्ञानसमन्वितो वा चारित्ररिक्तः पूजासत्कारभयात् शुद्धमार्गप्ररूपणावसरे ग्लायति यथावस्थितं प्रज्ञापयितुं, तथाहि-प्रवृत्तसन्निधिः सन्निधेर्निर्दोषतामाचष्टे, एवमन्यत्रापीति । यस्तु कषायमहाविषागदकल्पभगवदाज्ञोपजीवकः स सुवसुर्मुनिर्भवत्यरिक्तो न ग्लायति च वक्तुं, यथावस्थितवस्तुपरिज्ञानादनुष्ठानाच्च, आह च—'एस' इत्यादि, 'एष' इति सुवसुमुनिर्ज्ञानाद्यरिक्तो यथावस्थितमार्गप्ररूपको वीरः कर्म्मविदारणात् 'प्रशंसितः' तद्विद्भिः श्लाघित इति । किं च—'अच्चेई'त्यादि, स एवं भगवदाज्ञानुवर्त्तको वीरोऽत्येति-अतिक्रामति, कं ?—'लोकसंयोगं' लोकेनासंयतलोकेन संयोगः-सम्बन्धः ॥ १४४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[१००]

दीप
अनुक्रम
[१०४]

ममत्वकृतस्तमत्येति, अथवा लोको बाह्योऽभ्यन्तरश्च, तत्र बाह्यो धनहिरण्यमातृपित्रादिः आन्तरस्तु रागद्वेषादिस्तत्कार्यं वा अष्टप्रकारं कर्म्म तेन सार्द्धं संयोगमत्येति–अतिलङ्घयतीत्युक्तं भवति । यदि नामैत्रं ततः किमित्याह—'एस' इत्यादि, योऽयं लोकसंयोगातिक्रमः 'एष न्यायः' एष सन्मार्गः मुमुक्षूणामयमाचारः 'प्रोच्यते' अभिधीयते, अथवा परम् आत्मानं च मोक्षं नयतीति छान्दसत्वात्कर्त्तरि घञ् नायः, यो हि त्यक्तलोकसंयोग एष एव परात्मनो मोक्षस्य न्यायः प्रोच्यते–मोक्षप्रापकोऽभिधीयते सदुपदेशात् । स्यादेतत्–किंभूतोऽसावुपदेश इत्यत आह—

जं दुक्खं पवेइयं इह माणवाणं तस्स दुक्खस्स कुसला परिन्नमुदाहरंति, इइ कम्मं परिन्नाय सव्वसो जे अणन्नदंसी से अणन्नारामे जे अणण्णारामे से अणन्नदंसी, 'जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुण्णस्स कत्थइ, (सू० १०१)

यद्दुःखं दुःखकारणं वा कर्म्म लोकसंयोगात्मकं वा 'प्रवेदितं' तीर्थकृद्भिरावेदितं 'इह' अस्मिन् संसारे 'मानवानां' जन्तूनां, ततः किं?–तस्य 'दुःखस्य' असातलक्षणस्य कर्मणो वा 'कुशला' निपुणा धर्म्मकथालब्धिसम्पन्नाः स्वसमयपरसमयविद उद्युक्तविहारिणो यथावादिनस्तथाकारिणो जितनिद्रा जितेन्द्रिया देशकालादिक्रमज्ञास्ते एवंभूताः परिज्ञाम्–उपादानकारणपरिज्ञानं निरोधकारणपरिच्छेदं चोदाहरन्ति ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरन्ति परिहारयन्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१]

दीप अनुक्रम [१०५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०)

॥ १४५ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ६

च । किं च—'इति कम्मं' इत्यादि, इतिः पूर्वप्रक्रान्तपरामर्शको यत्तद्दुःखं प्रवेदितं मनुजानां यस्य च दुःखस्य परिज्ञां कुशला उदाहरन्ति तद्दुःखं कर्म्मकृतं तत्कर्म्माष्टप्रकारं परिज्ञाय तदाश्रवद्वाराणि च, तद्यथा—ज्ञानप्रत्यनीकतया ज्ञानावरणीयमित्यादि, प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्याय तदाश्रवद्वारेषु 'सर्वशः' सर्वैः प्रकारैर्योगत्रिककरणत्रिकरूपैर्न वर्त्तेत, अथवा सर्वशः परिज्ञाय कथयति, सर्वशः परिज्ञानं च केवलिनो गणधरस्य चतुर्दशपूर्वविदो वा, यदिवा सर्वशः कथयति आक्षेपण्याद्या चतुर्विधया धर्मकथयेति । सा च कीदृक्कथेत्याह—'जे' इत्यादि, अन्यद्द्रष्टुं शीलमस्येत्यन्यदर्शी यस्तथा नासावनन्यदर्शी—यथावस्थितपदार्थद्रष्टा, कश्चैवंभूतो ?—यः सम्यग्दृष्टिर्मौनीन्द्रप्रवचनाविर्भूततत्त्वार्थो, यश्चानन्यदृष्टिः सोऽनन्यारामो—मोक्षमार्गादन्यत्र न रमते । हेतुहेतुमद्भावेन सूत्रं लगयितुमाह—'जे' इत्यादि, यश्च भगवदुपदेशादन्यत्र न रमते सोऽनन्यदर्शी, यश्चैवम्भूतः सोऽन्यत्र न रमत इति, उक्तं च—"शिवमस्तु कुशास्त्राणां वैशेषिकषष्टितन्त्रबौद्धानाम् । येषां दुर्विहितत्वाद्भगवत्यनुरज्यते चेतः ॥ १ ॥" इत्यादि । तदेवं सम्यक्त्वस्वरूपमाख्यातं कथयंश्चारक्तद्विष्टः कथयतीति दर्शयति—'जहा पुण्णस्स' इत्यादि, तीर्थकरगणधराचार्यादिना येन प्रकारेण 'पुण्यवतः' सुरेश्वरचक्रवर्त्तिमाण्डलिकादेः 'कथ्यते' उपदेशो दीयते 'तथा' तेनैव प्रकारेण 'तुच्छस्य' द्रमकस्य काष्ठहारकादेः कथ्यते, अथवा पूर्णो—

१ कथाचतुष्टयलक्षणं त्विदं—स्थाप्यते हेतुदृष्टान्तैः, स्वमतं यत्र पण्डितैः । स्याद्वादध्वनिसंयुक्तं, सा कथाऽऽक्षेपणी मता ॥ १ ॥ मिथ्यादृशां मतं यत्र, पूर्वापरविरोधकृत् । तन्निराक्रियते सद्भिः, सा च विक्षेपणी मता ॥२॥ यस्याः श्रवणमात्रेण, भवेन्मोक्षाभिलाषिता । भव्यानां सा च विद्वद्भिः, प्रोक्ता संवेदनी कथा ॥३॥ यत्र संसारभोगाङ्गस्थितिलक्षणवर्णनम् । वैराग्यकारणं भव्यैः, सोक्ता निर्वेदनीकथा ॥ ४ ॥

॥ १४५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०१]

दीप अनुक्रम [१०५]

जातिकुलरूपाद्युपेतस्तद्विपरीतस्तुच्छो, विज्ञानवान् वा पूर्णस्ततोऽन्यस्तुच्छ इति, उक्तं च—"ज्ञानैश्वर्यधनोपेतो, जात्यन्वयबलान्वितः । तेजस्वी मतिमान् ख्यातः, पूर्णस्तुच्छो विपर्ययात् ॥ १ ॥" एतदुक्तं भवति—यथा द्रमकादेस्तदनुग्रहबुद्ध्या प्रत्युपकारनिरपेक्षः कथयत्येवं चक्रवर्त्यादेरपि, यथा वा चक्रवर्त्यादेः कथयत्यादरेण संसारोत्तरणहेतुमेवमितरस्यापि, अत्र च निरीहता विवक्षिता, न पुनरयं नियमः—एकरूपतयैव कथनीयं, तथा हि—यो यथा बुध्यते तस्य तथा कथ्यते, बुद्धिमतो निपुणं स्थूलबुद्धेस्त्वन्यथेति, राज्ञश्च कथयता तदभिप्रायमनुवर्त्तमानेन कथनीयं, किमसावभिगृहीतमिथ्यादृष्टिरनभिगृहीतो वा संशीत्यापन्नो वा?, अभिगृहीतोऽपि कुतीर्थिकैर्व्युद्ग्राहितः स्वत एव वा?, तस्य चैवम्भूतस्य यद्येवं कथयेद्यथा—"दशसूनासमश्चक्री, दशचक्रिसमो ध्वजः । दशध्वजसमा वेश्या, दशवेश्यासमो नृपः ॥१॥" तद्भक्तिविषयरुद्रादिदेवताभवनचरितकथने च मोहोदयात्तथाविधकर्म्मोदये कदाचिदसौ प्रद्वेषमुपगच्छेद्, द्विष्टश्चैतद्विदध्यादित्याह च—

अवि य हणे अणाइयमाणे, इत्थंपि जाण सेयंति नत्थि, केयं पुरिसे कं च नए?, एस वीरे पसंसिए, जे बद्धे पडिमोयए, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु, से सव्वओ सव्वपरिन्नाचारी, न लिप्पई छणपएण, वीरे, से मेहावी अणुग्घायणखेयन्ने, जे य बन्धपमुक्खमन्नेसी कुसले पुण नो बद्धे नो मुक्के (सू० १०२)

१ तादारुवन०. प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०२]

दीप अनुक्रम [१०६]

अपिः सम्भावने, आस्तां तावद्वाचा तर्जनम्, अनाद्रियमाणो हन्यादपि, चशब्दादन्यदप्येवंजातीयक्रोधाभिभूतो दण्डकशादिना ताडयेदिति, उक्तं च—"तत्थेव य निट्ठवणं बंधण निच्छुभण कडगमद्दो वा। निव्विमथं व नरिंदो करेज्ज संघंपि सो कुद्धो ॥ १ ॥" तथा तच्चनिकोपासको नन्दबलात् बुद्धोत्पत्तिकथानकाज्ञागवतो वा भलिगृहोपाख्यानाद्रौद्रो वा पेढालपुत्रसत्यक्युमाव्यतिकराकर्णनात् प्रद्वेषमुपगच्छेत्, द्रमककाणकुण्टादिर्वा कश्चित्तमेवोद्दिश्योद्दिश्य अधर्मफलोपदर्शनेनेति। एवमविधिकथनेनेहैव तावद्बाधा, आमुष्मिकोऽपि न कश्चिद्गुणोऽस्तीत्याह च—'एत्थं पि' इत्यादि, मुमुक्षोः परहितार्थं धर्मकथां कथयतस्तावत्पुण्यमस्ति, परिषदं त्वविदित्वाऽनन्तरोपवर्णितस्वरूपकथने 'अत्रापि' धर्म्मकथायामपि 'श्रेयः' पुण्यमित्येतन्नास्तीत्येवं जानीहि, यदिवाऽसौ राजादिरनाद्रियमाणस्तं साधुं धर्म्मकथिकमपि हन्यात्। कथमित्याह—'एत्थंपी'त्यादि, यद्यदसौ पशुवधतर्प्पणादिकं धर्म्मकारणमुपन्यस्यति तत्तदसौ धर्म्मकथिकोऽत्रापि श्रेयो न विद्यते इत्येवं प्रतिहन्ति, यदिवा यद्यदविधिकथनं तत्र तत्रेदमुपतिष्ठते—अत्रापि श्रेयो नास्तीति, तथाहि—अक्षरकोविदपरिषदि पक्षहेतुदृष्टान्ताननादृत्य प्राकृतभाषया कथनमविधिरितरस्यां चान्यथेति। एवं च प्रवचनस्य हीलनैव केवलं कर्म्मबन्धश्च, न पुनः श्रेयो, विधिमजानानस्य मौनमेव श्रेय इति, उक्तं च—"सावज्जणवज्जाणं वयणाणं जो न याणइ विसेसं। वुत्तुंपि तस्स न खमं किमंग पुण देसणं काउं? ॥ १ ॥" स्यादेतत्—कथं तर्हि धर्म्मकथा कार्येत्युच्यते—'कोऽयं'

१ तत्रैव निष्ठापनं बन्धनं निष्काशनं कटकमर्दं वा। निर्विषयं वा नरेन्द्रः कुर्यात्सङ्घमपि स क्रुद्धः ॥ १ ॥ २ सावद्यानवद्ययोर्वचनयोर्यो न जानाति विशेषम्। वक्तुमपि तस्य न क्षमं किमङ्ग पुनर्देशनां कर्त्तुम्? ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०२]

दीप अनुक्रम [१०६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

इत्यादि, यो हि वश्येन्द्रियो विषयविषपराङ्मुखः संसारोद्विग्नमना वैराग्याकृष्यमाणहृदयो धर्म्मं पृच्छति, तेनाचार्यादिना धर्म्मकथिकेनासौ पर्यालोचनीयः—कोऽयं पुरुषो?, मिथ्यादृष्टिरुत भद्रकः, केन वाऽऽशयेनायं पृच्छति, कं च देवताविशेषं नतः, किमनेन दर्शनमाश्रितमित्येवमालोच्य यथायोग्यमुत्तरकालं कथनीयं, एतदुक्तं भवति—धर्म्मकथाविधिज्ञो ह्यात्मना परिपूर्णः श्रोतारमालोचयति द्रव्यतः—क्षेत्रतः किमिदं क्षेत्रं तच्चनिकैर्भागवतैरन्यैर्वा तज्जातीयैः पार्श्वस्थादिभिर्वोत्सर्गरुचिभिर्वा भावितं, कालतो दुष्षमादिकं कालं दुर्लभद्रव्यकालं वा, भावतोऽरक्तद्विष्टमध्यस्थभावापन्नमेवं पर्यालोच्य यथा-यथाऽसौ बुध्यते तथा तथा धर्म्मकथा कार्या, एवमसौ धर्म्मकथायोग्यः, अपरस्य त्वधिकार एव नास्तीति, उक्तं च—"जो हेउवायपक्खंमि हेउओ आगमम्मि आगमिओ । सो ससमयपण्णवओ सिद्धंतविराहओ अण्णो ॥ १ ॥" य एवं धर्म्मकथाविधिज्ञः स एव प्रशस्त इत्याह च—'एस' इत्यादि, यो हि पुण्यापुण्यवतो धर्म्मकथासमदृष्टिर्विधिज्ञः श्रोतृविवेचकः 'एषः' अनन्तरोक्तो 'वीरः कर्म्मविदारकः 'प्रशंसितः' श्लाघितः । किंभूतश्च यो भवतीत्याह—'जे बद्धे' इत्यादि, यो ह्यष्टप्रकारेण कर्म्मणा स्नेहनिगडादिना वा बद्धानां जन्तूनां प्रतिमोचकः धर्म्मकथोपदेशदानादिना, स च तीर्थकृद्गणधर आचार्यादिर्वा यथोक्तधर्म्मकथाविधिज्ञ इति । क्व पुनर्व्यवस्थितान् जन्तून् मोचयतीत्याह—'उड्ढं' इत्यादि, ऊर्ध्वं ज्योतिष्कादीन् अधो भवनपत्यादीन् तिर्यक्षु मनुष्यादीनिति । किं च—'से सव्वओ' इत्यादि, 'स' इति वीरो बद्धप्रतिमोचकः 'सर्वतः' सर्वकालं सर्वपरिज्ञया द्विविधयाऽपि चरितुं शीलमस्येति सर्वपरिज्ञाचारी—विशिष्टज्ञानान्वितः सर्वसंवरचारित्रो-

१ यो हेतुवादपक्षे हेतुक आगमे आगमिकः । स स्वसमयप्रज्ञापकः सिद्धान्तविराधकोऽन्यः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०२]

दीप अनुक्रम [१०६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १४७ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ६

पेतो वा, स एवंभूतः कं गुणमवाप्नोतीत्याह—'न लिप्पई'त्यादि, 'न लिप्यते' नावगुण्ठ्यते, केन?—'क्षणपदेन' हिंसास्पदेन प्राण्युपमर्दजनितेन, 'क्षणु हिंसायामि'त्यस्यैतद्रूपं। कोऽसौ?, वीर इति। किमेतावदेव वीरलक्षणमुतान्यदप्य(स्त्य)स्तीत्याह—'से मेहावी'त्यादि, स 'मेधावी' बुद्धिमान् यः 'अणोद्घातनस्य खेदज्ञः' अणत्यनेन जन्तुगणश्चतुर्गतिकं संसारमित्यणं—कर्म्म तस्योत्—प्राबल्येन घातनम्—अपनयनं तस्य तत्र वा खेदज्ञो—निपुणः, इह हि कर्म्मक्षपणोद्यतानां मुमुक्षूणां यः कर्म्मक्षपणविधिज्ञः स मेधावी कुशलो वीर इत्युक्तं भवति, किं चान्यत्—'जे य'इत्यादि, यश्च प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशरूपस्य चतुर्विधस्यापि बन्धस्य यः प्रमोक्षः तदुपायो वा तमन्वेष्टुं—मृगयितुं शीलमस्येत्यन्वेषी, यश्चैवम्भूतः स वीरो मेधावी खेदज्ञ इति पूर्वेण सम्बन्धः, अणोद्घातनस्य खेदज्ञ इत्यनेन मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नस्य योगनिमित्तायातस्य कषायस्थितिकस्य कर्म्मणो बध्यमानावस्थां बद्धस्पृष्टनिधत्तनिकाचितरूपां तदपनयनोपायं च वेत्तीत्येतदभिहितं, अनेन चापनयनानुष्ठानमिति न पुनरुक्तदोषानुषङ्गः प्रसजति। स्यादेतत्—योऽयमणोद्घातनस्य खेदज्ञो बन्धमोक्षान्वेषको वाऽभिहितः स किं छद्मस्थ आहोस्वित् केवली?, केवलिनो यथोक्तविशेषणासम्भवात् छद्मस्थग्रहणं, केवलिनस्तर्हि का वार्त्तेति?, उच्यते—'कुसले' इत्यादि, कुशलोऽत्र क्षीणघातिकर्म्मांशो विवक्षितः, स च तीर्थकृत् सामान्यकेवली वा छद्मस्थो हि कर्म्मणा बद्धो मोक्षार्थी तदुपायान्वेषकः, केवली तु पुनर्घातिकर्म्मक्षयान्नो बद्धो भवोपग्राहिकर्म्मसद्भावान्नो मुक्तो, यदिवा छद्मस्थ एवाभिधीयते—'कुशलः' अवाप्तज्ञानदर्शनचारित्रो मिथ्यात्वद्वादशकषायोपशमसद्भावात् तदुद- ॥ १४७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०२]

दीप अनुक्रम [१०६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

यवानिव न बद्धोऽद्यापि तत्सत्कर्म्मतासद्भावान्नो मुक्त इति । एवम्भूतश्च कुशलः केवली छद्मस्थो वा यदाचीर्णवा-नाचरति वा तदपरेणापि मुमुक्षुणा विधेयमिति दर्शयति—

से जं च आरभे जं च नारभे, अणारद्धं च न आरभे, छणं छणं परिण्णाय लोगसन्नं च सव्वसो (सू० १०३)

'स' कुशलो यदारभते आरब्धवान् वा अशेषकर्म्मक्षपणोपायं संयमानुष्ठानं यच्च नारभते मिथ्यात्वाविरत्यादिकं संसारकारणं, तदारब्धव्यमारम्भणीयमनारब्धमनारम्भणीयं चेति, संसारकारणस्य च मिथ्यात्वाविरत्यादेः प्राणातिपाताद्यष्टादशरूपस्य चैकान्तेन निराकार्यत्वात्, तन्निषेधे च विधेयस्य संयमानुष्ठानस्य सामर्थ्यायातत्वात्तन्निषेधमाह— 'अणारद्धं च' इत्यादि, अनारब्धम्–अनाचीर्णं केवलिभिर्विशिष्टमुनिभिर्वा तन्मुमुक्षुर्नारभते–न कुर्यादित्युपदेशो, यच्च मोक्षाङ्गमाचीर्णं तत्कुर्यादित्युक्तं भवति । यत्तद्भगवदनाचीर्णं परिहार्यं तन्नामग्राहमाह—'छणं छणं' इत्यादि, 'क्षणु हिंसायां' क्षणनं क्षणो–हिंसनं कारणे कार्योपचारात् येन येन प्रकारेण हिंसोत्पद्यते तत्तज्ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेद्, यदिवा क्षणः–अवसरः कर्त्तव्यकालस्तं तं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वाऽऽसेवनापरिज्ञया च आचरेदिति । किं च—'लोयसन्नं' इत्यादि, 'लोकस्य' गृहस्थलोकस्य संज्ञानं संज्ञा–विषयाभिष्वङ्गजनितसुखेच्छा परिग्रहसंज्ञा वा तां च ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेत्, कथं?—'सर्वशः' सर्वैः प्रकारैर्योगत्रिककरणत्रिकेणेत्यर्थः, तस्यैवं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित......आगमसूत्र-[०१], अंग सूत्र-[०१] "आचार" मूलं एवं शिलांकाचार्य-कृत् वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१०४]

दीप अनुक्रम [१०८]

श्रीआचाराङ्गवृत्तिः (शी०) ॥ १४८ ॥

लोक.वि.२ उद्देशकः ६

विधस्य यथोक्तगुणावस्थितस्य धर्म्मकथाविधिज्ञस्य बद्धप्रतिमोचकस्य कर्म्मोद्घातनखेदज्ञस्य बन्धमोक्षान्वेषिणः सत्यव्यवस्थितस्य कुमार्गनिराचिकीर्षोर्हिंसाद्यष्टादशपापस्थानविरतस्यावगतलोकसंज्ञस्य यद्भवति तद्दर्शयति—

उद्देसो पासगस्स नत्थि, बाले पुणे निहे कामसमणुन्ने असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ (सू० १०४) त्ति बेमि ॥ लोकविजयाध्ययनम् २ ॥

उद्दिश्यते नारकादिव्यपदेशेनेत्युद्देशः स 'पश्यकस्य' परमार्थद्दशो न विद्यते इत्यादीनि च सूत्राण्युद्देशकपरिसमाप्तिं यावत्तृतीयोद्देशके व्याख्यातानि, तत एवार्थोऽवगन्तव्यः, आक्षेपपरिहारौ चेति । तानि चामूनि बालः पुनर्निहः कामसमनुज्ञः अशमितदुःखः दुःखी दुःखानामेवावर्त्तमनुपरिवर्त्तते । इतिः परिसमाप्तौ ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ (ग्रन्थाग्रम् २५००) ॥ उक्तः षष्ठोद्देशकः ॥ तत्परिसमाप्तौ चोक्तः सूत्रानुगमः सूत्रालापकनिष्पन्ननिक्षेपश्च ससूत्रस्पर्शनिर्युक्तिकः । साम्प्रतं नैगमादयो नयाः, ते चान्यत्र न्यक्षेण प्रतिपादिता इति नेह प्रतन्यन्ते, संक्षेपतस्तु ज्ञानक्रियानयद्वयान्तर्गतत्वात्तेषां तावेव प्रतिपाद्येते, तयोरप्यात्मीयपक्षसावधारणतया मोक्षाङ्गत्वाभावात् प्रत्येकं मिथ्यादृष्टित्वम्, अतः पङ्ग्वन्धवत् परस्परसापेक्षतयेष्टकार्यावाप्तिरवगन्तव्येति उपगम्यते ॥ इति लोकविजयाध्ययनस्य टीका समाप्ता ॥ २ ॥

श्रीआचाराङ्गे इतिश्रीशीलाङ्काचार्यवृत्तियुतं लोकविजयाध्ययनं द्वितीयम्

॥ १४८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचाराङ्गसूत्र श्रुतस्कंध: १, अध्ययनं १,२ मूलं एवं शीलांकाचार्य रचिता टीका परिसमाप्ता:

मूल संशोधकः सम्पादकश्च पूज्यपाद् आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुन: संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D.]

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

भाग-1

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

"आचाराङ्गसूत्र" [मूलं, भद्रबाहूस्वामी रचित निर्युक्ति: एवं शिलांकाचार्य विहित वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

"आचार" मूलं एवं वृत्ति:" नामेण

श्रुतस्कंध- १, अध्ययन- १,२ परिसमाप्त:

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि श्रेणि, भाग- १

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नामऔर आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन१,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन१ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन१४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान-५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा,अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरणमूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाईमूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नामऔर आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९ थी ३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा,चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविद्या,देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधिमूलं एवं छाया, निशीथ, ब्रुहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प(बारसा)सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचारमूलं एवं वृत्ति.		३९४

आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

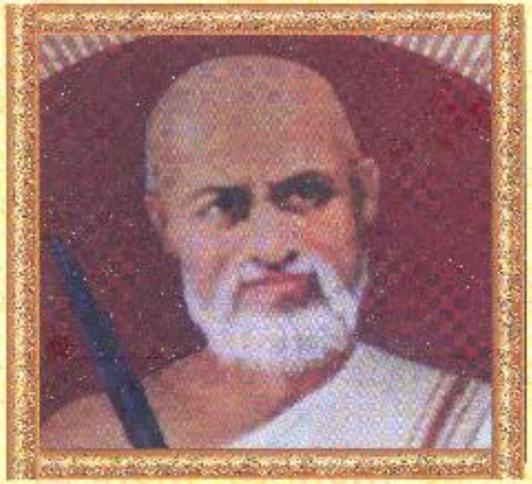

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

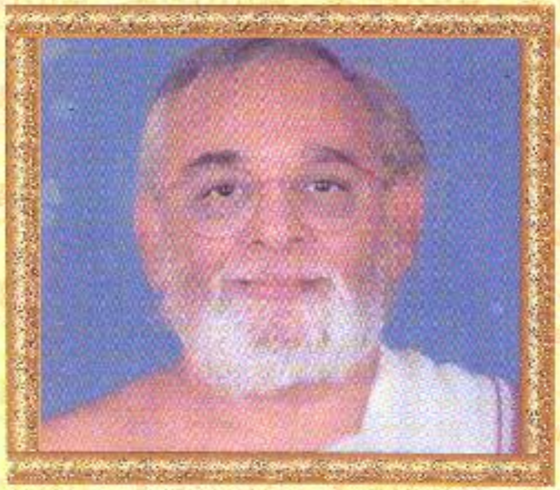

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता
श्री आगम मंदिर
पालिताणा

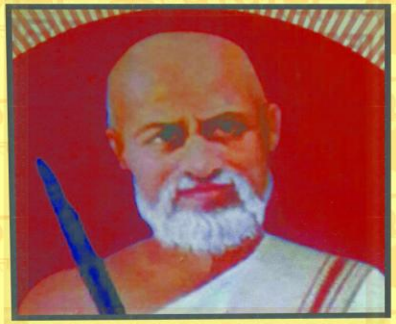

मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम - ०१

'आचार' मूलं एवं वृत्तिः (१)

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]